पत्र-पुष्प

प्यारे ब्रजवल्लभ !

सेवक ने तुम्हारे लिए एक हार गूँथा है, उसमें तुम्हारी ही ब्रज-माधुरी-कुंज की कलियाँ चुन-चुन कर पिरोई गई हैं। क्या तुम, नाम के ही नाते सही, इस हार को अपना कंठाभरण बनाओगे ?

भक्तवत्सल ! विश्वास है, इस तुच्छ भेंट को अपना कर इस दास को अवश्य कृतार्थ करोगे।

तुम्हारा

वियोगी हरि

प्रकाशकीय

श्रीमान् बड़ौदा-नरेश स्वर्गीय महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन के बम्बई अधिवेशन में स्वयं उपस्थित होकर जो पाँच सहस्र रुपये की सहायता सम्मेलन को प्रदान की थी, उसी सहायता से सम्मेलन इस "सुलभ-साहित्य-माला" के प्रकाशन का कार्य कर रहा है। इस "माला" में जिन सुन्दर और मनोहर ग्रंथ-पुष्पों का ग्रंथन किया जा रहा है उनकी सुरभि से समस्त हिन्दी-संसार सुवासित हो रहा है। इस "माला" के द्वारा जो हिन्दी-साहित्य की श्रीवृद्धि हो रही है उसका मुख्य श्रेय तत्कालीन श्रीमान् बड़ौदा नरेश को है। उनका यह हिन्दी-प्रेम भारत के अन्य हिन्दी-प्रेमी श्रीमन्तों के लिए अनुकरणीय है।

'ब्रजमाधुरीसार' का प्रकाशन इसी सुलभ साहित्य-माला के अन्तर्गत हुआ है। हिन्दी-काव्य की ब्रजवाणी का यह सरस भक्तिपूर्ण संकलन बहुत ही लोकप्रिय रहा है। श्री वियोगी हरि जी ने इसके सम्पादन और संकलन में जिस सुरुचि और श्रम से कार्य किया था, उसी का यह परिणाम है। कि आज इस पुस्तक का पन्द्रहवाँ संस्करण इस रूप में हिन्दी-जगत् के समक्ष प्रस्तुत हो रहा है।

—प्रेमनारायण शुक्ल
साहित्य मंत्री

विनम्र वक्तव्य

(नवम संस्करण)

संवत् १९९० में जब 'ब्रजमाधुरीसार' का दूसरा संस्करण हुआ, तब मैंने वक्तव्य के आदि में लिखा था कि प्राचीन ब्रजभाषा-साहित्य आज जिस शोचनीय उपेक्षा की दृष्टि से देखा जा रहा है, उस पर विचार करते हुए मुझे निःसंदेह संतोष होता है कि ब्रजमाधुरीसार का—१० वर्ष बाद ही सही—दूसरा संस्करण हुआ तो! अपने तुच्छ परिश्रम का फल मुझे मिल गया, यही मेरे लिए बहुत है। पर सद्भाग्य से इस ग्रन्थ का यह नवम संस्करण हो रहा है। तब के वक्तव्य में थोड़ा-सा हेर-फेर कर देता हूँ।

पहले संस्करण का 'वक्तव्य' बहुत लम्बा था। उसमें मुझे स्वयं ही बहुत-सी बातें निरर्थक और कृत्रिम-सी दिखाई दीं। ऐसी बनाई हुई अस्वाभाविक रोचकता मुझे स्वयं ही आज रुचिकर नहीं मालूम होती। अतः उसका प्रायः अधिकांश निकालकर मैं बहुत थोड़े में ही अपना नया वक्तव्य 'ब्रजमाधुरीसार' के संबंध में नीचे देता हूँ।

वैसे तो संस्कृत-साहित्य-सागर में श्रीमद्भागवत, गीतगोविन्द, कृष्ण-कर्णामृत, विदग्धमाधव, हंसदूत, भक्ति-संदर्भ प्रभृति अप्राकृत साहित्य के अमूल्य-ग्रंथ-रत्न विद्यमान हैं ही, परन्तु जिसमें कि :—

'मचलि-मचलि माँगी हरि माखन रोटी'

उस ब्रजभाषा के प्राचीन साहित्य में तो अपूर्व-ही-अपूर्व मिलेगा। वह रस, वह भाव; वह माधुर्य कदाचित् ही अन्यत्र देखने में आएगा। उस युग में सूरदास, नंददास, हितहरिवंश, व्यास, रसखानि, नागरीदास इत्यादि भक्त-सत्कवियों ने प्रेम-जाह्नवी की दिव्य-दिव्य धाराएँ बहाई थीं। दसों दिशाओं में जगन्मोहन की मधुर-मधुर बाँसुरी गूँजने लगी थी। सहस्रों संसार-संतप्त जीव सुशीतल प्रेम-निकुंज की सुखद छाया में विश्राम और शांति पाने लगे। सैकड़ों प्रेमोन्मत्त भक्त अपने आपको भूलकर नाच उठे थे। अहा!

सघन कुंज छाया सुखद, सीतल मंद समीर।
मन ह्वै जात अजौं, वहै, वा जमुना के तीर॥

इन भक्त-महात्माओं ने भक्तिरस का जो अनुपम स्रोत बहाया, वह बराबर बहता ही गया। कल ही की बात है, हरिश्चन्द्र, रत्नाकर और सत्यनारायण ने इस कृष्ण-प्रेम-रस का पानकर ब्रजभाषा-साहित्य को विभूषित किया। हाँ, ब्रजभाषा के इस गये-बीते जमाने में भी इन सुकवियों ने उसी पुराने राग में प्रेम-स्तवन के मधुर गीत गाये। कौन कहता है कि इनके गीतों में स्थायित्व नहीं?

यह सही है, कि सुहृद्वर सत्यनारायण निराशा की आह भर कर यह कह गये कि:—

पहिले को-सो अब न तिहारों यह वृन्दावन।
याके चारों ओर भये बहु बिधि परिवर्तन॥
बने खेत चौरस नये, काटि घने वन-पुंज।
देखन को बस रहि गये, निधिबन-सेवाकुंज॥

फिर भी उन्हीं की इस प्रार्थना पर:—

सजन सरस घनस्याम, अब, दीजै रसु बरसाय।
जासों ब्रजभाषा-लता हरी-भरी लहराय॥

कान देकर ब्रजवल्लभ श्रीकृष्ण अपनी प्यारी ब्रजभाषा को सदा लहलहाते रहेंगे। हमारी ब्रजभाषा-लता सदा हरी-भरी ही लहराती रहेगी। जब तक भारत का हृदयस्थल ब्रजप्रांत विद्यमान रहेगा, जब तक कालिंदी की श्याम-धारा बहती रहेगी, जब तक ब्रजवल्लभ श्रीकृष्ण की मधुर मूर्ति हमारे हृदय-पटल पर खचित रहेगी, जब तक सूर और हरिश्चन्द्र का नाम शेष रहेगा, तब तक ब्रजभाषा-साहित्य का लोप होने का नहीं।

दूसरे संस्करण में थोड़ा-सा कुछ हेर-फेर मैंने किया था। 'अष्टछाप' के भक्त-कवियों में पहले केवल सूरदास, नंददास और कृष्णदास, ये तीन कवि थे। इस संस्करण में परमानंददास और कुंभनदास को भी ले लिया। इनकी कविता कृष्णदास की कविता से कुछ कम महत्त्व की नहीं है।

परमानन्ददास के कई पद तो सूरदास के पदों से भी टक्कर लेते हैं। इस प्रकार अष्टछाप के पाँच भक्त-कवि आ गये। नन्ददास के 'भ्रमर-गीत' से लेकर कुछ पद्य और बढ़ा दिये। पाठ तो प्रायः कई पद्यों का शुद्ध कर दिया। सूरदास के भी कुछ पद इस संस्करण में और जोड़ दिये गये हैं। कुछ सवैये रसखानि के भी इसी तरह और संकलित कर दिये गये।

इस संस्करण में संग्रह के दो खंड भी कर दिये गये। पहले खंड में तो सूरदास से लेकर ललितकिशोरी तक और दूसरे में बिहारी, देव, हरिश्चन्द्र, रत्नाकर और सत्यनारायण रखे गये। जिन भक्त-कवियों ने केवल 'कृष्ण-साहित्य' का ही प्रणयन किया और एक प्रेम-भक्ति की ही प्रधानता दी, प्रथम खंड में उन्हीं को मैंने स्थान दिया है। इसमें संदेह नहीं, द्वितीय खंड के कुछ कवि प्रथम खंड के कवियों से, कविता की दृष्टि से, बहुत आगे निकल जाते हैं, पर उन्होंने कृष्ण-भक्ति के अलावा अन्य विषयों पर भी लिखा है। इसलिए उन्हें मैंने द्वितीय खंड में स्थान देना ही उचित समझा। इसमें 'प्रथम' और 'द्वितीय' कोटि-जैसी कोई बात नहीं है। मेरे इस खंड विभाग को 'श्रेणी विभाजन' न समझा जाय।

स्वामी श्री हरिदास जी तथा गोस्वामी श्रीहितहरिवंशजी की संक्षिप्त जीवनी के संबंध में कुछ आपत्तियाँ उठाई गई थीं। जो प्रमाण उस समय मुझे उपलब्ध हुए थे, उन्हीं के आधार पर संक्षिप्त जीवनियाँ लिखी गई थीं। स्वामी हरिदास जी सनाढ्य ब्राह्मण थे या सारस्वत, इस पर मेरा कोई खास आग्रह नहीं है। मैं तो उनको महान् भक्त के रूप में ही देखता हूँ। यदि उनके सारस्वत ब्राह्मण होने के संबंध में प्रबल प्रमाण उपस्थित किये जाते हैं तो मुझे वैसा मानने में कोई आपत्ति नहीं : श्रीहितहरिवंशजी के जन्म-संवत् में यदि कोई भूल हुई हो तो वह भी मैं मान लूँगा। मुझे इन बातों में कोई आग्रह नहीं। किसी सम्प्रदाय या व्यक्ति का जी दुखाने के हेतु से यह जीवनियाँ नहीं लिखी गई थीं। पहले संस्करण के वक्तव्य में मिश्रबन्धुविनोद आदि साहित्यिक ग्रंथों की कुछ कटु-सी आलोचना की गई थी; तब की अपनी उस 'आलोचना-शैली' के वे सब अंश मैंने निकाल दिये।

स्वर्गीय श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर' को यदि स्थान न देता तो निश्चय ही यह संग्रह अपूर्ण रहता। 'रत्नाकरजी' ब्रजभाषा के एक (शायद अंतिम) महाकवि थे, इसमें संदेह नहीं। उनका सारा जीवन ब्रजभाषा की साहित्य-सेवा में ही लगा रहा। भाषा और भाव दोनों पर ही उनका अच्छा अधिकार था। 'उद्धवशतक' तो उनकी एक अमर रचना है। ब्रजमाधुरीसार में मैंने 'उद्धवशतक' के ही कुछ पद्यों का संकलन किया है। मैं समझता हूँ कि 'शतक' में हमें रत्नाकरत्व की पूरी झाँकी मिल जाती है।

ब्रजमाधुरीसार में कुछ ऐसी भी रचनाओं का संग्रह है, जो अभी तक प्रकाशित नहीं हुई हैं—जैसे, गदाधर भट्ट, श्रीव्यास, सूरदास, मदनमोहन, कृष्णदास, परमानंददास, कुंभनदास आदि की रचनाएँ। मुझे इन महात्माओं के हस्तलिखित ग्रंथों को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। इस छोटे-से संग्रह को फिर भी मैं तो अपूर्ण और अस्तव्यस्त ही समझता हूँ। योग्यता और समय दोनों का ही जब यहाँ अभाव है, तब यह आशा करना व्यर्थ है कि मेरे अनाड़ीपने से विद्वानों को कोई विशेष संतोष प्राप्त होगा।

इस ग्रंथ में आये हुए प्रत्येक महात्मा की जीवनी के आदि में एक छप्पय दिया गया है। ऐसा करने की प्रेरणा मुझे भक्तवर नाभाजी के भक्तमाल को देखकर हुई। जिसके संबंध में नाभाकृत छप्पय न मिले वहाँ बाबू हरिश्चन्द्र और गोस्वामी राधाचरण रचित 'उत्तरार्द्ध भक्तमाल' और 'नव-भक्तमाल' से काम चला लिया गया। किन्तु, इसमें कुछ ऐसे भी महानुभाव आ गये जिनके संबंध के छप्पय, उपर्युक्त तीनों भक्तमालाओं में ढूँढने पर भी न मिल सके। इस लाचारी की दशा में मैंने तत्संबंधी छप्पय स्वयं रचकर यथेष्ट स्थान पर रख दिये हैं। अशर्फियों में कौड़ियाँ मिला देने की मेरी यह ढिठाई, आशा है, कृपालु पाठक क्षमा करेंगे।

इस ग्रंथ का संकलन करने की शुभ सम्मति मुझे सबसे पहले गोलोक-वासी श्रद्धेय राधाचरण जी गोस्वामी ने दी थी। आपने बड़े अनुग्रहपूर्वक कई संत महात्माओं के पद लिखाकर मुझे प्रोत्साहन दिया था। अतः उनका स्मरण मैं अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति से करता हूँ।

ग्रन्थ के तृतीय संस्करण का संशोधन डॉ० बाबूराम सक्सेना तथा पं० रामलखन शुक्ल के सराहनीय सहयोग से विशेष ध्यानपूर्वक किया गया। संशोधन में इस बात का विचार रखा गया कि भक्त कवियों की भी कोई ऐसी रचना सम्मिलित न की जाय, जो अति शृंगारपूर्ण हो। ऐसा करना इसलिए उचित समझा गया कि यह ग्रंथ अनेक परीक्षाओं के लिए स्वीकृत किया गया है और विद्यार्थियों को उत्तान शृंगार की रचनाओं से दूर ही रखना उचित है।

अन्त में, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सर्वस्व पूज्य पुरुषोत्तमदास जी टंडन को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ, जिनकी शुभेच्छा से ही सम्मेलन ने "ब्रजमाधुरीसार" को प्रकाशित किया है।

हरिजन सेवक संघ　　वशंवद
दिल्ली, सं० २००९ वि०　　**वियोगी हरि**

विषय-सूची

पहला खंड

दूसरा खंड

पहला खंड

श्री सूरदास

छप्पय

उक्ति, चोज, अनुप्रास, बरन, अस्थिति अति भारी।
वचन, प्रीति-निर्वाह, अर्थ अद्भुत तुकधारी।।
प्रतिबिम्बित दिवि दृष्टि हृदय हरि-लीला भासी।
जनम-करम, गुन-रूप सबै रसना जु प्रकासी।।
विमल बुद्धि गुन और को, जो वह गुन स्रवननि धरे।
'सूर'-कवित सुनि कौन कवि, जो नहिं सिर चालन करै।

—नाभाजी

बहुत विचार-विमर्श के पश्चात् हम इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि कविकुल-गुरु भक्ताग्रगण्य श्री सूरदासजी का जन्म सं० १५४० के लगभग हुआ था। इनका जन्म-स्थान हमने गोलोकवासी श्री राधाचरण गोस्वामी के प्रमाणों के आधार पर, आगरा-मथुरा की सड़क पर रुनकता (रेणुका क्षेत्र) गाँव निश्चित किया है। कुछ लेखकों ने दिल्ली के पास सीही ग्राम को भी इनका जन्म-स्थान माना है। सूरदासजी गऊघाट पर रहते थे, और यह गऊघाट आगरा के पास ही है। इनके पिता का नाम रामदास था। यह सारस्वत ब्राह्मण थे। सरदार कवि ने इन्हें, महाकवि चंदबरदायी का वंशज मानकर, ब्रह्मभट्ट सिद्ध किया है, किन्तु 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में ऐसा कोई उल्लेख नहीं है, और 'वार्ता' ही प्रमाण-कोटि में अधिकांशतः आ सकती है, क्योंकि उसे सूरदास जी के समसामयिक गोसाईं श्री गोकुल-नाथ जी ने रचा था।

जान पड़ता है कि सूरदास जी जन्मांध नहीं थे, पीछे अन्धे हो गये थे। गऊघाट पर यह महाप्रभु श्री वल्लभाचार्यजी के शरणापन्न हुए। आचार्य जी के अलौकिक भक्ति-उपदेश से श्रीमद्भागवत की छाया पर ब्रजभाषा में 'सूरसागर' के नाम से इन्होंने एक विशद ग्रन्थ का प्रणयन किया। कहते हैं

कि 'सूरसागर' में एक लाख पद थे। पर सिवा पाँच-सात हजार पदों के अभी तक इसकी कोई पूर्ण प्रति नहीं मिली।[१] हमारे लिए वह दिन कैसा शुभ होगा, जब सम्पूर्ण 'सूरसागर' प्रकाशित होकर हिन्दी साहित्यकोश को जगमगा देगा।

गोसाईं विट्ठलनाथ जी ने सूरदास को पुष्टिमार्गीय आठ सर्वोत्तम कवियों में सर्वोच्च स्थान दिया था, जैसा कि स्वयं सूरदास जी ने अति नम्रता तथा कृतज्ञता के साथ कहा है—

'थापि गोसाईं करी मेरी आठ मध्ये छाप।'

पारसोली गाँव में, गोसाईं विट्ठलनाथ के सामने, संवत् १६२० के लगभग सूरदास जी का शरीरांत हुआ था। उनका अन्तिम पद यह कहा जाता है—

खंजन नैन रूप-रस माते।
अतिसै चारु चपल अनियारे, पल-पिंजरा न समाते।
चलि-चलि जात निकट स्रवननि के, उलटि-पलटि ताटंक फँदाते॥
'सूरदास' अंजन-गुन अटके नतरु अबहिं उड़ि जाते॥

सूरदास जी के अन्तकाल के प्रसंग पर भारतेन्दुजी ने क्या ही सुन्दर कहा है—

मन समुद्र भौ सूर को, सीप भये चख लाल।
हरि-मुक्ताहल परत ही, मूंदि गये तत्काल॥

सूरदास जी समग्र ब्रज-साहित्य के जन्मदाता, परिपोषक एवं प्रेरक कहे जायँ, तो भी कोई अत्युक्ति नहीं। इसमें सन्देह नहीं, कि यह हिन्दी वाङ्मय के वाल्मीकि या व्यास कहे जा सकते हैं। भक्ति-पक्ष में तो यह भागवतोत्तम उद्धव के अवतार माने जाते हैं। वात्सल्यरस के पद तो इनके अनुपम हैं। इसी प्रकार गोपियों का विरह और उद्धव-संवाद अपूर्व और अत्यन्त चमत्कारपूर्ण

---

१. इधर गोलोकवासी महाकवि जगन्नाथदास 'रत्नाकर' अनेक वर्षों के घोर परिश्रम के फलस्वरूप 'सूरसागर' का एक सुन्दर, प्रामाणिक संग्रह छोड़ गये हैं। काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा इसके कुछ भाग प्रकाशित हुए भी हैं। वास्तव में यह संग्रह अपूर्व है।

है। हमारा तो निश्चित मत है कि जिन्हें ब्रज-साहित्य का अलौकिक रसास्वादन लेना हो, उन्हें सूरदास के अतिशय, मधुर, प्रेम-भावपूर्ण पदों का अवश्य पारायण करना चाहिए। 'सूरसागर' के गायन से हम लोक-परलोक दोनों को ही आनन्दप्रद बना सकते हैं, इसमें सन्देह नहीं। कवि-समाट् सूर के सम्बन्ध में अनेक भावक रसिकजनों ने अपनी-अपनी सम्मतियाँ व्यक्त की हैं। कतिपय लोक-प्रचलित सूक्तियाँ ये हैं—

तत्त्व-तत्त्व सूरा कही, तुलसी कही अनूठि।
बची-खुची कबिरा कही, और कही सब झूठि॥
उत्तम पद कवि गंग को, कविता को बलवीर।
केशव अर्थ-गँभीर को, सूर तीन गुन धीर॥
किधौं सूर को सर लग्यो, किधौं सूर की पीर।
किधौं सूर को पद लग्यो, तन मन धुनत सरीर॥
सूरदास बिन पदरचना अब कौन कविहिं करि आवै?
सूर-कवित सुनि कौन कवि जो नहिं सिर चालन करै?

खोज में सूरदास जी के निम्नलिखित ग्रंथों का पता चला है:

१. सूर-सारावली; २. सूरसागर (अपूर्ण); ३. साहित्य-लहरी (दृष्टि कूटक-पदावली), ४. व्याहलों; ५. नलदमयन्ती; ६. हरिवंश टीका। इनमें से अंतिम तीन ग्रंथ अप्राप्य हैं और संदिग्ध भी।

संभव है, ये पुस्तकें किसी अन्य सूरदास कवि की लिखी हों। 'सूरसारावली' और 'साहित्य-लहरी', 'सूरसागर' में संकलित की गई हैं। सुतराम्, 'सूर-सागर' ही सूरदास का एकमात्र बृहद् ग्रन्थ है। इस अगाध सागर के गर्भ में अनेक अमूल्य दिव्यरत्न भरे पड़े हैं। नीचे कुछ उद्धृत किये जाते हैं:

बिलावल

चरनकमल बन्दौं हरि राई।[1]
जाकी कृपा पंगु[2] गिरि लंघे, आँधर को सब कछु दरसाई॥
बहिरौ सुनै, मूक पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र[3] धराई।
'सूरदास' स्वामी करुनामय, बार बार बन्दौं तिहिं पाई॥१॥

---

१ राजा। २ लंगड़ा। ३ राजछत्र।

गौरी

मेरी तौ गति[1] पति तुम अंतहि[2] दुख पाऊं।
हौं कहाय तिहारो अब कौन कौ कहाऊं॥
कामधेनु छाँड़ि कहा अजा[3] जा दुहाऊं।
हय गयंद उतरि कहा गर्दभ चढ़ि धाऊं॥
कंचन-मनि खोलि डारि कांच गर[4] बँधाऊं।
कुंकुम कौ तिलक मेटि काजर मुख लाऊं॥
पाटंबर अंबर तजि गूदर पहिराऊं!
अंबाफल छाँड़ि कहा सेवर[5] कों धाऊं॥
सागर की लहर छाँड़ि खार[6] कत अन्हाऊं।
'सूर' कूर आँधरो में द्वार पर्‌यौ गाऊं॥२॥

सारंग

मेरो मन अनत कहाँ सचु पावै।
जैसे उड़ि जहाज को पंछी, फिरि जहाज पर आवै॥
कमल नैन[7] को छाँड़ि महातम, और देव को धावै?
परम गंग को छाँड़ि पियासी, दुर्मति-कूप खनावै॥[8]
जिन मधुकर अंबुज-रस चाख्यौ, क्यों करील[9] फल खावै॥
'सूरदास' प्रभु कामधेनु तजि, छेरी[10] कौन दुहावै॥३॥

सारंग

आजु जो हरिहिं न सस्त्र गहाऊं।
तौ लाजौं गंगा जननी कों, सांतनु[11] सुत न कहाऊं॥

---

१ लाज। २ पास। ३ बकरी। ४ गला। ५ शाल्मलि वृक्ष का फल, जिसमें सिवा रूई के सार के अतिरिक्त कुछ भी नहीं रहता है। ६ खारा। ७ श्रीकृष्ण। ८ खोदे। ९ एक कांटेदार वृक्ष। १० बकरी। ११ शांतनु कुरुवंशी एक प्रतापी राजा, जिन्होंने गंगा के साथ विवाह किया था। बाल ब्रह्मचारी भीष्म इन्हीं के पुत्र थे।

स्यंदन[1] खंडि महारथ खंडौं, कपिध्वज[2] सहित डुलाऊं।
इतो करौं सपथ तौ हरि की, छत्रिय-गतिहिं न पाऊं॥
पांडव-दल सन्मुख ह्वै धाऊं, सरिता रुधिर बहाऊं।
'सूरदास' रन बिजय सखा[3] कौं, जियत न पीठ दिखाऊं॥४॥

आसावरी

हम भक्तन के, भक्त हमारे।
सुन अर्जुन, परितिग्या मेरी, यह ब्रत टरत न टारे॥
भक्तै काज लाज हिय धरिकै, पाई पयादे[4] धाऊं।
जहँ-जहँ भीर[5] परै भक्तन पै, तहँ-तहँ जाय छुड़ाऊं॥
जो मम भक्त सों बैर करत है, सो निज बैरी मेरो।
देखि विचारि भक्त हित कारन, हाँकत हौं रथ तेरो॥
जीते जीति भक्त अपने की, हारे हारि बिचारौं।
'सूरदास' सुनि भक्त-बिरोधी; चक्र-सुदर्शन[6] जारौं॥५॥

सारंग

वा पट पीत की फहरानि
कर धरि चक्र चरन की धावनि[7] नहिं बिसरति वह बानि।[8]
रथ तें उतरि अवनि आतुर ह्वै, कच[9] रज की लपटानि।
मानों सिंह सैल तें निकस्यो महामत्त गज जानि॥
जिन गोपाल मेरी प्रन राख्यो, मेटि बेद की कानि[10]।
सोई 'सूर' सहाय हमारे; निकट भये हैं आनि[11]॥६॥

सोरठ

मना रे,[12] माधव सौं करु प्रीति।
काम क्रोध मद लोभ-मोह तू, छाँड़ि सबै बिपरीत॥

---

१ रथ। २ अर्जुन के रथ की पताका, जिसमें हनुमान जी का चित्र अंकित रहता था। ३ अर्जुन के मित्र श्रीकृष्ण। ४ पैदल। ५ कष्ट। ६ विष्णु भगवान का चक्र। ७ दौड़। ८ बानिक रूप, ध्यान। ९ केश १० कान्ति, मर्यादा। ११ आकर। १२ मन।

भौंरा भोगी बन भ्रमै, मोद न मानै ताप।
सब कुसुमन मिलि रस करै, कमल बँधावै आप॥
सुनि परिमिति पिय प्रेम की, चातक चितवन पारि।
घन-आसा सब दुख सहै, अंत[1] न जाँचै बारि।
देखौ करनी कमल की, कीनों जल सों हेत[2]।
प्रान तज्यौ, प्रेम न तज्यौ, सूख्यो सरहिं समेत॥
मीन बियोग न सहि सकै, नीर न पूँछै बात।
देखि जु तू ताकी गतिहिं, रति न घटै तन जात॥
प्रीति परेवा को गनौ, चाह चढ़त आकास।
तहँ चढ़ि तीय जु देखिए, परत छाँड़ि उर स्वास॥
सुमिरि सनेह कुरंग कौ, स्रवननि राच्यौ[3] राग।
धरि न सकत पग पछमनो,[4] सर-सनमुख उर लाग॥
देखि जरनि जड़ नारि की, जरत प्रेम के संग।
चिता न चित फीको भयो, रची जु पिय के रंग॥
लोक बेद बरजत सबै, नयनन देखत त्रास।
चोर न जिय चोरी तजै, सरबस सहै बिनास॥
तैं जु रत्न पायो भलो, जान्या साधु-समाज।
प्रेमकथा अनुदिन सुनी, तऊ न उपजी लाज॥
सदा सँघाती[5] आपनो, जिय को जीवन-प्रान।
सो तूँ बिसर्यौ सहजही, हरि ईश्वर भगवान।
बेद पुरान स्मृति सबै, सुर नर सेवत जाहि॥
महामूढ़ अग्यान-मति, क्यों न सँभारत[6] ताहि।
खग मृग मीन पतंग लौं, मैं सोधे[7] सब ठौर।
जल थल जीव जिते तिते, कहौं कहाँ लगि और॥

---

१. अनन्त, अन्यत्र। २. प्रेम। ३. मोहित हुआ। ४. पीछे। ५. साथी। ६. सेवा करता है, स्मरण करता है। ७. ढूंढे।

परिपूरन पावन सखा, प्राननहूँ कौ नाथ।
परमदयालु कृपालु प्रभु, जीवन जाके हाथ॥
गर्ववास अति त्रास में, जहाँ न एकौ अंग।[1]
सुन सठ, तेरो प्रानपति, तहाँ न छाँड़्यो संग॥
दिना-रात पोषत रहै, ज्यौं तम्बोली पान।
या दुख तें तोहि काढ़ि कैं, लै दीनों पयपान॥
जिन जड़ तें चेतन कियो, रचिगुन[2]-तत्व-विधान[3]।
चरन, चिकुर[4] कर, नख दिये, नैन नासिका, कान॥
असन-बसन बहु बिधि दिये, औसर-औसर आनि।
मात पिता भैया मिले, नई रुचिहिं पहिचानि॥
जम जान्यो सब जग सुन्यो, बाढ़्यो अजस अपार।
बीच[5] न काहू तब कियो, दूतनि काढ़यौ बार॥
कह जानो कहवां[6] मुओ,[7] ऐसे कुमति कुमीच[8]।
हरि सौं हेतु बिसारिकैं सुख चाहत है नीच॥
जो पै जिय लज्जा नहीं, कहा कहौं सौ बार।
एकहुँ अंक[9] न हरि भजे, रे सठ 'सूर' गँवार॥७॥*

भैरवी

कहां लौं बरनौं सुन्दरताई।
खेलत कुँवर कनक[10]-आँगन में, नैन निरखि छवि छाइ।
कुलहि[11] लसति सिर स्याम सुभग अति बहुविधि सुरँग बनाई।
मानों नवघन ऊपर राजत, मघवा[12] धनुष चढ़ाइ॥

---

१ सहाय। २ सत्व, रज और तमोगुण। ३ पंचतत्व की रचना। ४ बाल। ५ रक्षा। ६ कहां। ७ मरा। ८ बुरी मौत। ९ प्रकार। १० सोना। ११ टोपी। १२ इंद्र।

*कहते हैं कि यह पद सूरदासजी ने बादशाह अकबर को सुनाया था। किंतु सूरदासजी अकबर के दरबार में कभी गए थे या नहीं, यह विवादास्पद है। प्रमाण तो अकबर के दरबार में सूरदास मदनमोहन के जाने का मिलता है।

अति सुदेस[1] मृदु चिकुर हरत मन, मोहन-मुख बगराइ[2]।
मानों प्रकट कंज पर मंजुल, अलि-अवली फिर आइ॥
नील स्वेत पर पीत लाल मनि, लटकनि भाल रुनाइ[3]।
सनि, गुरु असुर[4] देवगुरु[5] मिलि मनु, भीम[6] सहित समुदाइ॥
दूध-दंत-दुति कहि न जात अति, अद्‌भुत इक उपमाइ।
किलकत हँसत दुरत प्रगटत मनु, घनमें विद्यु[7] छपाइ॥
खंडित बचन[8] देत पूरनसुख, अल्प-अल्प जलपाइ[9]।
घुटुरन[10] चलत रेनु तन मंडित, 'सूरदास' बलि जाइ॥८॥

बधाई

आजु गई हौं नन्द भवन में, कहा कहौं गृह चैनु री।
बहु अँग चतुरँग ग्वाल बाल तहँ कोटिक दुहियतु धैनु री॥
घूमि रहे जित-तित दधि मथना, सुनत मेघ-धुनि लाजै री।
बरनहुँ कहा सदन की सोभा, बैकुण्ठहुँ ते राजै री॥
बोलि लई नववधू जानिकैं, खेलतँ जहां कन्हाई री।
मुख देखत मोहिनी-सी लागति, रूप न बरन्यो जाई री॥
लटकनि लटक रहे भ्रू ऊपर, पंचरंग मनि पोहै री।
मानहुँ गुरु सनि सुक्र एक ह्वै लाल भाल पर सोहै री॥
गोरोचन[11] कौ तिलक निकट ही, काजर-बिंदुक लाग्यौ री।
मनहुँ कमल गुनि पीयरागरस, निसि अलि-सुत सोइ जाग्यौ री॥
बिधु-आनन पर दीरघ लोचन, नासा लटकन मोती री।
मानों सोम[12] संग करि लीनों जानि आपनो गोती री॥
सीपज[13] माल स्याम उर सोहै, विच बघना[14] छबि पावै री।

---

१. सुन्दर। २ फैले हुए। ३ अरुणाई, लाली। ४ शुक्र। ५ बृहस्पति। ६ मंगल। ७ विद्युत, बिजली। ८ तोतले बचन। ९ बोलने का ढंग। १० घुटनों के बल। ११ गाय के मस्तक से निकला हुआ सुगंधित मद। १२ चंद्र। १३ मोती। १४ गले का एक आभूषण जिसमें बाघ के नख जड़े होते हैं।

मनहुँ द्वैज-ससि नखत सहित है, उपमा कहति न आवै री ।।
बरनौं कहा अंग-अँग-सोभा, भाव धरौं जल-रास री।
बाल लाल गोपालहिं बरनत, कविकुल करिहैं हाँसी री ।।
सोभा-सिंधु अगाध बोध बुध, उपमा नाहिन और री।
रूप देखि तनु थकत रही हौं, भेइ[1] भरे कौ चोर री ।।
जो मेरी अँखियाँ रसना[2] होतीं, कहतीं रूप बनाइ री।
चिरजीवौ जसुदा कौ नंदन, 'सूरदास' बलि जाइ री ।।९।।

धनाश्री

जसोदा हरि पालनैं झुलावै।
हलरावै[3] दुलराइ मल्हावै,[4] जोइ-सोइ कछु गावै।
मेरे लाल कौ आउ निंदरिया,[5] काहे न आनि सुआवै।
तू काहे न बेगि सों आवति तोकों कान्ह बुलावै।।
कबहुँ पलक हरि मूंदि लेत हैं कबहुँ अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन ह्वै रहि-रहि, करि करि सैन[6] बतावै।।
इहि अंतर[7] अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मधुरे गावै।
जो सुख 'सूर' अमर मुनि-दुर्लभ, सो नँद-भामिनि पावै ।।१०।।

ध्रुपद

छोटी-छोटी गुड़ियाँ[8] अँगुरियाँ छोटी,
छबीली नख-ज्योति मोती मानों कंजदलन पर ।।
ललित आँगन खेलै ठुमक-ठुमक[9] डोलै,
झनक-झुनक[10] बाजैं पैजनी मृदु मुखर[11] ।।
किंकिनी कलित कटि हाटक रतन जटित ।।
मृदु कर-कमल पहुचियाँ रुचिर वर।।

१ भेद । २ जीभ । ३ हिलतो है। ४ चित बहलाती है।
५ निद्रा। ६ इशारा। ७ इस बीच में। ८ पैर। ९ बालकों का धीरे-धीरे चलना। १० गहनों के बजने का शब्द विशेष। ११ बजनेवाला।

पियरी[१] पिछौरी झीनी और उपमा भीनी,[२]
बालक दामिनि मानों ओढ़े बारो[३] वारिधर॥
उर बघनखा कंठ कठुला झडूले[४] बार,
बेनी लटकनि मसि-बिंदु[४] मुनि-मनहर॥
अंजन-रंजित नैना चितवनि चित चोरै,
मुख-सोभा पर वारौं अमित असम-सर[५]।
चुटकी बजावति नचावति नंद-घरनि[६] बाल,
केलि गावति मल्हावति[७] प्रेम सुघर॥
किलकि-किलकि हँसै द्वै-द्वै दँतुरियां लसैं,
'सूरदास' मन बसैं तोतरे बचन वर॥११॥

आसावरी

भैया, मोहिं दाऊ बहुत खिझायो।[९]
मोसों कहत मोल कौ लीनों तू[१०] जसुमति[११] कब जायो?
कहा कहौं यहि रिस के मारे, खेलन हौं नहिं जातु।
पुनि-पुनि कहत, कौन है माता, को है तुमरो तातु?
गोरे नंद, जसोदा गोरी, तुम कत स्याम सरीर?
चुटकी दै-दै हँसत ग्वाल सब, सिखै देत बलवीर॥
तू मोही कों मारन सीखी, दाउहिं कबहुँ न खीझै।
मोहन कौ मुख रिससमेत लखि, जसुमति सुनि-सुनि रीझै॥
सुनहु कान्ह, बलभद्र चबाई[१२], जनमत ही कौ धूत[१३]।
'सूरस्याम' मो गोधन की सौं[१४], हौं माता तू पूत॥१२॥

अल्हैया

मो देखत जसुमति, तेरी ढोटा[१५] अबहीं माटी खाई।

---

१ पीली। २ रसभरी, सुन्दर। ३ छोटा बालक। ४ दिठौना। ५ कामदेव। ६ स्त्री। ७ खिलाती है। ८ दादा, बड़े भाई बलराम। ९ तंग किया। १० तुझे। ११ यशोदा। १२ चुग़ली करनेवाला। १३ धूर्त। १४ सौगंध, क़सम। १५ पुत्र।

इहि सुनि कै रिस करि उठि धाई, बाँह पकरि लै आई।।
इक कर सों भुज गहि गाढ़े करि[1], इक कर लीनें साँटी[2]।
मारति हौं तोहि अबहिं कन्हैया, बेगि न उगलै माटी।।
ब्रज-लरिका सब तेरे आगे, झूठी कहत बनाई।
मेरे कहे नाहीं तू मानति, दिखरायो मुख बाई[3]।।
अखिल ब्रह्मांड-खंड की महिमा, दिखराई मुखमाहीं।
सिन्धु सुमेर नदी बन पर्वत, चकृत भई मन माहीं।।
कर तें साँटि गिरति नहिं जानी, भुजा छाँड़ि अकुलानी।
'सूर' कहै जसुमत मुख मूँदहु, बलि गइ सारँगपानी[4]।।१३।।

धनाश्री

चोरी करत कान्ह धरि पाये[5]।
निसि बासर मोहिं बहुत सतायो, अब हरि हाथहिं आये।।
माखन दधि मेरो सब खायो, बहुत अचगरी[6] कीन्हीं।
अब तो फंद परै हौं लालन, तुम्हें भले मैं चीन्हीं।।
दोउ भुज पकरि कह्यो, कित जैहौ, माखन लेउँ मँगाई।
तेरी सौं मैं नेकु न चाख्यो, सखा गये सब खाई।।
मुख तन[7] चितै बिहँसि हँसि दीनों, रिस तब गई बुझाई।
लियो उर लाइ ग्वालिनी हरि कों, 'सूरदास' बलि जाई।।१४।।

गौरी

देखि सखी, बन तें जु बनें,[8] ब्रज आवत हैं नँदनंदन।
सीस सिखंडी[9] मुख मुरली तिमि, बन्यौ तिलक उर चंदन।।
कुटिल अलक मुख, चंचल लोचन, निरखत अति आनंदन।
कमल-मध्य मानौ द्वै खंजन, बँधे आइ उड़ि फंदन[10]।।
अरुन अधर छबि दसन बिराजत, जब गावत कलमंदन[11]।

---

१ जोर से। २ लकड़ी। ३ खोलकर, फैलाकर। ४ हाथ में धनुष लेनेवाले; विष्णुरूप श्रीकृष्ण। ५ पकड़ लिए गए। ६ शरारत। ७ मुंह की तरफ़। ८ श्रृंगार किए हुए। ९ मोर-पंख। १० जाल। ११ धीरे-धीरे मधुर ध्वनि से।

मुक्ता मनो लालमनि में पुट, धरे[1] मुरकि बर बंदन।
गोप-वेष गोकुल गो चारत, हैं प्रभु असुर-निकंदन।
'सूरदास' प्रभु सुजस बखानत, नेति-नेति[2] श्रुति-छंदन ॥१५॥

भैरवी

मैया, मैं न चरैहौं गाइ।
सिगरे ग्वाल घिरावत[3] मोसों, मेरे पाइँ पिराइ॥
जो न पत्याहि[4] पूंछ बलदाउहिं, अपनी सौंह[5] दिवाइ।
यह सुनि-सुनि जसुमति ग्वालनि को, गारी देत रिसाय।
मैं पठवति अपने लरिका कों, आवै मन बहराइ[6]।
'सूर'स्याम मेरो अति बालक मारत ताहि रिंगाइ[7]॥१६॥

सारंग

मेरे साँवरे जब मुरली अधर धरी। सुनि मुनि सिद्ध समाधि[8] टरी॥
सुनि थके देव विमान। सुरबधू चित्र-समान॥
गृह नखत तजत न रास[9]। याही[10] बँधै धुनि पास[11]।
सुनि आनँद-उमँग-भरे। जल-थल के अचल टरे॥
चराचर-गति विपरीत। सुनि बेनु[12]-कल्पित गीति॥
झरना झरत पाषान। गंधर्व मोहे गान॥
सुनि खग-मृग मौन धरे। फल दल तृन सुधि बिसरे॥
सुनि धेनु अति थकित रहे। तृन दंतहुँ नहीं गहे॥
बछवा न पीवै छीर। पंछी न मन में धीर॥

---

१ बंद करके रख दिए। २ "ऐसा नहीं है" अर्थात् ब्रह्म मन और वाणी से परे है। ३ इकट्ठा करते हैं। ४ विश्वास करती है। ५ सौगंध। ६ बहलाव। ७ चलाकर। ८ वह दशा जिसमें योगी अपने मन का आत्यंतिक निरोध कर लेता है। ९ राशि; ग्रहों के बारह स्थान। १० पथिक। ११ पाश; जल। १२ वंशी।

द्रुम बेली चपल भये। सुनि पल्लव प्रगत नये॥
जो बिटप चंचल पात। ते निकट कों अकुलात॥
अकुलित जे पुलकित गात। अनुराग नैन चुचात[1]॥
सुनि चंचल पवन थके। सरिता-जल चलि न सके॥
सुनि धुनि चलीं ब्रजनारि। सुत देह गेह बिसारि॥
सुनि थकित भयो समीर। बहै उलटो जमुना नीर॥
मनमोहन मदनगोपाल। तन स्याम नयन बिसाल॥
नवनील-तनु घनस्याम। नव पीतपट अभिराम॥
नव मुकुट नवघन दाम[2]। लावन्य कोटिक काम॥
मनमोहन रूप धर्‍यौ। तब काम कौ गर्ब हर्‍यौ॥
मेरे मदनगोपाल लाल[3]। सँग नागरी ब्रजबाल॥
नवकुंज जमुना-कूल[4]। देखत 'सूरदास' जनफूल[5]॥१७॥

बिलावल

माई[6] री, मुरली अति गर्व काहु बदति[7] नाहीं आजु।
हरि को मुखकमल देखि, पायौ सुखराजु॥
देखत कर पीठ[8] ढीठ, अधर छत्र छाहीं।
चमर चिकुर[9] राजत तहँ, सुन्दर सभा माहीं॥
जमुना के जलहिं नाहिं जलधि जान देति।*
सुर-पुर तें सुर-बिमान, भुवि बुलाइ लेति॥
थावर[10] चर[11] जंगम जहँ. करति जीति अजीति।
वेद को बिधि मेटि चलति; आपने ही रीति॥

---

१ चू रहा है। २ दामिनी। ३ प्यारा। ४ किनारा। ५ प्रसन्न होता है। ६ यह शब्द 'सखी' के लिए भी आता है। ७ लेखती है, समझती है। ८ आसन। ९ अलकावली रूपी चँवर। १० जड़। ११ चैतन्य।

*'जमुना......देति।' मुरली की मनोहर ध्वनि सुनकर यमुना का जल स्थिर हो जाता है।

बंसी-बस सकल 'सूर' सुर नर मुनि नाग।
श्रीपति हूँ श्री[1] बिसारी, एही अनुराग॥१८॥

मलार

मुरली तऊँ गोपालहिं भावति।
सुन री सखी, जदपि नँद-नंदहिं, नाना भाँति नचावति॥
राखति एक पायँ ठाढ़ो करि, अति अधिकार जनावति।
कोमल अंग आपु आज्ञा गुरु, कटि टेढ़ी ह्वै जावति॥
अति आधीन सुजान कनौड़े[2], गिरिधर नारि[3] नवावति।
आपुन पौढ़ि अधर-सेज्या[4] पर, कर सों पद पलुटावति[5]॥
भृकुटी कुटिल फरक नासापुट हम पै कोपि कुपावति॥
'सूर' प्रसन्न जानि एकौ छिन, अधर सुसीस डुलावति॥१९॥

जैतिश्री

ब्रजहिं बसे आपुहिं[6] बिसरायौ।
प्रकृति[7] पुरुष[8] एकै करि जानहुँ, बातनि भेद करायो॥
जल-थल जहाँ रहौ तुम बिनु नहिं बेद उपनिषद गायो।
द्वै तनु जीव एक हम तुम दोउ, सुख कारन[9] उपजायो॥
'सूरस्या[10] मुख देखि अलप हँसि, आनँद-पुंज बढ़ायो॥२०॥*

देश

करि मन नंदनंदन-ध्यान।
सेइ चरनसरोज सीतल, तजि विषै-रस-पान[11]॥
जानु जंघ त्रिभंग सुंदर, कलित कंचन-दंड।
काछनी कटि पीतपट दुति, कमल-केसर खंड॥

---

१ लक्ष्मी। २ एहसानमंद। ३ गर्दन। ४ ओठरूपी शय्या। ५ दबवाती है। ६ अपने स्वरूप को। ७ माया। ८ परमात्मा। ९ आनंद-अनुभव करने के लिए। १० मंद-मंद। ११ भोग-विलास।

*इस पद में शुद्ध द्वैतवाद का प्रकारांतर से निरूपण किया गया है।

मनु मराल प्रबाल छौना, किंकिनी-कल राउ[1]।
नाभि हृदय रोमावली अलि, चले सैन सुभाउ।।
कंठ मुक्तामाल मलयज, उर बनी वनमाल।
सुरसरी के तीर मानौं, लता स्याम तमाल।।
बाहु पानि सरोज पल्लव, गहे मुख मृदु बेनु।
अति बिराजति बदन-बिधु पर, सुरभि-रंजित रेनु।।
अरुन अधर कपोल नासा, परम सुन्दर नैन।
चलित[2] कुण्डल गंड-मंडल, मनहुँ निर्तत मैन।।
कुटिल कच भ्रू तिलक-रेखा, सीस सिखि[3] श्रीखंड[4]।
मनु मदन धनु सर सँधाने, देखि घन-कोदंड ।।
'सूर' श्रीगोपाल की छबि, दृष्टि भरि-भरि लेत।
प्रानपति की निरखि सोभा, पलक परन न देत।।२१।।

बिहाग

लोचन भृंग भये री, मेरे।
लोक-लाज बन घन[5] बेलीं-तजि, आतुर ह्वै जु गड़े रे।।
स्यामरूप-रस बारिज लोचन, तह जाइ लुब्धे रे।
लपटे लटकि पराग बिलोकनि, संपुट-लोभ परे रे।।
हँसनि-प्रकास-विभास[6] देखिकैं, निकसत पुनि तहँ बैठत।
'सूरस्याम' अंबुज कर चरननि, जहँ-तहँ भ्रमि-भ्रमि पैठत।।२२।।

बिहाग

नैन भये बोहित[7] के काग।
उड़ि-उड़ि जात पार नहिं पावैं, फिरि आवत तिहिं लाग[8]।।
ऐसी दसा भई री इनकी, अब लागे पछितान।
मो बरजत-बरजत उठि धाए, नहिं पायौ अनुमान।।

---

१ सुन्दर शब्द। २ चंचल, हिलते हुए। ३ मोर। ४ धनुष। ५ बहुत। ६ प्रभात का उजेला। ७ जहाज। ८ लालच।

वह समुद्र ओछे[१] बासन[२] ये, धरैं कहाँ सुखरासि।?
सुनहु 'सूर' ये चतुर कहावत, वह छबि महाप्रकासि॥२३॥

झँझोटी

रास-रस-रीति नहिं[३] बरनि आवै।
कहाँ वैसी बुद्धि, कहाँ वह मन लहौं, कहाँ इह चित्त जिय भ्रम भुलावै॥
जो कहौं कौन मानै निगम-अगम[४] जो, कृपा बिन नहीं या, रसहिं पावै।
भाव[५] सों भजै, बिन भाव में ये नहीं; भाव ही माहिं भाव यह बसावै॥
यहै निज मन्त्र यह ग्यान यह ध्यान है, दरस दंपति भजन सार गाऊँ।
इहै माँग्यो बारबार प्रभु 'सूर' के नैन दोउ रहैं, अरु नित्य नर देह पाऊँ॥२४॥

सारंग

बाँसुरी बिधिहूँ ते प्रबीन।
कहिये काहि आहि को ऐसो, कियो जगत आधीन॥
चारि बदन उपदेस बिधाता, थापी थिर चर नीति।
आठ बदन[६] गर्जति गर्बीली, क्यों चलिये यह रीति॥
पिपुल विभूति[७] लई चतुरानन, एक कमल करि थान[८]।
हरिकर कमल जुगल पर बैठी, बाढ़्यौ यहि अभिमान॥
एक बेर श्रीपति के सिखये, उन लिय सब गुन गान।
याके तो नँदलाल लाड़िलो, लग्यो रहत नित कान॥
एक मराल-पीठि-आरोहन[९], बिधि भयो प्रबल प्रसंस।
यह तौ सकल बिमान किये, गोपीजन-मानस हंस॥
श्री[१०] बैकुंठनाथ-उर-बासिनि, चाहत जा पद-रैन[११]।

---

१ छोटे। २ पात्र। ३ भगवान की भक्ति का रहस्य। ४ असमर्थ। ५ प्रेम। ६ आठ मुख, अर्थात् आठ छेद। ७ ऐश्वर्य। ८ स्थान। ९ मनरूपी हंस; वंशी ने गोपियों के मन पर सवारी की है, अर्थात् उनके मन को मोहित कर लिया है। १० लक्ष्मी। ११ रेणु, धूल।

*यह पद वैष्णव-संप्रदाय के अनुसार रहस्यात्मक रास-रस के सिद्धान्त का द्योतक है।

ताकौ मुख सुखमय सिंहासन, करि बैसी[1] यह ऐन॥
अधर-सुधा पी कुल ब्रत टार्‌यौ, नहीं सिखा नहिं ताग[2]।
तदपि 'सूर' या नंद-सुवन कों, याही सौं अनुराग॥२५॥

बिहाग

जसोदा बार-बार यों भाखै।
है ब्रज में कोउ हितू हमारो; चलत गोपालहिं राखै?
महा काज मेरे छगन-मगन[3] कौ, नृप[4] मधुपुरी[5] बुलायो।
सुफलक-सुत[6] मेरे प्रान-हनन कों, कालरूप ह्वै आयो॥
बरु[7] ये गोधन हरौ कंस सब, मोहिं बंदि लै मेलौ।
इतने ही सुख कमल-नयन मेरी, अँखियन आगे खेलो॥
बासर बदन बिलोकत जीवों, निसि निज अंकम लाऊं।
तेहिं बिछुरत जो जीवों, कर्मबस, तौ हँसि काहि बोलाऊँ?
कमल-नयन गुन टेरत-टेरत, अधर बदन कुम्हिलानी।
'सूर' कहाँ लगि प्रकट जनाऊं, दुखित नंद की रानी॥ २६॥

बिहाग

मेरे कुँवर कान्ह बिन सब कछु, वैसेहिं[8] धर्‌यो रहै।
को उठि प्रात होत लै माखन, को कर नेत[9] गहै?
सूने भवन जसोदा सुत कें, गुन-गनि[10] सूल सहै॥
दिन उठि घेरत ही घर ग्वारिनि, उरहन[11] कोउ न कहै॥
जो ब्रज में आनँद हो[12] सो तो, मुनि मनसहु न गहै।
'सूरदास' स्वामी बिनु गोकुल, कौड़ी हूं न लहै॥२७॥

सोहनी

प्रीति करि काहू सुख न लह्यो।

---

१ बैठी। २ यज्ञोपवीत। ३ बचपन में श्रीकृष्ण का छोटा-सा प्यार का नाम। ४ कंस से तात्पर्य। ५ मथुरा। ६ अक्रूर। ७ चाहे, बल्कि। ८ ज्यों का त्यों। ९ मथानी। १० गुणों को याद करके। ११ उपालंभ। १२ था।

प्रीति पतंग करी दीपक सों, आपै प्रान दह्यो ॥
आलसुत[१] प्रीति करी जलसुत[२] सों, संपति हाथ गह्यो।
सारँग[३] प्रीति करी जो नाद[४] सों, सन्मुख बान सह्यो ॥
हम जो प्रीति करी माधव सों, चलत न कछू कह्यो।
'सूरदास' प्रभु बिन दुख दूनो, नैननि नीर बह्यो ॥२८॥

सोहनी

बहुत दिन जीवो पपीहा प्यारो।
बासर रैनि नाँव लै बोलत, भयौ बिरह-ज्वर कारो ॥
आपु दुखित पर दुखित जानि जिय, चातक नाँव तुम्हारो।
देखो सकल विचारि सखी जिय, बिछुरन की दुख न्यारो[५] ॥
जाहिं लगै सोई पै जानै, प्रेम-बान अनियारो[६]।
'सूरदास' प्रभु स्वाति-बूँदि लगि, तज्यौ सिंधु करि खारो ॥२९॥

सारंग

काहे कों पिय पियहिं रटत हो, पिय को प्रेम तेरो प्रान हरैगो।
काहे कों लेत नयन जल भरि-भरि, नयन भरे तें कैसे सूल[७] टरैगो ॥
काहे कों स्वाँस उसाँस लेति हो, बैरी बिरह को दावा[८] जरैगो।
छाल सुगंध सेज पुहुपावलि[९] हार छुए तें हिय हार जरैगो ॥
बदन दुराइ बैठि मंदिर में, बहुरि निसापति उदय करैगो।
'सूर' सखी अपने इन नैननि, चन्द्र चितैं जिनि, चन्द्र जरैगो ॥३०॥

बिलावल

नाथ, अनाथ की सुधि लीजै।
गोपी ग्वाल गाइ गोसुत सब, दीन मलीन दिनहिं दिन छीजै[१०]।
नैन सजल धारा बाढ़ी अति, बूड़त ब्रज किन[११] कर गहि लीजै।

---

१ भौंरे का बच्चा। २ कमल। ३ हिरण। ४ गाय। ५ निराला। ६ नुकीली। ७ कष्ट। ८ आग। ९ पुष्पावलि। १० दुबले होते जाते हैं। ११ क्यों नहीं।

इतनी बिनती सुनहु हमारी, बारक[1] हूं पतियां[2] लिखि दीजै ।।
चरनकमल-दरसन-नवनौका, करुनासिंधु जगत जसु लीजै।
'सूरदास' प्रभु आस मिलन की, एक बार आवन ब्रज कीजै ।।३१।।

मलार

सखी, इन नैनन तें घन हारे।
बिन ही रितु बरषत निसिबासर, सदा मलिन दोउ तारे[3] ।।
ऊरधस्वास[4]-समीर तेज अति, सुख-अनेक-द्रुम डारे[5]।
दिसिन्ह सदन करि बसे बचन-खग, दुख पावस के मारे।।
सुमिरि-सुमिरि गरजत जल छाँड़त, अंसु सलिल के धारे।
बूड़त ब्रजहिं 'सूर' को राखै, बिनु गिरिवरधर प्यारे।।३२।।

मलार

ब्रज पर बदरा[6] आये गाजन[7]।
मधुवन को पठये सुन सजनी, फौज मदन लाग्यो साजन।।
ग्रीव रंध्र[8] नैन चातक जल, पिकगन मुख बाजे बाजन।
चहुँदिसि तें तनु बिरहा घेरो, अब कैसे पावतु भाजन।।
कहियत हुते स्याम परपीरक,[9] आये संकट के काजन।
'सूरदास' श्रीपति की महिमा, मथुरा लागे राजन।।३३।।

सोरठ

नैना भये अनाथ हमारे।
मदनगोपाल वहां तें[10] सजनी, सुनियतु दूरि सिधारे।।
वै हरि जल, हम मीन बापुरी, कैसे जिवहिं निनारे[11]।।
हम चातक चकोर स्यामघन, बदन-सुधा नित प्यारे।।
मधुबन बसत आस दरसन की, जोइ[12] नैन मग हारे।

---

१. एक बार। २. चिट्ठी। ३. आँखों की पुतलियाँ। ४. आह। ५. ढहाये। ६. बादल। ७. गरजने के लिए। ८. छेद। ९. दूसरे की पीड़ा जानने वाले। १०. मथुरा से। ११. न्यारे। १२. देखकर।

'सूरस्याम' कीनीं पिय ऐसी, मृतकहुँ तें पुनि मारे ॥३४॥

आसावरी

राधा-माधव भेंट भई।
राधा माधव, माधव राधा, कीट-भृंग-गति[१] होइ जो गई ॥
माधव राधा के रँग राचे, राधा माधव-रंग-रई।
माधव-राधा-प्रीति निरंतर, रसना कहि न गई ॥
बिहँसि कह्यो हम-तुम नहिं अंतर, यह कहि ब्रज पठई।
'सूरदास' प्रभु राधा माधव, ब्रज-बिहार नित नई-नई ॥३५॥

कान्हरा

ऊधो, ब्रज की दसा बिचारो।
ता पाछे यह सिद्धि आपनी, जोग-कथा विस्तारो ॥
जा कारन तुम पठये माधौ, सो सोचौ जिय माहीं।
कितनो बीच बिरह-परमारथ[२], जानत हौ किधौं नाहीं?
तुम परबीन[३] चतुर कहियत हौ, संतत निकट रहत हौ।
जल बूड़त अवलंब फेन कौ, फिर-फिर कहा गहत हौं?
वह मुसुकानि मनोहर चितवनि, कैसे उर तें टारौं ॥
जोग-जुगुति अरु मुकुति परमनिधि, वा मुरली पर वारौं ॥
जिहि उर कमल-नयन जु बसत हैं, तिहि निर्गुन[४] क्यों आवै?
'सूरदास' सो भजन बहाऊँ[५], जाहि दूसरो भावै ॥३६॥

श्री

ऊधो ना हम बिरहिनि ना तुम दास।
कहत-सुनत घट[६] प्रान रहत हैं, हरि तजि भजहु अकास ॥
बिरही मीन मरै जल बिछुरे, छाँड़ि जीवन की आस।

---

१. भृङ्गी कीड़े को पकड़कर अपने रूप में मिला लेता है, इसी से 'कीट-भृङ्ग' न्याय एकरूपता के अर्थ में आता है। २. ज्ञान, आत्मबोध। ३. प्रवीण, चतुर। ४. सत्त्व, रज और तमोगुण से रहित ब्रह्म। ५. दूर करूँ। ६. शरीर।

दास-भाव नहिं तजत पपीहा, बरु सहि रहत पियास ॥
पंकज परम पंक में बिहरत[1], बिधि कियो नीर निरास।
राजिव रवि कौ दोष न मानत, ससि सों सहज उदास[2] ॥
प्रगट प्रीति दशरथ प्रतिपाली, प्रियतम कौ बनबास।
'सूरस्याम' सों पतिव्रत कीन्हों, छाँड़ि जगत-उपहास ॥३७॥

बिलावल

सब जग तजे प्रेम के नाते।
चातक स्वाति[3] बूँद नहिं छाँड़त, प्रगट पुकारत ताते ॥
समुझत मीन नीर की बातैं, तजत प्रान हठि हारत।
जानि कुरंग प्रेम नहिं त्यागत, जदपि ब्याध[4] सर मारत।
निमिष चकोर नैन नहिं लावत,[5] ससि जोवत जुग बीते।
ज्योति पतंग देखि बपु जारत, भये न प्रेमघट रीते[6] ॥
कहि अलि क्यों बिसरति वै बातैं, सँग जो करीं ब्रजराजै।
कैसे 'सूरस्याम' हम छाँड़ैं, एक देह के काजैं ॥३८॥

धनाश्री

कोउ ब्रज बाँचत नाहिंन पाती[7]।
कत लिखि-लिखि पठवत नँद-नंदन, कठिन बिरह की काती[8] ॥
नयन सजल, कागद अति कोमल, कर अँगुरी अति ताती।
परसत जरै बिलोकत भींजति, दुहूँ भाँति दुख छाती ॥
क्यों समुझै ये अंक[9] 'सूर' सुनु, कठिन मदन सरघाती।
देखे जियहिं स्यामसुन्दर के, रहहिं चरन दिनराती ॥३९॥

केदारा

उर में माखन-चोर गड़े[10]।

---

१. फट या दरक जाता है। २. निरपेक्ष, बेपरवाह। ३. नक्षत्र, जिसमें बरसा हुआ पानी चातक पीता है। ४. बहेलिया। ५. बन्द करता है। ६. खाली। ७. पत्री। ८. छूरी। ९. अक्षर। १०. बस गये।

अब कैंसहुँ निकसत नहिं ऊधो, तिरछे ह्वै जु अड़े ।।
जदपि अहीर जसोदा-नंदन, तदपि न जात छँड़े[1]।
वहां बने जदुबंस महाकुल, हमहिं न लगत बड़े ।।
को वसुदेव, देवकी है को, ना जानैं औ बूझैं।
'सूर' स्यामसुन्दर बिनु देखें, और न कोऊ सूझैं ।।४०।।

बिलावल

ऊधो, मन-माने की बात।
दाख, छोहारा छाँड़ि अमृतफल, विषकीरा विष खात ।।
जो चकोर[2] को देइ कपूर कोइ, तजि अंगार अघात।
मधुप करत घर कोरे काठ में, बँधत कमल के पात[3] ।।
ज्यों पतंग हित जानि आपनो, दीपक सों लपटात।
'सूरदास' जाकौ मन जासों, सोई ताहि सुहात ।।४१।।

भैरवो

कहाँ लौं कहिए ब्रज की बात।
सुनहु स्याम, तुम बिन उन लोगनि, जैसे दिवस बिहात[4] ।।
गोपी ग्वाल गाइ गो सुत वै, मलिन-बदन कृसगात।
परमदान जनु सिसिर-हिमीहत[5], अंबुजगन बिन पात ।।
जो कहुँ आवत देखि दूर तें, सब पूँछति कुसलात।
चलन न देत प्रेम-आतुर उर, कर चरननि लपटात ।।
पिक चातक बन बसन न पावहिं, बायस[6] बलिहिं न खात।
'सूरस्याम' संदेसन के डर, पथिक न वहि मग जात ।।४२।।

देश

चित्त दै सुनौ स्याम प्रवीन।

---

१. छोड़े। २. एक पक्षी; प्रवाद है कि यह आग खाया करता है। ३. पत्ता। ४. बीतते हैं। ५. पाले से मारा हुआ। ६. कौए ब्रज में नहीं जाते हैं और न वहाँ कुछ खाते ही हैं, क्योंकि वहाँ के लोग इनसे सदा संदेश ही कहते हैं।

हरि तुम्हारे बिरह राधा, मैं जु देखी छीन ।।
तज्यौ तेल तमोल[१] भूषन, अंग बसन मलीन।
कंकना कर बाम राख्यो, गाढ़ भुज गहि लीन ।।
जब सँदेसो कहन सुन्दरि, गवन मोतन[२] कीन।
खसि[३] मुद्रावलि[४] चरन अरुझी, गिरि धरनि बलहीन ।।
कंठ बचन न बोल आवै, हृदय आँसुनि भीन।
नैन जल भरि रोइ दीनों, ग्रसित-आपद दीन ।।
उठी बहुरि सँभारि भट[५] ज्यों, परम साहस कीन।
'सूर' प्रभु कल्यान ऐसे, जियहि आसा-लीन ।।४३।।

मल्हार

मधुकर ये मन बिगरि परे।
समुझत नाहिं ग्यान गीता कौ, हरि मुसुकानि-अरे[६]।
बालमुकुन्द रूप-रस-राचे[७], ताते बक्र[८] खरे ।।
होय न सूधी स्वान-पूंछ ज्यों, कोटिक जतन करे।
हरिपद नलिन-बिसारत नाहिंन, सीतल उर सँचरे।
जोग गँभीर[९] है अंधकूप तेहि, देखत दूरि डरे ।।
हरि-अनुराग-सुहाग-भाग भरे, अमिय तें गरल[१०] गरे।
'सूरदास' बरु[११] ऐसेहिं रहिहैं, कान्ह-वियोग-भरे ।।४४।।

धनाश्री

उधो, मन नाहीं दस-बीस।
एक हुतो सो गयो स्यामसँग, को आराधै ईस ?
भई अति सिथिल सबै माधव बिनु, जथा देह बिनु सीस।
स्वासा अटकि रही आसा लगि, जीवहिं कोटि-बरीस[१२] ।।

---

१. तांबूल; पान। २. मेरी ओर। ३. ढीली होने के कारण खिसककर। ४. अँगूठियाँ। ५. योद्धा। ६. अड़े हुए, फँसे हुए। ७. रँगे हुए। ८. टेढ़ा। ९. गहरा। १०. विष। ११. चाहे, भले ही। १२. वर्ष।

तुम तौ सखा स्यामसुन्दर के, सकल जोग के ईस।
'सूरजदास' रसिक की बतियाँ, पुरवौ मन जगदीस ॥४५॥

ईमन

ऊधो! मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं।
वृन्दाबन गोकुल-तन[1] आवत, सघन तृनन की छाहीं॥
प्रातसमय माता जसुमति अरु, नंद देखि सुख पावत।
माखन-रोटी दह्यो[2] सजायो[3], अति हित साथ खवावत॥
गोपी ग्वाल-बाल-सँग खेलत, सब दिन हँसत सिरात[4]।
'सूरदास' धनि-धनि ब्रजबासी, जिनसों हँसत ब्रजनाथ॥४६॥

ईमन

अब मोहिं निसि देखत डर लागै।
बार-बार अकुलाइ देह तें, निकसि-निकसि मन भागै॥
प्राची[5] दिसा पेखि पूरन ससि, ह्वै आयो तन तातो[6]।
मानहुँ मदन बदन बिरहिनि को, करि लीनों रिस रातो॥
भृकुटी कुटिल कलंक चाप मनु, अति रिसि सों सर साधे।
चहुँधा किरिनि पसारे पासिनि[7], हठि कर जोगिन बाँधे॥
सुनि सठ सोइ प्रानपति मेरो, जाको जसु जग जानै।
'सूर' सिंधु बूड़त ते राख्यो, ताहू कृतहिं[8] न मानै॥४७॥

मल्हार

हमारे माई, मोरउ बैर परे।
घन गरजे बरजे नहिं मानत, त्यों-त्यों रटत खरे॥
करि इक ठौर बीनि इनके पँख, मोहन सीस धरे।
याही तें हमहीं कों मारत, हरि हीं ढीठ करे॥
कह जानिए, कौन गुन सखि री, हमसों रहत अरे।

---

१. ओर। २. वही। ३. सजा हुआ। ४. बीतता है। ५. पूर्व। ६. गरम। ७. जाल फँसाने को। ८. उपकार को।

'सूरदास' परदेस बसत हरि, ये बन तें न टरे॥४८॥

मालकोश

ब्रजवासिन सों कह्यो, सबन तें ब्रज हित मेरे।
तुमसों मैं नहिं दूर रहत हौं, हौं सबहिन के नेरे[1]॥
भजै मोहिं जो कोइ भजौं मैं, निसिदिन तिनकौं भाई।
मुकुर[2] माहिं ज्यों रूप आपुनों, आपुन सम दरसाई॥
यह कहिकैं सम देत सकलजंन, नयन रहे जल छाई।
'सूरस्याम' कौ प्रेम कछू अब, मोपै कह्यो न जाई॥४९॥

बिलावल

नमो नमस्ते बारंबार। मदन-सदन[3] गोबिंद मुरार॥
माया लोभ क्रोध अरु मान। ये सब त्रय गुन[4] फाँस समान॥
काल सदा सर साधे रहै। क्यों करि नर तुव सुमिरन कहै॥
तुम निर्गुन उदय निराकार। 'सूर' अमर हम रहे पचि हार॥
तुमरो मर्म न जानै सार। नर बपुरो क्यों करै बिचार?
अरुन[5] असित[6] सित[7] बपु अनुहार। करत जगत में तुम अवतार॥
सो जग को मिथ्या कहि जाय? जहाँ तरे तुम्हरे गुन गाइ॥
प्रेमभक्ति बिनु मुक्ति न होइ। नाथ, कृपा करि दीजै सोइ॥
और सकल हम देख्यो जोइ। तुम्हरी कृपा होइ सो होइ॥
इह तनु है प्रभु जैसे ग्राम। यामें सब्दादिक[8] बिस्राम॥
अधिष्ठाता तुम हौ भगवान। जान्यो जगत न तुम अस्थान[9]॥
तुम स्वासा में पुहुमी[10] नाथ। स्वास रूप हम लख्यो न बात॥
कहा कहि तुम्हरी अस्तुति करैं। जानी नमो नमो उच्चरैं॥

---

१. पास। २. दर्पण। ३. कामदेव के समान सुन्दर। ४. सत्व, रज और तम। ५. लाल, द्वापर में भगवान् का रंग लाल माना गया है। ६. कृष्ण, कलि में भगवान् का रंग काला माना गया है। ७. सफेद, सत्ययुग में, श्वेतवर्ण माना गया है। ८. शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श ये पंचेन्द्रियों के विषय हैं। ९. स्थान। १०. पृथ्वी।

जगत-पिता तुमहीं हौ ईस। यातें हम बिनवत जगदीस॥
तुम-सम द्वितिया और न आहि। पटतर देहिं नाथ हम काहि?
सुक[१] जैसे वेद-स्तुति गाई। तैसे हीं मैं कहि समुझाई॥
'सूर' कह्यौ श्रीमुख उच्चार। कहै-सुनै सो तरै भवपार॥५०॥

जैतिश्री

जैसे राखहु वैसेहि रहौं।
जानत दुख-सुख सब जन के तुम, मुख करि कहा कहौं?
कबहुँक भोजन लहौं कृपानिधि, कबहूँ भूख सहौं॥
कबहुँक चढ़ौं तुरंग[२] महागज, कबहुँक भार बहौं[३]॥
कमल-नयन घनस्याम मनोहर, अनुचर भयो रहौं।
'सूरदास' प्रभुभक्त कृपानिधि, तुम्हरे चरन गहौं॥५१॥

धनाश्री

सुआ[४], चलु वा बन को रसु लीजै।
जा बन[५] कृष्ण-नाम-अमरित-रस, स्रवन-पात्र भरि पीजै॥
को तेरो पुत्र पिता तू काको, मिथ्या भ्रम जग केरो॥
काल-मँजार[६] लै जैहै तोकों, तू कहै 'मेरो-मेरो'॥
हरि नाना रस मुकति-क्षेत्र चलु, तोकों हौं दिखराऊं।
'सूरदास' साधुनि की संगति, बड़े भाग्य जो पाऊं॥५२॥

बिहाग

रे मन मूरख, जनम गँवायो।
करि अभिमान विषयरस राँच्यो[७], स्यामसरन नहिं आयो।
यह संसार फूल सेमर[८] कौ, सुन्दर देखि भुलायो॥

---

१. वेदव्यास के पुत्र श्री शुकदेव जी। २. घोड़ा। ३. ढोऊँ। ४. तोता; यहाँ जीव से आशय है। ५. वह बन अर्थात् दिव्य गो लोक। ६. बिल्ली। ७. रंग गया, लीन हो गया। ८. शाल्मलि; इस पेड़ में सिर्फ लाल-लाल फूल होते हैं, जिनमें बड़ी मुलायम रुई निकलती है।

चाखन लाग्यो रुई गई उड़ि, हाथ कछू नहिं आयो ।।
कहा भयौ अब के मन सोचे, पहिले नाहिं कमायो।
कहत 'सूर' भगवंत-भजन बिनु, सिर धुनि-धुनि पछितायो ।।५३।।

गौरी

जादिन मन-पंछी[1] उड़ि जैहैं।
ता दिन तेरे तन-तरुवर के, सबै पात झरि जैहैं।
घर के कहें, बेगि ही काढ़ौ, भूत भये कोउ खैहैं ।।
जा प्रीतम सों प्रीति घनेरी, सोऊ देखि डरैहैं।
कहँ वह ताल[2] कहाँ वह सोभा, देखत धूरि उड़ैहैं ।।
भाइ बंधु अरु कुटुँब-कबीला,[3] सुमिरि-सुमिरि पछितैहैं।
बिनु गोपाल कोउ नहिं अपनो, जसु अपजसु रहि जैहैं ।।
जो 'सूरज' दुर्लभ देवन कों, सतसंगति में पैहैं ।।५४।।

सारंग

रे मन, जनम अकारथ[4] जात।
बिछुरे मिलन बहुरि कब ह्वैहै, ज्यों तरुवर के पात ।।
सन्निपात[5] कफ कंठ-बिरोधी, रसना टूटी बात।
प्रान लिये जम जात मूढ़मति, देखत जननी तात ।।
छिन इक माहिं कोटि जुग बीतत, पीछे नरक की बात।
यह जग प्रीति सुआ सेमर कौ, चाखत ही उड़ि जात ।।
जम के फंद नाहिं परि बौरे, चरनन चित्त लगात।
कहत 'सूर' बिरथा यह देही, अंतर क्यों इतरात[6] ।।५५।।

सारंग

कहाँ सुख ब्रज कौ सो संसार।

---

१. पक्षी, प्राण। २. शरीर। ३. स्त्री-पुत्रादि। ४. व्यर्थ। ५. त्रिदोष नाम का महाभयंकर रोग। ६. घमंड करता है।

कहाँ सुखद बंसीबट[१] जमुना, यह मन सदा बिचार।
कहँ बनधाम, कहाँ राधा सँग, कहाँ संग ब्रज-बाम।
कहँ रस रास बीच अंतरसुख,[२] कहाँ नारि तनु दाम॥
कहाँ लता, तरु-तरु प्रति झूलनि, कुंज-कुंज बनधाम।
कहाँ बिरह-सुख[३] बिनु गोपिन सँग, 'सूरस्याम' मम काम॥५६॥

भैरवी

सदा एकरस एक अखंडित, आदि अनादि अनूप।
कोटि कल्प बीतत नहिं जानत, बिहरत जुगलस्वरूप[४]॥
सकल तत्व[५] ब्रह्माण्ड देव पुनि, माया सब बिधि काल।
प्रकृतिरूप श्रीपति[६] नारायण, सब हैं अंस गोपाल[७]॥
कर्मयोग पुनि ग्यान, उपासन, सबहीं भ्रम भरमायो।
श्रीवल्लभ[८] गुरु तत्व[९] सुनायो, लीला-भेद बतायो॥
तादिन तें हरि-लीला गायी, एक लच्छ पद बंद।
ताकौ सार 'सूर सारावलि', गावत अति आनन्द॥५७॥

---

१. एक वटवृक्ष, जिसके नीचे खड़े होकर श्रीकृष्ण वंशी बजाया करते थे। आज भी यह स्थान 'वंशीवट' के नाम से प्रसिद्ध है। २. आत्मानन्द। ३. विरहानन्द; विरह में भी बड़ा भारी आनन्द होता है। अत्यन्त विरहासक्ति ही भक्ति की पराकाष्ठा है। ४. राधा-कृष्ण। ५. पचीस तत्त्व। ६. लक्ष्मीपति विष्णु। ७. महाविष्णु। ८. श्री वल्लभाचार्य, जिन्होंने विष्णुस्वामी सम्प्रदाय के अन्तर्गत 'पुष्टिमार्ग' सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। सूरदास जी इनके पट्ट शिष्य थे। ९. सारस्वरूपा प्रेमपरा भक्ति।

इस पद में सूरदासजी अपना वैष्णव सिद्धान्त कह रहे हैं। युगलस्वरूप राधाकृष्ण निरन्तर बिहार करते हैं। उस बिहारस्थली में केवल गोपियों (मुक्त जीवात्मा, जिन्हें कबीर साहब 'हंस' कहते हैं) की पहुँच है। वहाँ काल की गति नहीं। प्रकृति, पुरुष, काल आदि सब नित्यविहारी के अंश मात्र हैं।

बिलावल

हरि हरि हरि हरि सुमिरन करौ। हरि-चरनारबिंद उर धरौ॥
हरि की कथा होइ जब जहां। गंगाहू चलि आवै तहां॥
जमुना सिंधु सरस्वति आवैं। गोदावरी बिलंब न लावैं।
सर्ब तीरथ को बासा[१] तहाँ। 'सूर' हरि-कथा होवै जहां[२]॥५८॥

१. वास। २. यह पद निम्नलिखित श्लोक का छायानुवाद जान पड़ता है—
तत्रैव गंगा यमुना च वेणी, गोदावरी सिंधु सरस्वती च।
सर्वाणि तीर्थानि वसंति तत्र, यत्राच्युतोदारकथाप्रसंगः॥

नंददास

छप्पय

लीला-पद-रस-रीत-ग्रंथ-रचना में नागर।
सरस-उक्ति-युत-युक्ति, भक्ति-रह-गान-उजागर॥
प्रचुर पथ लौं सुजसु रामपुरग्राम-निवासी।
सकल सुकल-संवलित भक्त-पद-रेनु-उपासी॥
चंद्रहास-अग्रज-सुहृद, परमप्रेम-पथ में पगे।
नंददास आनन्दनिधि, रसिक सुप्रभु-हित-रँगमगे॥

—नाभाजी

उपर्युक्त छप्पय से केवल इतना ही प्रकट होता है कि नंददासजी किसी रामपुर ग्राम के निवासी थे, और चन्द्रहास के जेठे भाई से उनकी घनिष्ठ मित्रता थी। प्रश्न यह है कि रामपुर ग्राम और चंद्रहास से यहाँ क्या तात्पर्य है? पर इसमें सन्देह नहीं, कि छप्पय में उल्लिखित नंददास अष्टछाप के ही नंददास हैं, अन्य नहीं। यह बात लोक-प्रचलित है कि नंददासजी गोसाईं तुलसीदास के बड़े या छोटे भाई थे। इसका प्रमाण "२५२ वैष्णवों की वार्ता" नामक ग्रन्थ माना जाता है। स्वर्गीय बाबू राधाकृष्णदासजी ने स्वसंपादित 'रासपंचाध्यायी' में लिखा है कि "२५२ वैष्णवों की वार्ता में नंददासजी 'सनौढ़िया' ब्राह्मण तुलसीदास के छोटे भाई थे। ये दोनों भाई श्री स्वामी रामानंद जी के शिष्य थे। इत्यादि" 'मिश्रबंधुविनोद' में लिखा है कि "वार्ता" देखने से प्रकट हुआ कि उसमें नंददास को 'केवत' (?) ब्राह्मण और गोस्वामी तुलसीदास का भाई कहा गया है। इससे प्रकट है कि नंददासजी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। बड़े आश्चर्य की बात है कि एक ही 'वार्ता' से एक

महोदय नंददास को सनौढ़िया ब्राह्मण प्रमाणित कर रहे हैं, तो दूसरे केवत या कान्यकुब्ज।[1]

हमारे सामने वैष्णव ठाकुरदास सूरदास द्वारा प्रकाशित और मुंबई के जगदीश्वर प्रेस में मुद्रित '२५२ वैष्णवों की वार्ता' प्रस्तुत है। यह संस्करण संवत् १९४७ का है। इसमें २४ पृष्ठ पर नंददासजी के सम्बन्ध में जो लिखा उसे हम यहाँ अविकल उद्धृत करते हैं:

"सो वे नंददास तुलसीदास के छोटे भाई हते। सो बिनकूं नाच तमासा देखबे कौ तथा गान सुनबे कौ सौक बहुत हतो।" इत्यादि।

'नंददासजी की वार्ता' में हमें न तो सनौढ़िया का ही और न 'केवत' ब्राह्मण का ही कोई उल्लेख मिला है। 'वार्ता' में श्री रामचन्द्रजी के अनन्य भक्त तुलसीदास का नाम अवश्य आया हैं, किन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि यह तुलसीदास 'रामचरित-मानस' के लेखक गोसाईं तुलसीदास ही थे। दूसरे, कहीं भी गोसाईं जी ने नन्ददासजी के संबंध में कोई चर्चा नहीं की है। तीसरे, गोसाईं तुलसीदास ऐसे हठधर्मी भी नहीं थे कि नंददास को द्वारिकाधीश रणछोड़ जी का दर्शन करने के लिए मना करते, जैसा कि 'वार्ता' में लिखा है। सारांश यह, कि नन्ददास और गोसाईं जी का सहोदर होना सिद्ध नहीं होता। यह भी ठीक-ठीक मालूम नहीं हो सकता कि नन्द-दास जी सनौढ़िया थे, सरयूपारीण थे, केवत या कान्यकुब्ज थे, अथवा कोई और। यदि गोसाईं तुलसीदास ही से किसी प्रकार सम्बन्ध जोड़ना इष्ट ही हो तो यह संभव हो सकता है कि ये दोनों महानुभाव कभी गुरु-भाई रहे हों।

राजा प्रतापसिंह-कृत 'भक्तकल्पद्रुम' (जो 'विनोद' में भी प्रामाणिक माना गया है) में, नाभाजी के ही अनुसार नन्ददास को रामपुर-निवासी

---

१. समझ में नहीं आता कि 'हिन्दी-नवरत्न' में यह कैसे लिखा गया कि "पूरा जिला बांदा और राजापुर के इर्द-गिर्द कान्यकुब्ज द्विवेदियों की बस्ती है, न कि सरवरिया ब्राह्मणों की।" राजापुर खास में कुछ घर कान्यकुब्ज ब्राह्मणों के आजकल हैं। इर्द-गिर्द तो कान्यकुब्ज शायद हैं ही नहीं। उधर सरयूपारीण ब्राह्मण ही पाये जाते हैं।

चंद्रहास का पुत्र माना है। नन्ददास को चंद्रहास का पुत्र लिखकर राजासाहब ने भारी भूल की है। नाम, ग्राम और कुल के संबंध में हमें नाभाजी की 'भक्तमाल' ही अधिक प्रमाणित जँचती है। इसका यह अर्थ नहीं कि 'वार्ता' में उल्लिखित चरित्र सर्वथा असत्य है। 'वार्ता' अक्षरशः सत्य है, किन्तु उससे यह ध्वनि नहीं निकलती कि नन्ददास कहाँ के निवासी थे, किस तुलसीदास के भाई थे और किस जाति के थे।

'वार्ता' में लिखा है कि द्वारिका जाते हुए नन्ददास जी सिंघुनद ग्राम में एक रूपवती खत्रानी पर आसक्त हो गये। यह उस स्त्री के घर की फेरी दिया करते थे। घरवालों ने इन्हें बहुत कुछ हटाया, पर यह वहाँ से किसी तरह न हटे। इन्होंने उस सुंदरी खत्रानी को रणछोड़नाथ और उसके घर को द्वारिका समझ लिया। लाचार होकर घरवाले उस स्त्री को लेकर इनसे पिंड छुड़ाने गोकुल को चले। आप भी उन लोगों के पीछे-पीछे चलने लगे। गोकुल गाँव में आकर गोसाईं विट्ठलनाथजी के सदुपदेश से इनका सारा विषय-मोह दूर हो गया और कुछ दिनों के बाद यह गोसाईं जी के पट्टशिष्यों में गिने जाने लगे। श्री नवनीतप्रियजी के आगे नंददासजी प्रायः कृष्ण-कीर्तन किया करते थे। इनकी भक्ति-भाव-भरी पदावली पर गोसाईं विट्ठलनाथजी ऐसे मुग्ध हो गये कि इन्हें 'अष्टछाप' में उपर्युक्त स्थान दे दिया। अष्टछाप में यदि सूरदास सूर्य हैं, तो नन्ददास निश्चय ही चंद्रमा हैं। इन्होंने 'रासपंचाध्यायी', 'दशमस्कन्धभागवत', 'रुक्मिणीमंगल' 'रूपमंजरी', 'रसमंजरी', 'विरह मंजरी', 'नामचिंता-मणिमाला', 'अनेकार्थमाला', 'दानलीला', 'मानलीला', 'अनकार्थमंजरी', 'ज्ञानमंजरी','श्यामसगाई' और 'भ्रमरगीत' इन छोटे-छोटे ग्रंथों की रचना की। हितोपदेश और गद्यात्मक 'नासिकेत-पुराण' भी इनके बनाये कहे जाते हैं। अब तक 'रासपंचाध्यायी', 'भ्रमर गीत', 'अनेकार्थमंजरी' और 'नाममाला' ये चार पुस्तकें ही प्रकाशित हुई हैं। 'रासपंचाध्यायी' के तीन संस्करण हो चुके हैं। एक काशी नागरी प्रचारिणी सभा का, दूसरा बाबू बालमुकुन्द गुप्त द्वारा संपादित 'भारतमित्र' का और तीसरा श्री ब्रजमोहनलाल, विशारद द्वारा संपादित।

नन्ददासजी के ग्रन्थ इतने रोचक, सरस और भावपूर्ण हैं, कि उनके जोड़ के ग्रन्थ हिन्दी-साहित्य में बहुत ही कम होंगे। कृत्रिमता का तो कहीं नाम भी नहीं। 'रासपंचाध्यायी' को यदि हम हिन्दी का 'गीतगोविंद' कहें तो अत्युक्ति न होगी। रोला छंद लिखने में नन्ददासजी जितने सफल हुए हैं उतना कोई अन्य कवि नहीं हुआ। छंदबद्ध कोश लिखनेवालों में भी इन्हीं का सर्वप्रथम स्थान है। 'अनेकार्थमाला' में एक-एक शब्द के कई-एक अर्थ दिये हैं। उदाहरण के लिए 'सारंग' शब्द नीचे दिया जाता है:

पिक, चामर, कच, संघ, कुच, कर, बायस हू होय।।
खंजन चंचल, मिरगमद, काम, बिसन, है सोय।।
छिती, तलाब, भुजंग पुनि, को बड़ भान समान।
सारँग श्रीभगवान कों, भजिये कृपानिधान।।
सारँग सुन्दर कों कहत, रात दिवस, बड़ भाग।।
खग, पानी अरु घन कहिय, अंबर अबला, राग।।
रवि, ससि, दीपक, गगन, हरि, केहरि, कुंज, कुरंग।
चातक, दादुर, दीप, हल, ये कहिए सारंग।।

'नाममाला' में और भी अधिक चमत्कार हैं। नामों के साथ-साथ साहित्यिक सामग्री भी इसमें जुटाई गई है। जैसे:

अग नथ, भूभृत, दरीभृत, शृंगी, शिखरी होय।
शैल, शिलोच्चय, गोत्र, हरि, अद्रि, ग्राम पुनि सोय।।
गिरि गोबर्धन बाम कर, धरचौ स्याम अभिराम।
तो उरतें, वा धकधकी, गई न अबलौं वाम।।

इन रचनाओं के अतिरिक्त इनके कुछ फुटकर पद भी मिलते हैं। किन्तु सर्वोत्तम रचना में 'रासपंचाध्यायी' और 'भ्रमरगीत' ये दो ग्रन्थ ही आते हैं। 'मिश्रबन्धु विनोद' में नन्ददासजी को 'पद्माकर-श्रेणी' में रखने की कृपा की गई है। यह निर्णय सुरसिक-साहित्य-मर्मज्ञ पाठकों पर ही छोड़ा जाता कि नन्ददास और पद्माकर में कितना अंतर है।

नन्ददास के समसामयिक ध्रुवदासजी ने इनकी भक्ति-भावना और भाव-रसिकता को बड़े ही सुन्दर शब्दों में अंकित किया है।

नन्ददास जो कछु कह्यौ, रागरंग में पागि।
अच्छर सरल सनेहमय, सुनत होति हिय जागि।।
रसिक-दसा अद्भुत हुती, करत कवित्त सुधार।
बात प्रेम की सुनत हीं, छुटत प्रेमजल-धार।।
रसिक बावरो-सो फिरै, खोजत हित की बात।
आछे रस के वचन सुनि, बेगि बिबस ह्वै जात।।

वास्तव में, नन्ददास जी परमभागवत, महान् भावुक और उच्च-प्रतिभावान् सत्कवि थे। इनकी रचना हृदय-वेधिनी, मर्म-स्पर्शिनी, सरस और सजीव है। नीचे नन्ददास जी की रुचिर रचनाओं में से कुछ सुन्दर पद्य उद्धृत किये जाते हैं:

रासपंचाध्यायी

रोला

वंदन करौं कृपानिधान श्रीसुक समकारी।
सुद्ध ज्योतिमय रूप, सदा सुन्दर अविकारी।।
हरि-लीला-रस-मत्त मुदित नित विचरत जग में।
अद्भुतगति, कहुँ नहीं अटक, ह्वै निकसे मग में।
नीलोत्पल[1] दल-स्याम अंग नवजोबन भ्राजै।
कुटिल अलक मुखकमल, मनों अलि-अवलि विराजै।।
सुन्दर भाल बिसाल दिपति जन निकर निसाकर।
कृष्ण-भक्ति-प्रतिबिंब-तिमिर[2] कों कोटि दिवाकर।।
कृपा-रंग-रस-अयन नयन राजत रतनारे[3]।
कृष्ण-रसामृत-पान-अलस कछु घूमघुमारे[4]।।
स्रवन कृष्ण-रस-भवन गंड-मंडल भल दरसैं।
प्रेमानन्द-मलिंद[5] मंद मुसकनि मधु बरसैं।।

---

१. नील कमल। २. अंधेरा, अज्ञान। ३. लाल। ४. उनींदे, मस्त। ५. भ्रमर।

उन्नत नासा, अधर-बिंब, सुक की छबि छीनी।
तिन बिच अद्‌भुत भाँति लसत कछु इन मसिभीनी[1]॥
कंबु-कंठ की रेख देखि हरि धर्म प्रकासैं।
काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह जिहिं निरखत नासैं॥
उरवर पर अति छबि की भीरा[2] बरनि न जाई।
जेहि भीतर जगमगत[3] निरंतर कुँवर कन्हाई॥
सुन्दर उदर उदार रोमावलि राजति भारी।
हिय सरवर रसभरी चली मनु उमगि पनारी[4]॥
ता रस[5] की कुंडिका[6] नाभि सोभित असि गहरी।
त्रिबली तामें ललित भाँति जनु उपजति लहरी॥
अति सुदेस कटि देस सिंह सोभित सघनन अस।
जोबन-मद आकरसत,[7] बरसत प्रेम-सुधा-रस॥
गूढ़ जानु, आजानुबाहु, मद-गज गति लोलैं[8]।
गंगादिकन पवित्रकरन अवनी में डोलैं॥
सुन्दर पद अरविंद मधुर मकरंद मुग्ध जहँ।
मुनि-मन-मधुकर-निकर[9] सदा सेवत लोभी तहँ॥
जब दिनमणि श्रीकृष्ण दृगन तें दूरि भये दुरि।
पसरि पर्‌यो अँधियार सकल संसार घुमण घुरि॥
तिमिर-ग्रसित सब लोक-ओक-दुख देखि दयाकर।
प्रकट कियो अद्‌भुत प्रभाव भागवत-बिभाकर[10]॥
जे संसार अँधियार अगर में मगन भये वर।
तिन हित अद्‌भुत दीप प्रकट कीनों जु कृपाकर॥

---

१. मसि भीजना। ओठों पर मूछों का कुछ-कुछ दिखाई देना। इसे 'रेख निकलना' भी कहते हैं। यह वर्णन किशोरावस्था का है। २. पुंज। ३. झलकते हैं। ४. छोटी-सी पतली धारा। ५. प्रेमरूपी जल। ६. कुंडी, गड्ढा। ७. खींचता है। ८. हिलती-डुलती। ९. समूह। १०. सूर्य।

'श्रीभागवत' सुनाम परम अभिराम, परम मति।
निगम-सार[1] सुकुमार[2] बिना गुरु-कृपा अगम अति॥
ताही में मनि अति रहस्य यह 'पंचाध्यायी'।
तन में जैसे पंचप्रान, असि सुक मुनि गाई।
परम रसिक इक मित्र[3] मोहिं तिन आग्या दीनीं।
ताहीं तें यह कथा जथामति भाषा कीनीं　॥१॥
ताही छिन उड़राज उदित रसरास-सहायक।
कुमकुम-मंडित-बदन प्रिया जनु नागरि-नायक॥
कोमल किरन अरुन मानों बन व्याप रही त्यों।
मनसिज खेल्यौ फागु घुमड़ घुरि रह्यौ गुलाल ज्यों॥
फटिक[4]-छटा-सी किरन कुंज-रंध्रन[5] जब आई।
मानहुँ वितन[6] बितान सुदेस[7] तनाव तनाई॥
मन्द मन्द चल चारु चंद्रमा अति छबि पाई।
झलकत है जनु रमारमन[8] पिय कौतुक आई॥
तब लीनीं कर कमल जोग-मायासी[9] मुरली।
अघटित-घटना-चतुर, बहुरि अधरन सुर जु-रली[10]॥
जाकी धुनि तें निगम अगम[11] प्रगटित बड़नागर।
नादब्रह्म की जान मोहिनी सब सुख-सागर॥
पुनि मोहन सों मिली कछू कल गान कियौ अस।
बाम बिलोचन बास तियन मनहरन होय जस॥

---

१. वेदों का निचोड़। २. नित्यकिशोर शुकदेव। ३. मित्र का नाम स्पष्ट नहीं किया गया है। कहते हैं, नंददास जी के मित्र से यहाँ गंगाबाईजी से आशय है, जो श्रीगोसाईं विट्ठलनाथजी की शिष्या थी। यह कविता में अपना नाम 'श्रीविट्ठल गिरिधरन' लिखा करती थीं। ४. स्फटिक बिल्लौर पत्थर। ५. छेद। ६. अनंग, कामदेव। ७. सुन्दर। ८. विष्णु ९. परा-प्रकृति, परमेश्वर की आदि शक्ति। १०. मिली हुई। ११. आगम शास्त्र।

मोहन-मुरली नाद स्रवन कीनों सब किनहूँ।
जथा-जथा विधि रूप, तथा विधि परस्यौ तिनहूँ ।।
तरनि[1] किरन ज्यों मनि पषान[2] सबहिन के दरसे।
सुरजकांति मनि बिना नहीं कहुँ पावक परसे ।।
सुनत चलीं ब्रजबधू गीत-धुनि कौ मारग गहि।
भवन भीत द्रुम-कुञ्ज-पुञ्ज कितहूँ अटकी नहिं ।।
नाद-अमृत कौ पंथ रँगीलो सुच्छम भारी ।।
तेहिं मग ब्रजतिय चलैं, आन कोउ नहिं अधिकारी ।।
सुद्धप्रेममय रूप पंचभूतनि[3] तें न्यारी
तिन्हैं कहा कोउ कहै, ज्योति-सी जगत[4] उजारी
जे रुकि गई घर अति अधीर गुनमय सरीरब[illegible]
पुन्य-पाप प्रारब्ध-रच्यौ तन नाहिं पच्यौ रस[illegible]
परम दुसह श्रीकृष्ण-बिरह-दुख व्यापौ जिन मे[illegible]
कोटि बरस लगि नरक भोग-अघ भुगते छिन में [illegible]
धातु-पात्र पाषान[6] परसि कंचन ह्वै सोहै।
नंदसुवन-सों परम प्रेम यह अचरज कौ[7] है?
ते पुन तिहिं मग चलीं रँगीली तजि ग्रह-संगम।
जनु पिंजरनि तें उड़ें, छुड़े नवनेम-बिहंगम ।।२।।

दोहा

कुंज-कुंज ढूंढ़त फिरौं, खोजत दीन दयाल।
प्राणनाथ पाये नहीं, बिकल भईं ब्रज-बाल ।।

---

१. सूर्य। २. सूर्यकांतमणि : कहते हैं कि सूर्य के तेज से यह पत्थर आप-से-आप पिघलने लगता है। ३. पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पाँच तत्त्व हैं। ४. बिजली। ५. बुद्धि-सुख-दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न आदि शरीर के गुण हैं। ६. पारस पत्थर से आशय है। प्रवाद है, कि इसके स्पर्श से लोहा सुवर्ण हो जाता है। ७. क्या।

रोला

बिरहाकुल ह्वै गईं सबै पूंछत बेली बन।
जो जड़ को चैतन्य, न कछु जानत बिरहीजन[1]॥
हे मालति, हे जाति[2] जूथके[3] सुनि हित दे चित।
मान-हरन मन-हरन लाल गिरधरन लखे इत?
हे केतकि, इततें कितहूँ चितये पिय रूसे[4]।
कै नँदनंदन मंद मुसुकि तुम्हरे मन मूसे[5]।
हे मुक्ताफल, बेलि-घरे मुक्ताफल माला।
देखे नैन बिसाल मोहना नँद के लाला[6]।
हे मंदार, उदार बीर करबीर[7] महामति।
देखे कहुँ बलबीर[8] धीर मन हरन धीर गति?
हे चंदन, दुख-दमन सब की जरनि जुड़ावहु[9]।
नँदनंदन जगबंदन चंदन हमहिं बतावहु॥
पूछी री, इन लतनि फूलि रहिं फूलनि जोई[10]।
सुन्दर पिय के परस[11] बिना असि फूल न होई॥
हे सखि, हे मृग-वधू इन्हें किन पूछहु अनुसरि[12]।
डहडहे[13] इनके नैन, अबहिं कहुँ देखे हैं हरि॥
अहो सुभग बन गन्धि, पवनि सँग थिर जु रही चल।
सुख के भवन दुखदमन रमन इततें चितये, बलि[14]?
हे चम्पक, हे कुसुम, तुम्है छबि सब तें न्यारी।
नैकु बताय जु देउ जहाँ हरि कुंज-बिहारी॥

---

१. यह पंक्ति मेघदूत के 'कामार्त्ताहि प्रकृतिकृपणाऽश्चेतना चेतनेषु' का स्मरण दिलातो है। २. जूही। ३. यूथिका, पुष्प-विशेष। ४. रूठे, क्रुद्ध। ५. चुराये, हरे। ६. नंद के लाड़िले पुत्र। ७. वृक्ष-विशेष। ८. बलभद्र के भाई श्रीकृष्ण। ९. जलन को शीतल करते हो। १०. योग्य। ११. आनंद। १२. पीछे-पीछे जाकर। १३. आनन्दित, हरे। १४. बलैया लेती है।

हे कदंब, हे निंब, अंब, क्यों रहे मौन गहि ?
हे बट, उतंग सुरंग बीर कहु तुम इत-उत लहि ?
हे असोक, हरि सोक, लोकमनि[1] पियहि बतावहु।
अहो पनस[2] सुभ सरस मरत तय अमिय पियावहु॥
जमुन निकट के बिटप पूंछि भई निपट उदासी।
क्यों कहिहैं सखि अति कठोर ये तीरथ-बासी॥
हे जमुना, सब जानि-बूझि तुम हठहिं गहति हौ।
जो जल जग-उद्धार ताहिं तुम प्रगट बहति हौ॥
हे अवनी नवनीत-चोर चित-चोर हमारे।
राखे कितहुँ दुराय बतावहु प्रान-पियारे॥
हे तुलसी, कल्यानि सदा गोविंद-पद-प्यारी।
क्यों न कहौ तुम नंदसुवन सों बिथा हमारी॥
जहँ आवत तमकुंज[3] पुंज गहवर[4] तरु-छाई।
अपने मुख चाँदने[5] चलत सुंदर बन भाई॥
इहि बिधि बन घन ढूंढ़ि बूझि उनमत[6] की नाई।
करन लगी मनहरन लाल-लीला मन भाई॥
मोहनलाल रसाल की लीला[7] इनही सोहैं।
केवल तन्मय[8] भई न कछु जानै हम को हैं॥३॥
जो अनेक जोगेस्वर-हिय में ध्यान धरत हैं।
एकहिं बेर रूप इक सब कौ सुख बितरत हैं॥
जोगीजन बन जाय जतन करि कोटि जनम पचि[9]।
अति निर्मल करि राखत हिय में आसन रचि-रचि॥
कछु छिन तहँ नहिं जात नवल-नागर सुंदर हरि।

---

१. त्रिभुवन शिरोमणि। २. कटहर। ३. सघन वृक्षावलि से अँधेरी कुंज। ४. दुर्गम, सघन। ५. चंद्रमा का प्रकाश। ६. उन्मत्त, पागल। ७. प्यारे कृष्ण का चरित्र। ८. तल्लीन, कृष्ण-रूप। ९. थककर।

ब्रज जुवतिन के अंबर[१] पर बैठे अति रुचि करि।।
कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड जदपि एकहि ठकुराई[२]।
ब्रज-देबिन की सभा साँवरे अति छबि पाई।।
ज्यों नवमंडल-मध्य कमल-कर्णिका सुभ्राजै।
त्यों सब सुंदरि-सन्मुख सुन्दरि स्याम बिराजै।।४।।
तब बोले ब्रजराज कुँवर हौं रिनी तुम्हारो।
अपने मनतें दूरि करौ किन[४] दोष हमारो?
कोटि कल्प लगि तुम प्रति, उपकार करौं जौं।
हे मनहरनी तरुणी! उरनी[५] नाहिं तबौं तौं।।
सकल विस्व अपवस[६] करि मो माया सोहति है।
प्रेममयी तुम्हरी माया सो मोहिं मोहति है।।
तुम जु करी सो कोउ न करै सुनि नवल किसोरी।
लोक वेद की सुदृढ़ शृंखला[७] तृन-सम तोरी।।५।।
सकल तियन के मध्य साँवरो पिय सोभित अस।
रत्नावलि[८] मधि नीलमनी[९] अद्भुत झलकै जस।।
नव मरकतमनि स्याम कनक-मनिगन-ब्रजबाला।
वृन्दावन कों रीझि मनों पहिराई माला।।
नूपुर, कंकन, किंकिन[१०] करतल, मंजुल मुरली।
ताल, मृदंग उपंग[११] चंग एकै सुर जु-रली।।
मृदुल-मधुर टंकार, झंकार मिली धुनि।
मधुरजंत्र की तार भँवर-गुंजार रली पुनि।।
तैसिय मृदु पटकनि, चटकनि[१२] करतारनि[१३] की।

---

१. कपड़ा। २. स्वामित्व; राज्य। ३. ऋणी; अनुगृहीत। ४. क्यों, नहीं। ५. उऋण। ६. स्वाधीन। ७. जंजीर। ८. रत्नों की राशि, रत्नों के समान गोपियाँ। ९. नीलमणि। १०. तगड़ी। ११. नस-तरंग, एक प्रकार का बाजा। १२. चटपट-ध्वनि। १३. हाथ की तालियों से।

लटकनि, मटकनि झलकनि कल कुंडल-हारत की ।।
साँवल पिय के संग नृतति यों ब्रज की बाला ।।
जनु घन-मंडल मंजुल खेलति दामिनी-माला ।।
छबिलि तियनि के पाछें आछें[१] बिलुलित[२] बेनी ।
चंचलरूप-लतानि-संग डोलति अलि सेनी[३] ।।
मोहन पिय की मुसुकनि, ढलकनि मोर-मुकुट की ।।
सदा बसौ मन मेरे फरकनि[४] पियरे[५] पट की ।।
बदन-कमल पर अलक छुटी कछु स्रम की झलकनि[६] ।
सदा रहौ मन मेरे मोरमुकुट की ढलकनि ।।
कोउ सखी कर पकरति, निरतति यों छबिली तिय ।
मानों करतल फिरत देखि नट लटू होत पिय ।।
कोउ नायक से भेद-भाव लावण्य-रूप-बस ।
अभिनय कर दिखरावति अरु गावत पिय के जस ।।६।।
पिय के मुकुट की लटकनि, मटकनि, मुरली-रव[७] अस ।
कुहुकि-कुहुकि सुनु नाचत मंजुल मोर भरे-रस[८] ।।
सिरतें सुमन सुदेस जु बरसत अति आनंद-भरि ।
मनु पदगति पर रीझि अलक पूजनि फूलनि करि[९] ।।
स्रमजल सुन्दर बिन्दु रंग भरि अति छबि बरसत ।
प्रेम-भक्ति बिरवा[१०] जिनके, तिनके हिय सरसत ।
वृन्दावन के त्रिबिध पवन[११] बिजना[१२] जु बिलोलैं[१३] ।
जहँ-जहँ स्रमित बिलोकत तहँ तहँ रस भरि डोलैं ।।
बड़े अरुन पट बासन[१४] मंडल मंडित ऐसे ।
प्रेमजाल के गोलक[१५] कछु छबि उपजत जैसे ।।

---

१. अच्छी तरह से । २. हिलती हुई । ३. भ्रमरों की श्रेणी, अर्थात् पंक्ति । ४. फहराना । ५. पीले । ६. पसीने की बूंदें । ७. स्वर । ८. आनंदित । ९. फूलों से । १०. पेड़ । ११. शीतल, मंद और सुगंध वायु । १२. पंखा । १३. झलते हैं । १४. वसन । १५. आँख की पुतली ।

कुसुम-धूर धूमरी[1] कुंज मधुकरनि-पुंज जहँ।
ऐसेहूँ रस-आवेस[2] लटकि कीन्हीं प्रवेस तहँ ।।७।।
भीजि बसन तन लिपटि निपटि छबि अंकित है अस।
नैंननि के नहिं बैन, बैन कें नैन नहीं जस ।।
नित्य रास-रस-मत्त नित्य गोपीजनबल्लभ[3]।
नित्य निगम जो कहत नित्य, नवतन अति दुरलभ ।।
यह अद्‌भुत रस-रास महाछबि कहति न आवै।
सेस सहसमुख गावत तौहूँ अन्त न पावै ।।
सिव मनही मन-ध्यावै, काहू नाहिं जनावै।
सनक सनन्दन नारद-सारद[4] अति मन भावै ।।८।।
यह उज्ज्वल रस-माल कोटि जतनन करि पोई[5]।
सावधान होइ पहिरौ, इहि तोरौ मति कोई ।।
स्रवन-कीरतन-ध्यान-सार सुमिरन को है पुनि।
ग्यानसार, हरि-ध्यानसार, श्रुतिसार[7] गुथी पुनि ।।
अघहरनी, मनहरनी, सुन्दर रस-बिस्तरनी।
'नंददास' के कंठ बसौ नित मंगलकरनी ।।९।।

भँवर गीत

ऊधव कौ उपदेसु सुनौ ब्रज-नागरी।
रूप-सील-लावण्य सबै गुन-आगरी ।।
प्रेम-धुजा रसरूपिनी, उपजावत सुखपुंज।
सुन्दर स्याम-विलासिनी, नव-बृन्दाबन कुंज ।।
सुनो ब्रज-नागरी ।।१।।
कहन स्याम-सँदेश एक मैं तुम पै आयौ।

---

१. अँधेरा। २. वेग। ३. कंत, प्यारे। ४. शारदा, सरस्वती। ५. प्रेमरस की माला 'रास-पंचाध्यायी' से तात्पर्य है। ६. पिरोई; गुंथी। ७. वेदों का निचोड़।

कहत समै संकेत[1] कहूँ अवसर नहिं पायौ।।
सोचत ही मन में रह्यो, कब पाऊँ इक ठाउँ।
कहि सँदेस नँदलाल कौ, बहुरि मधुपुरी जाउँ।।
सुनो ब्रज-नागरी ।।२।।

जो उनके गुन[2] होयँ वेद क्यों नेति[3] बखानै ?
निरगुन सगुन आत्म रचि ऊपर सुख सानैं।।
वेद-पुराननि खोजिकै, पायो कितहुँ[4] न एक।
गुनही के गुन होहिं ते, कहौ अकासहिं टेक।।
सुनो ब्रज-नागरी ।।३।।

जो उनके गुन नाहिं, और गुन भये कहाँ तें।
बीज बिना तरु जमैं मोहिं तुम कहौ कहाँ तें।।
वा गुन[5] की परछाँह री, माया-दरपन बीच।
गुनतें गुन न्यारे भये, अमल बारि मिलि कीच।।
सखा सुन स्याम के ।।४।।

प्रेम जु कोऊ वस्तु रूप देखत लौ[6] लागै।
वस्तु दृष्टि बिन कहौं कहा प्रेमी अनुरागै।।
तरनि चंद्र के रूप कों, गुन गहि पायो जान।
तौ उनको कह जानिये, गुनातीत भगवान।।
सुनो ब्रज-नागरी ।।५।।

तरनि अकास प्रकास तेजमय रह्यौ दुराई[7]।
दिव्यदृष्टि[8] बिनु कहौ, कौन पै देख्यौ जाई ?
जिनकी वे आँखें नहीं, देखैं कब वह रूप।
तिन्हैं साँच क्यों उपजै, परे कर्म के कूप।।
सखा सुन स्याम के ।।६।।

---

१. एकांत-स्थल। २. सत्व, रज और तम। ३. 'न इति' अर्थात् ऐसा नहीं। ४. कहीं भी। ५. गोपियों के गुण से तात्पर्य भगवदीय दिव्य गुणों से है, मायात्मक त्रिगुण से नहीं। ६. लव; लगन। ७. छिप कर। ८. दिव्य नेत्र।

जो गुन आवै दृष्टि माँझ नहिं ईश्वर सारे।
इन सबहिनते बासुदेव[१] अच्युत[२] हैं न्यारे ॥
इन्द्री-दृष्टि-विकार तें, रहत अधोक्षज[३] जोति।
सुद्ध सरूपी जान जिय, तृप्ति[४] जु तातें होति ॥
सुनो ब्रज-नागरी ॥७॥

नास्तिक जे हैं लोग, कहा जानैं हित-रूपै[५]।
प्रगट भानु को छाँड़ि गहैं परछाहीं धूपै ॥
हम कों बिन वा रूप के, और न कछू सुहाय।
ज्यों करतल आभास के, कोटिक ब्रह्म दिखाय ॥
सखा सुन स्याम के ॥८॥

ताही छिन इक भँवर कहूँते उड़ि तहँ आयो।
ब्रजवनितन के पुंज माहिं गुंजत छबि छायो ॥
चढ्यो चहत पग-पगनिपर अरुन कमलदल जानि।
मनुमधुकर ऊधो भयो, प्रथमहि प्रगट्यौ आनि ॥
मधुप को भेष धरि ॥९॥

ताहि भँवर सों कहैं सबै प्रतिउत्तर बातैं।
तर्क-बितर्कन-जुक्त प्रेमरस-रूपी घातैं ॥
जनि परसौ मम पाँव रे, तुम मानत हम चोर।
तुमहीं सों कपटी हुते मोहन नंद-किशोर ॥
यहाँ ते दूरि हो ॥११॥

कोउ कहै, री मधुप भेष उनको ही धार्यो।
स्याम-पीत[६] गुंजार बैन किंकिनि झनकार्यो ॥

---

१. श्रीकृष्ण भगवान्। २. विष्णु का नाम। ३. विष्णु का एक नाम। ४. आतम-तुष्टि। ५. प्रेम स्वरूप को। ६. कृष्ण का वर्ण श्याम और पीतांबर का पीला है; भ्रमर भी श्याम और पीत होता है।

वापुर गोरस[1] चोरिकैं, फिरि आयो यहिं देस।
इनकों जनि मानहु कोऊ, कपटी इनको भेस।।
चोरि जनि जाय कछु।।११।।

कोउ कहै, रे मधुप कहा तू रस कों जानैं।
बहुत कुसुम पै बैठि सब आपन सम मानैं।।
आपन सम हमकों कियो, चाहत हैं मतिमंद।
दुबिध ग्यान उपजायकैं, दुखित प्रेम आनंद।।
कपट के छंद सों।।१२।।

कोउ कहै, रे मधुप कौन कह तोहि मधुकारी।
लिए फिरत मुख जोग गाँठि काटत बेकारी[2]।।
रुधिर पान किये बहुत कै, अरुन अधर रँगरात[3]।
अब ब्रज में आये कहा, करन कौन की घात।।
जात किन पातकी।।१३।।

कोउ कहै, रे मधुप प्रेम षटपद पसु देख्यौ।
अबलौं यहि ब्रजदेस माहिं कोउ नाहिं बिसेख्यौ।।
द्वै सिंग[4] आनन उपर रे, कारो-पीरो गात।
खल अमृत सम मानहीं, अमृत देखि डरात।।
बादि[5] यह रसिकता।।१४।।

कोउ कहै, रे मधुप ग्यान उलटो लै आयौ।
मुक्ति परे जे फेरि तिन्हें पुनि करम बतायौ।।
वेद उपनिषद् सार जे, मोहन गुन गहि लेत।
तिनके आतम सुद्धि करि, फिरि-फिरि संथा[6] देत।।
जोग चटसार[7] मैं।।१५।।

कोउ कहै, रे मधुप तुम्हें लज्जा नहिं आवै।
सखा तुम्हारो स्याम कूबरी[8] नाथ कहावै।।

---

१. मक्खन। २. व्यर्थ। ३. लाल रंग। ४. सींग। ५. व्यर्थ। ६. पाठ। ७. पाठशाला। ८. कंस की 'एक दासी' जिसका श्रीकृष्ण पर बड़ा प्रेम था।

यह नीची पदवी हुती, गोपीनाथ कहाय ॥
अब जदुकुल पावन भयौ, दासी जूठन खाय ॥
मरत कह बोल को ॥१६॥

कोउ कहै, हो मधुप स्याम जोगी तुम चेला।
कुबजा-तीरथ जाय कियो इन्द्रिन कौ मेला ॥*
मधुबन सुधि बिसराय कैं, आये गोकुल माहिं।
इहाँ सबै प्रेमी बसैं तुम्हरौ गाहक नाहिं ॥
पधारौ रावरे ॥१७॥

यहि विधि सुमिरि गोविंद कहति ऊधव प्रति गोपी।
भृंग[1] संग्या करि कहति सकल कुल लज्जा लोपी ॥
ता पीछे इकबार ही, रोईं सकल ब्रजनारि।
हा करुनामय नाथ हो, केसव कृष्ण मुरारि ॥
फाटि हियरो चल्यौ ॥१८॥

प्रेम-प्रशंसा करत सुद्ध जो भक्ति प्रकासी।
दुबिधा ग्यान मिलानि मंदता[2] सिगरीं नासी ॥
कहत मोह बिस्मय भयो, हरि के ये निज पात्र।
हौं तौ, कृतकृत[3] ह्वै गयो, इनके दरसनमात्र ॥
मेटि मल ग्यान को ॥१९॥

जो ऐसे मरजाद मेटि मोहन कौं ध्यावैं।
काहै न परमानन्द प्रेम-पद पी को पावैं?
ग्यान जोग सब कर्म तें, प्रेम परे हैं साँच।
हौं यहि पटतर देत हौं, हीरा आगे काँच ॥
विषमता बुद्धि की ॥२०॥

---

* कुब्जा दासी के साथ विलास किया।

१. भ्रमर का नाम धारण करके। २. मूढ़ता। ३. कृतकृत्य, सफल जीवन।

धन्य धन्य जे लोग भजत हरि कों जो ऐसें।
अरु जो पारस प्रेम बिना पावत कोउ कैसें॥
मेरे या लघु ग्यान को, उर मद कह्यो उपाध[1]।
अब जान्यो ब्रज प्रेम कौ, लहत न आधौ आध॥
वृथा श्रम करि थके॥२१॥

पुनि कहि परसत पायँ प्रथम समें इनहिं निबार्यो[2]।
भृंग संग्या करि कहत निंद सबहिन में डार्यौ।
अब रहिहौं ब्रज-भूमि की ह्वै पग मारग धूरि।
बिचरत पग मोपै परै, सब सुख जीवन-मूरि॥
मुनिन हूँ दुर्लभैं॥२२॥

कैसें होंहुँ द्रुमलता बेलि बल्ली बन माहीं।
आवत जात सुभाय परै मोपै परछाहीं॥
सोऊ मेरे बस नहीं, जो कछु करौ, उपाय।
मोहन होंहिं प्रसन्न जो, यह बर माँगो जाय॥
कृपाकरि देहु जू॥२३॥

करुनामई रसिकता है तुम्हरी सब झूठी।
जबही ज्यों नहिं लखौ तबहि लौं बांधी मूठी॥*
मैं जान्यों ब्रज जायकैं, तुम्हरो निर्दय रूप।
जो तुमकों अवलंबहीं, बाकों मैलो कूप॥
कौन यह धर्म है॥२४॥

पुनि-पुनि कहै जु जाय चलौ वृन्दाबन रहिये।
प्रेम-पुंज को प्रेम जाय गोपिन सँग लहिये॥

---

१. उपाधियुक्त। २. मना किया।

*जब तक आपके प्रेम का साक्षात्कार नहीं हुआ, तब तक केवल भ्रम ही भ्रम है, हाथ में कुछ आने का नहीं।

और काम सब छाँड़िकै, उन लोगन सुख देहु।
नातरु टूट्यौ जात है, अब ही नेह-सनेहु।।
करौगे तो कहा।।२५।।

सुनत सखा के बैन नैन भरि आये दोऊ।
बिवस प्रेम आवेस रही नाहीं सुधि कोऊ।।
रोम-रोम-प्रति गोपिका, ह्वै रहे साँवल गात[1]।
कल्पतरोरुह साँवरो, ब्रजवनिता भई पात।।
जलहि अँग अँग तें।।२६।।

---

१. श्रीकृष्ण के साँवरे शरीर के रोम-रोम में, प्रेमावेश के कारण, गोपियाँ हो गईं, मानों कल्पवृक्ष में स्थान-स्थान पर पत्ते लग रहे हैं।

हित हरिवंश

छप्पय

श्रीराधा-चरन-प्रधान हृदय अति सुदृढ़ उदासी।
कुंज-केलि-दंपती तहाँ की करत खवासी।।
सरबसु महाप्रसाद प्रसिध ताके अधिकारी।
विधि निषेध नहिं-दास अनन्य उत्कट व्रतधारी।।
श्रीव्यास-सुवन-पथ अनुसरै, सोई भलैं पहिचानिहैं।
श्रीहरिवंश-गुसाईं भजन की रीति सकृत कोइ जानि हैं।।

—नाभाजी

अनन्य राधावल्लभीय सिद्धांत के प्रवर्तक गोसाईं हितहरिवंश जी महाराज का जन्म बाद ग्राम, जिला मथुरा में हुआ था। इनका जन्म-संवत् किसी के मत से १५५९ और किसी के मत से १५३० है। इनके पिता का नाम केशवदास मिश्र, उपनाम व्यासजी तथा माता का नाम तारावती था। व्यासजी देवबन्द, जिला सहारनपुर में रहते थे। 'मिश्रबन्धुविनोद' में व्यासजी का उपनाम हरिराम शुक्ल लिखा है। हरिराम शुक्ल उपनाम कैसे हुआ—यह बड़े सन्देह की बात है। यह गौड़ ब्राह्मण थे। हरिराम नाम की, तथा मिश्र के स्थान पर शुक्ल-वंश की कल्पना (मिश्रबन्धुविनोद) में कैसे आई, समझ में नहीं आता। हरिराम नाम तो ओरछाधीश महाराज मधुकरशाह के राजगुरु एवं श्रीहितहरिवंश के शिष्य प्रसिद्ध भक्त-कवि व्यासजी का था। कदाचित् विनोदकारों को हरिवंशजी के पिता के विषय में इसी कारण भ्रम हो गया है। यही नहीं, हितहरिवंशजी के जन्म-स्थान के सम्बन्ध में भारी भूल हुई है। बाद ग्राम को, जहाँ प्रति-वर्ष गोसाईं जी की जयंती मनाई जाती है, जन्म स्थान न मानकर देवबन्द (देवबन)को न जाने किस आधार पर जन्म-भूमि मान लिया गया है। गोसाईं जी के पिता

देवबन्द में रहते अवश्य थे, किन्तु वहाँ इनका जन्म नहीं हुआ था। बाद मथुरा से ४ मील दक्षिण है। गोसाईं जी के अनन्य भक्त 'सेवकजी'[1] ने भी लिखा है :—

धर्म-रहित जानी सब दूनी। 'बाद' प्रगटे जग-धनी॥

श्री राधावल्लभीय पण्डित गोपालप्रसाद जी शर्मा ने 'श्रीहित-चरित्र, में गोसाईं जी का जन्म-संवत् १५४० माना है। 'हित-चरित' में आपकी जीवन-यात्रा लगभग ८० वर्ष लिखी है। इस हिसाब से आपके गोलोकवास का संवत् अनुमानतः १६११ होता है : ओरछाधीश महाराज मधुकर-शाह के राज-गुरु श्रीरामहरि व्यासजी लगभग १६२२ में गोसाईंजी के शरणापन्न हुए थे। सम्राट् अकबर को इस समय गद्दी पर बैठे ११ वर्ष हुए थे। इसके कई वर्ष बाद महाराज मधुकरशाह के पुत्र वीरसिंहदेव ने अकबर के विश्वासपात्र अबुलफजल का वध किया। इस घटना के बाद व्यासजी ओरछा से वृन्दावन चले गये। फिर स्वयं महाराज मधुकरशाह के मनाने पर भी आप ओरछा नहीं गये। इनका रचना-काल ११११८ से १६५५ तक माना जाता है। व्यासजी ने श्रीहितजी एवं अन्य महात्माओं के विरह में जो पद[2] रचे वह १६४० के बाद के हैं। उस समय इनका चित्त अत्यन्त विरक्त हो गया था। शायद ही फिर इन्होंने कोई उत्सव-उल्लास सम्बन्धी रचना की हो। इससे तो श्रीहित जी का लीला संवरण सं० १६५० के लगभग आना चाहिए और जन्म-संवत् भी इस हिसाब से १६३० का नहीं बैठता। कहते हैं कि श्रीहरिवंश जी ने स्वप्न में श्रीराधिकाजी से मंत्र ग्रहण कर उनका शिष्यत्व स्वीकार किया था।

---

१. 'विनोद' के ३३२ पृष्ठ पर सेवक जी को श्रीहित हरिवंशजी का पुत्र लिखा है। सेवकजी हितजी के पुत्र नहीं, किन्तु उनके द्वारा दीक्षित पट्टशिष्य थे।

२. "हुतो रस रसकिन को सो आधार" और "विहारहिं स्वामी बिनु को गावै।" इत्यादि।

श्रीहरिवंशजी के एक कन्या और चार पुत्र हुए। पुत्रों के नाम बन-चंद्र, कृष्णचंद्र, गोपीनाथ और मोहनलाल थे। सं० १५८२ कार्तिक शुक्ल त्रयोदशी को गोसाईंजी ने श्रीराधावल्लभजी का श्रीविग्रह वृन्दाबन में स्थापित किया। यह महाराज गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी प्रायः विरक्त-से रहते थे। आपके भजन-साधन सम्बन्धी स्थान सेवाकुंज, मानसरोवर और रास-मंडल माने जाते हैं। आपने संस्कृत और ब्रजभाषा दोनों में ही बड़ी अपूर्व और सरल रचनाएँ कीं। १७० श्लोकों वाला 'राधा-सुधा-निधि' काव्य आपका ही रचा हुआ है, यद्यपि किसी-किसी के मत से वह गौड़ीय श्रीप्रबोधानंद सरस्वती कृत भी माना जाता है। भाषा में 'हित-चौरासी' अनूठा ग्रन्थ है। पढ़ते समय कहीं-कहीं तो कवि कोकिल जयदेव का स्मरण हो आता है। कुछ फुटकर सिद्धान्ती पद भी इनके मिलते हैं। 'मिश्रबन्धुविनोद' में आपने सेनापति की श्रेणी में स्थान पाया है। पर हमारी तुच्छ सम्मति में हित हरिवंशजी महाकवि देव से किसी भी अंश में कम नहीं। गोसाईंजी ने ब्रजसाहित्य का भारी उपकार किया है। इनके शिष्य-प्रशिष्य भी बड़े-बड़े कवि हो गये हैं। देव और विहारी इसी कुल के अनुयायी माने जाते हैं। महाराज नरवाहन, ध्रुवदास और हित वृन्दाबनदास ब्रज-साहित्य-सागर के अमूल्य रत्न हैं। संतोष का विषय है कि 'विनोद' के दूसरे संस्करण में हितहरिवंश जो के सम्बन्ध में कुछ अधिक प्रामाणिक बातें लिखी गई हैं।

भक्ति-पक्ष में हरिवंशजी श्रीकृष्ण के वंशी के अवतार माने जाते हैं। 'हित' इनका उपनाम था। आप श्रीराधाकृष्ण के दिव्यप्रेम की साक्षात् मूर्ति थे। परात्पर भगवत्प्रेम की प्राप्ति कर लेने पर आपने विधि-निषेध के झगड़े, कामिनी-कांचन का मोह और हरि-विमुख धर्मों को तृणवत् तोड़ दिया था। तभी तो आपके सम्बन्ध में नाभाजी ने अपनी 'भक्तमाल' में लिखा है कि :—'श्रीहरिवंस गुसाईं भजन की रीति सकृत कोई जानि है।'

श्री हितजी ने, आध्यात्मिक पक्ष के अर्थानुसार, श्रीराधाकृष्ण का विशुद्ध शृंगार वर्णन किया है। इनके वर्णित 'रास-बिहार' को प्रकृति-पुरुष

का दिव्य रहस्य कह सकते हैं। 'श्रीगोसाईंजी के सिद्धांत' तथा 'हित-चतुरासी' में से कुछ पद नीचे उद्धृत किये जाते हैं :—

सिद्धांती पद

गौरी

(जैश्री) 'हित हरिवंश' प्रपंच वंच[1] सब काल ब्याल कौ खायो।
यह जिय जानि स्याम-स्यामा-पदकमल संग सिर नायो ॥१॥

कुण्डलियाँ

चकई प्रान जु घट रहै, पिय विछुरत निकज्ज।
तर-अंतर अरु काल निसि, तरफ तेज घन गज्ज ॥
तरफ तेज घन गज्ज[2], लज्ज[3] तुव बदन न आवै।
जल-विहीन कर नैन भोर किहि भाय दिखावै ॥
'हित-हरिवंश', विचार कौन अस बाद जु बकई।
सारस यह संदेह प्रान-घट रहे जु चकई ॥२॥*

छप्पय

तैं भाजन[4] कृत जटिल बिमल चंदन कृत इंधन।
अमृत[5] पूरि तिहिं मध्य करत तरषप बल रिंधन ॥
अद्भुत घर पर करत कष्ट कंचन हल बाहत[6]।
बारि करत पावारि मंद बोवन विष चाहत ॥

---

१ बचकर। २ गरज। ३ लज्जा। ४ पात्र, शरीर। ५ आत्मा। ६ चलता है।

*कहते हैं कि ओरछा-वासी श्रीव्यासजी इसी पद को सुनकर गोसाईं हरिवंशजी के शिष्य हो गए थे। इस पद में अनन्यता, मन की एकाग्रता और निरभिमानिता का बड़ा ही सुन्दर उपदेश भरा हुआ है।

*इस पद में अध्यात्मदर्शन के अनुसार 'हित सिद्धांत' का प्रतिपादन किया गया है। इसकी विस्तृत टीका प्रियादासजी ने लिखी है।

हित हरिवंश' विचार कै यह मनुज-देह गुरु चरन गहि।
सकहि तौ सब परपंच[1] तजि श्रीकृष्ण-कृष्ण गोबिंद कहि ॥३॥

पद

तातें भैया मेरी सौं,[2] कृष्णगुन संचु[3]।
कुत्सित बाद बिकारहिं परधन सुनु सिख परतिय बंचु[4]॥
मनि-गुन-पुंज जु ब्रजपति छाँड़त 'हित हरिबंस' सुकर गहि कंचु[5]।
पायो जानि जगत में सबजन कपटी कुटिल कलिजुगी टंचु[6]।
इहि परलोक सकल सुख पावत मेरी सौं, कृष्ण गुन संचु ॥४॥ *

अरिल्ल

मानुष कौ तन पाइ भजो ब्रजनाथ कों।
दर्बी[7] लैकैं मूढ़ जरावत हाथ कों॥
'हित हरिवंश' प्रपंच विषयरस मोह के।
बिनु कञ्चन क्यों चलै पचीसा[8] लोह के ॥५॥*

बिलावल

मोहनलाल के रँग राँची।
मेरे ख्याल[9] परौ जिन कोऊ, बात दसौं दिसि माची॥
कन्त[10] अनंत करौ किन कोऊ, नाहिं धारना साँची।
यह जिय जाहु भले सिर ऊपर, हौं तु प्रगट ह्वै नाची॥
जाग्रत सबन रहत ऊपर मनि ज्यों कञ्चन सँग पाँची।[11]
'हितहरिवंश' डरौं काके डर, हौं नाहिन मति काँची।[12] ॥६॥

---

१ सांसारिक झंझट। २ शपथ। ३ संचय कर। ४ अलग रह ५ काँच, यहाँ विषय सुख से तात्पर्य है। ६ टुच्चा, नीच, दुष्ट। ७ कलछी; यह शब्द प्रायः 'साधुमंडली' में प्रयुक्त होता है। ८ पांसा। ९ बीच में, विषय में। १० पति। ११ पच्ची। १२ कच्ची बुद्धि।

*इन दोनों पदों द्वारा, कहते हैं, महाराज नरवाहनजी को उपदेश दिया गया था। पीछे यह नरवाहनजी श्रीहरिवंशजी के पट्ट शिष्यों में गिने जाने लगे।

भैरवो

रहौ कोऊ काहु मनहि दियें।
मेरे प्राणनाथ श्रीस्यामा, सपथ करौं तिन छियें।।
जे अवतार कदंब[१]-भजत हैं, धरि दृढ़व्रत जु हियें।
तेऊ उमँगि तजत मरजादा, बन-बिहार-[२]रस पियें।।
खोये रतन फिरत जे घर-घर, कौन काज इमि जियें।
'हित हरिवंस' अनतु[३] सचु[४] नाहीं, बिन या रसहिं लियें।।७।।

गौरी

आरति कीजै स्यामसुन्दर की। नँदनन्दन श्रीराधावर की।।
भक्ति को दीप, प्रेम की बाती। साधु संगति कर अनुदिन[५] राती।
आरति ब्रज-जुबतिन-मन भावै। स्याम लीला 'हित हरिबंस' गावै।।८।।

दोहा

तनहिं राखु सत्संग में, मनहि प्रेमरस भेव।
सुख चाहत 'हरिवंसहित' कृष्ण-कल्पतरु सेव।।९।।
निकसि कुंज ठाढ़े भये, भुजा परस्पर अंस[६]।
राधाबल्लभ-मुख-कमल, निरखत 'हित हरिवंस'।।१०।।
सबसौं हित निहकाम[७] मन, वृन्दावन विस्राम।
राधावल्लभलाल कौ हृदय ध्यान, मुख नाम।।११।।
रसना कटौ जु अन रटौं[८], निरखि अन फुटौ नैन।
स्रवन फुटौ जो अन[९] सुनौं, बिनु राधा-जसु वैन।।१२।।

---

१ समूह। २ वनविहार, जल विहार। ३ अन्यत्र। ४ सुख। ५ नित्य। ६ गलबाहीं दिए हुए। ७ निष्काम। बिना किसी इच्छा के। ८ दूसरे का नाम लूं। ९ अन्य, दूसरा।

श्रीहित चौरासी

सारंग

आजु बन नीकें रास बनायौ।
पुलिन[1] पवित्र सुभग जमुना-तट, मोहन बेनु बजायौ॥
कल कंकन किंकिनि नूपुर-धुनि, सुनि खग-मृग सचु[2] पायौ।
जुवतिन-मंडल मध्य स्यामघन, सारंग-राग जमायौ[3]॥
ताल, मृदंग, उपंग,[4] मुरज डफ[5] मिलि रस-सिंधु बढ़ायौ।
बिबिध बिसद वृषभानु-नंदिनी अंग-सुढंग दिखायौ॥
अभिनय[6] निपुन लटकि लटि लोचन, भृकुटि अनंद नचायौ।
ततथेई ताथेई[7] धरति नवल गति, पति ब्रजराज रिझायौ॥
बरसत कुसुम मुदित नभ-नायक, इन्द्र निसान[8] बजायौ।
(जैश्री) 'हित हरिबंस', रसिक राधापति, जस बितान जन छायौ॥१३॥

जोई-जोई प्यारो करै सोई मोहि भावै,।
भावै मोहिं, जोई, सोई-सोई करै प्यारे॥
मोकों तो भावती[9] ठौर प्यारे के नैन में,
प्यारे भये चाहैं मेरे नैनन के तारे॥
मेरे तन-मन प्रानहूँ तें प्रीतम प्रिय आपने,
कोटिक प्रान प्रीतम मोसों हारे।
(जैश्री') 'हितहरिबंस'-हंस-हंसिनी'[10] स्यामल गौर,
कहौ, कौन करे जल-तरंगिनि न्यारे॥१४॥*

---

१ किनारा। २ आनंद। ३ गुंजायमान कर दिया। ४ एक बाजा। ५ खाल से मढ़ा हुआ एक प्रकार का बाजा। ६ नृत्य-कला। ७ नृत्य की तार-गति से शब्द-विशेष। ८ दुंदुभी। ९ प्यारी, अच्छी लगती है। १० श्रीकृष्ण और राधा।

*इस पद में श्रीराधाकृष्ण की एकरूपता, भक्त की तल्लीनता एवं दिव्य कुञ्जकेलि का विशद वर्णन किया गया है।

बिलावल

सुनि मेरो बचन छबीली राधा। तैं पायौ रससिंधु[1] अगाधा।
जाहिं बिरंचि उमापति नाये[2]। तापै तैं बन-फूल बिनाये।
तेरो रूप कहत नहिं आवै। (जैश्री) 'हितहरिवंस' कछुक जसु गावै ।।१५।।

सारंग

सरद बिमल, नभ चंद बिराजै। मधुर मधुर मुरली कल[3] बाजै।
अति राजत घनश्याम-तमाला। कंचन-बेलि बनी ब्रज-बाला।।
भूषन बहुत, बिविध रँग सारी[4]। अंग सुगंध दिखावति नारी।।
बरसत कुसुम मुदित सुर-जोषा[5]। सुनियतु दिवि दुंदुभि-कल-घोषा[6]।
(जैश्री) 'हितहरिवंस' मगन मन स्यामा राधा। रमन सकल सुखधामा।।१६।।

सारंग

आजु नीकी बनी राधिका नागरी।
ब्रज जुवति जूथ में रूप अरु चतुराई,
सील-सिंगार-गुन-सबनि तें आगरी[7]।।
कमल दच्छिन भुजा बाम भुजा अंसु सखि,
गावती सरस मिलि मधुर सुर[8] राग री।।
सकल विद्या बिहित[9] रहसि 'हरिवंस' हित,
मिलत नव कुञ्ज बर स्याम बड़ भाग री।।१७।।

वसंत

मधुरितु[10] वृन्दाबन, आनंद न थोर।
राजति नागरी नव कुसल किसोर।।
जूथिका[11] जुगलरूप मंजरी रसाल।
बिथकित अलि मधु माधवी गुलाल।।
चंपक बकुल कुल बिबिध सरोज।

---

१ सच्चिदानंद-स्वरूप श्रीकृष्ण। २ बंदना की। ३ सुन्दर। ४ साड़ी। ५ स्त्री। ६ शब्द। ७ बढ़कर; बड़ी। ८ स्वर। ९ सहित। १० वसंत ऋतु। ११ यूथिका, चमेली।

केतकी मेदिनी मद मुदित मनोज ॥
रोचक रुचिर बहै त्रिविध समीर[1]।
मुकुलित[2] नूत[3] नदित[4] पिक कीर ॥
पावन पुलिन घन मंजुल निकुंज।
किसलय सैन रचित सुख पुंज ॥
मंजीर मुरज डफ[5] मुरली मृदंग।
बाजत उपंग बीना वर मुख-चंग[6] ॥
मृगमद[7] मलयज कुंकुम अबीर।
बदन अगर-सत सुरभित चीर ॥
गावत सुन्दर हरि सरस धमारि[8] ॥
पुलकित खग-मृग बहत न बारि[9] ॥
(जैश्री) 'हितहरिवंस' हंस-हंसिनी-समाज।
ऐसेई करहु मिलि जुग-जुग राज ॥१८॥

देवगंधर

ब्रज-नवतरुनि-कदंब[10] मुकुट-मनि स्यामा आजु बनी।
नख-सिख लौं अँग-अँग माधुरी मोहे स्याम धनी ॥
यौं राजत कबरी[11] गूंथित कच कनककञ्ज[12] बदनी ॥
चिकुर[13] चंद्रकनि बीच अरध बिधु मानौं ग्रसत फनी[14] ॥
सौभग रस सिर स्रवत पनारी पिय सीमंत ठनी ॥
भृकुटि काम कोदंड, नैन सर, कज्जल रेख अनी[15] ॥
भाल तिलक, ताटंक गंड[16] पर नासा जलज मनी।

---

१ शीतल, मंद और सुगंधित वायु। २ बौरे हुए। ३ आम। ४ बोलते हैं। ५ चमड़े से मढ़ा हुआ एक प्रकार का बाजा, जो होली में बजाया जाता है। ६ मुंहचंग, एक बाजा, जो मुंह से बजाया जाता है। ७ कस्तूरी। ८ होली में गाने का एक राग। ९ आनंद के मारे यमुना का बहना बन्द हो गया। १० समूह। ११ बेनी। १२ सोने के ऐसा कमल। १३ बाल। १४ सांप। १५ नोंक। १६ गाल का ऊपरी भाग।

दसन कुन्द सरसाधर-पल्लव पीतम-मन-समनी ।।
(जैश्री) 'हितहरिवंस' प्रसंसित स्यामा कीरति विसद घनी।
गावन श्रवननि सुनत सुखाकर विस्व-दुरित[1]-दवनी[2] ।।१९।।

बिहाग

प्रीति न काहु कि कानि[3] विचारै।
मारग अपमारग[4] बियकित, मन, को अनुसरत[5] निवारै ।।
ज्यौं पावस सलिता[6] जर उमगति, सनमुख सिन्धु सिधारै।
ज्यौं नादहि मन दिये कुरंगनि, प्रकट पारधी[7] मारै ।।
(जैश्री) 'हितहरिबंस' लग सारँग[8] ज्यौं सलभ[9] सरीरहिं जारै।
नाइक निपुन नवलमोहन बिनु कौन अपनपौ हारै ।।२०।।

केदारा

देखो माई, सुंदरता की सीवाँ[10]।
ब्रज-नव-तरुनि-कदंव[11] नागरी निरखि करति अध ग्रीवाँ[12] ।।
जो कोउ कोटि कलप लगि जीवै रसना कोटिक पावै।
तऊँ रुचिर बदनारबिंद की सोभा कहति न आवै ।।
देवलोक भुवलोक रसातल सुनि कविकुल मन डरियै।
सहज माधुरी अंग-अंग की, कहि कासौं पटतरियै[13] ।।
(जैश्री) 'हितहरिवंस' प्रताप रूप गन वय बल स्याम उजागर।
जाको भ्रू-विलास वस पसुरिव[14] दिन बिथकित रससागर[15] ।।२१।।

सारंग

प्रथम जथामति प्रणऊँ श्रीवृन्दावन अति रम्य।
श्री राधिका-कृपा बिनु सब के मननि अगम्य ।।

---

१ पाप, रोग। २ नाश करनेवाली। ३ मर्यादा। ४ कुमार्ग। ५ चलते हुए। ६ सरिता नदी। ७ बहेलिया। ८ दीपक। ९ पतिंगा। १० सीमा, हद। ११ समूह। १२ नीचे को गर्दन करती है, लज्जित हो जाती है। १३ उपमा देनी चाहिए। १४ पशु अर्थात् पर-वश के समान। १५ श्रीकृष्ण।

बर जमुना-जल सींचत दिन हीं सरद बसंत।
बिविध भाँति सुमननि के सौरभ अलि कुलमंत॥
अरुन चूत[1]-पल्लव पर कूजत कोकिल कीर।
निर्तन करत सखी-कुल अति आनंद-अधीर॥
बहत पवन रुचिदायक सीतल मंद सुगंध।
अरुन नील सित मुकुलित जहँ-जहँ पुष्पन-बंध॥
रसिक रास जहँ खेलत स्यामा-स्याम किसोर।
उभै बाहु परि-रंजित उठे उनीदे[2] भोर॥
ताल रबाब[3] मुरज बाजत। मधुर मृदंग।
सरस उकति गति सूचत बर बाँसुरी मुखचंग॥
दोउ मिलि चाचरि[4] गावत गौरी राग अलापि।
मानस मृग बल बेधत भृकुटि धनुष दृग चापि॥
दोउ करतारिनु[5], पटकति, लटकति इतउत जाति।
'हो हो' होरी बोलति अति आनँद किलकाति॥
रसिकलाल पर मेलति[6] कामिनि चंदन-धूरि[7]।
पिय पिचकारिनु छिरकतु तकि तकि-कुमकुम पूरि॥
कबहुँ कबहुँ चंदन-तरु-निर्मित तरल हिंडोल।
चढ़ि दोऊजन झूलत, फूलत[8] करत कलोल॥
हित चितवत निज चेरिनु उर आनँद न समाति।
निरखि निपट नैननि सुख तृन तोरति बलि जाति॥२२॥

सारंग

मोहन मदन त्रिभंगी। मोहन मुनि मन रंगी॥
मोहन मन सघन प्रगट परमानंद गुन गंभीर गुपाला।

---

१ आम। २ निद्रित। ३ वाद्य विशेष। ४ चर्चरी। ५ करताल। ६ डालती है। ७ गुलाल। ८ प्रसन्न होती है।

सीस किरीट, स्रवन मनि-कुंडल उर मंडित बनमाला[१]।
पीतांबर तनु धातु-विचित्रित[२] कल किंकिन कटि चंगी।
नखमनि—तरनि चरन-सरसीरुह मोहन मदन त्रिभंगी।।
मोहन बेनु बजावै। इहि रव नारि बुलावै।।
आई ब्रजनारि सुनत बंसी-रव[३] गृह-पति बंधु बिसारे।
दरसन मदन गुपाल मनोहर मनसिज-ताप निवारे।।
हरषित वदन बंक[४] अवलोकनि सरस मधुर धुनि गावै।
मधुमय स्याम समान अधर धरें मोहन बेनु बजावै।।
रास रच्यौ बन-माहीं। विमल कल्पतरु-छाहीं।।
बिमल कल्पतरु-तीर सुपेसल[५] सरद रैन बर चंदा।
सीतल मंद सुगंध पवन बहै, तहँ केलत नँद-नंदा।।
अद्भुत ताल मृदंग मनोहर, किंकिन सबद कराहीं।
जमुना-पुलिन रसिक-रस-सागर रास रच्यौ बन माहीं।।२३।।

---

१ कुन्द, कमल, मंदार और तुलसी की पैरों तक लटकनेवाली लंबी माला। २ अनुरंजित। ३ ध्वनि, शब्द। ४ तिरछी। ५ कोमल, सुन्दर।

गदाधर भट्ट

छप्पय

सज्जन सुहृद सुशील बचन आरज प्रतिपालै।
निरमत्सर निष्काम, कृपा-करुना कौ आलै।।
अनन्य भजन दृढ़ करन धर्‌यो बपु भक्तन काजै।
परम धरम कौ सेतु बिदित वृन्दाबन गाजै।।
भागवत-सुधा बरषै बदन, काहू कों, नाहिंन सुखद।
गुण-निकर गदाधर भट्ट अति, सबहिंन कों लागै सुखद।।

—नाभाजी

भक्तवर गदाधर भट्ट दक्षिण देश के किसी ग्राम के निवासी थे। इनके जन्म-संवत् का कोई निश्चय पता नहीं चलता। पर इतना निर्विवाद है कि यह महाप्रभु श्री चैतन्यदेव के समसामयिक थे। महाप्रभु को आप श्रीमद्-भागवत की कथा सुनाया करते थे। 'मिश्रबन्धु विनोद' में इनका कविताकाल संवत् १७२२ के लगभग लिखा है। जान पड़ता है कि विनोदकारों ने इनके सम्बन्ध में ठीक-ठीक पूछताछ नहीं की। नाभाकृत भक्तमाल के टीकाकार प्रियादासजी ने भट्ट जी के सम्बन्ध में जो लिखा है, उसका सारांश नीचे दिया जाता है।

भट्टजी श्रीराधा-कृष्ण के पहले से ही अनन्य भक्त थे। आप बड़ी ही सरस रचना रचा करते थे। एक दिन श्री जीवगोसाईंजी के आगे दो साधुओं ने भट्टजी का बनाया यह पद गाया:

सखी, हौं स्याम-रंग रँगी।
देखि बिकाय गयी वह मूरति, सूरति माँहि पगी।।
संग हुतो अपनों सपनों सो, सोइ रही रस खोई।
जागेहुँ आगे दृष्टि परै सखि, नैंकु न न्यारो होई।।

एक जु मेरी अँखियन में निसिद्यौस रह्यौ करि भौन।
गाइ चरावन जात सुन्यौं सखि, सो धौं कन्हैया कौन ?
कासों कहौ, कौन पतियावै, कौन करै बकवाद।
कैसेकै कहि जात 'गदाधर' गूँगे कौ गुर-स्वाद॥

यह पद सुनकर जीवगोसाईंजी ने उन साधुओं के हाथ भट्ट जी के पास एक पत्र लिख भेजा। पत्र में यह श्लोक लिखा था:

अनाराध्य राधापदाम्भोजयुग्ममनाश्रित्य बृन्दाटवीं तत्पदङ्काम्।
असंभाष्यतद्भावगम्भीरचित्तान्, कुतः श्यामसिंधोः, रसस्यावगाहः॥

श्लोक पढ़कर भट्टजी प्रेमावेश में मूर्च्छित हो गये। संज्ञा प्राप्त होने पर तुरन्त सब छोड़कर, सीधे बृन्दावन को चल दिये। बृन्दावन में आकर आप महाप्रभु श्री चैतन्यदेव के शरणापन्न हो गये। श्री महाप्रभुजी के आप विशेष कृपापात्र थे। आपका चरित्र एवं स्वभाव कैसा था, यह भक्तवर नाभाजी के उपर्युक्त छप्पय से भली भांति प्रकट होता है।

भट्टजी की रचना बड़ी ही सरस और भक्ति-भावपूर्ण है। आपकी रचना अष्टछाप के उत्कृष्ट कवियों के जोड़ की है। साहित्यिक गुणों के अतिरिक्त भट्टजी के पदों में त्याग, अनुराग और भक्ति का वह चित्र खचित दिखाई देता है जो विरले ही भक्त कवियों में मिलता है। आपका कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं मिलता; केवल कुछ फुटकर पद मिलते हैं। भट्टजी ब्रजसाहित्य और गौर-सम्प्रदाय के अभिमान-स्वरूप हैं, इसमें सन्देह नहीं।

विभास

दिन दूलह[१] मेरो कुँवर कन्हैया।
नितप्रति सखा सिगार सँवारत, नित आरती उतारति मैया।

---

१ नित्य बना-ठना, सदा एकरस।

नितप्रति गीत वाद्य[1] मंगल धुनि, नित सुर-मुनिवर बिरद[2] कन्हैया।
सिर पर श्रीब्रजराज राजवित, तैसे हीं ढिग बलनिधि बलभैया[3]।।
नितप्रति रासबिलास व्याहविधि, नित सुरतिय सुमननि बरसया।
नित नव-नव आनंद वारिनिधि, नित ही गदाधर लेत बलैया।।१।।

चिन्तय[4] चित्त! चिरं हरि-चरणं। गोप बधूजन-हृदयाभरणं।।
स्वाकालंकृतं वृन्दारण्यं। निज कर दयिता[5] कुंकुम धन्यं।।
रत्नमयातुल[6] कर्णाभरणं। ध्येयं चरणाम्बुज नभवरणं।।
भालमिलद्वर कुंकुम-तिलकं। चन्दनचित्रित वक्षःफलकं।।
अरुणाधर विनिहित[7] वर वेणुं। मुनि-दुर्लभ-चरणाम्बुज-रेणुं।।
तारावलि-निभ[8] मौक्तिक[9] हारं। सम्भृत सौंदर्यामृत सारं।।
विततोरसि[10] विलसद्वनमालं। कटितट-घरति सुकिंकिणि-जालं।।
वलयांगद[11] संगत[12] भुजदंडं। दनुज-कुलांत विधावति चंडं।।
चरण-रणित[13] मणिमय मंजीरं[14]। सच्चित्सुख-घन सुभग शरीरं।।
त्रैलोक्यामृतशोभा रुचिरं। गोपतनुं नर चिन्तय सुचिरं।।
दुर्गत-बंधु करुणासिंधु। विश्वहितं हृदि[15] गुरुजन बन्धुं।।
क्रीडंतं निज सखिभिः साकं। गोपबधूजन-पुण्य-बिपाकं[16]।
अशरण-शरण भवभय-हरणं। प्रणम 'गदाधर' गिरिवर-धरणं।।२।।

श्रीगोविंद-पद पल्लव सिर पर विराजमान,
कैसे कहि आवै या सुख कौ परिमान[17]
ब्रजनरेस-देस बसत कालानल हूँ त्रसत,
बिलसत मन हुलसत करि लीलामृत-पान।

---

१ बाजा। २ यश। ३ बलभद्र। ४ चिंतन कर, ध्यान कर। ५ स्त्री। ६ रत्नमय अतुल। ७ युक्त। ८ शोभा। ९ मोती। वितत उरसि, चौड़ी छाती पर। ११ कड़े और बाजूबंद। १२ युक्त। १३ बजता हुआ। १४ नूपुर। १५ हृदय में। १६ कर्म। १७ सीमा।

भीजे[1] नत नयन-रहत प्रभु के गुनग्राम[2] कहत
मानत नहिं त्रिबिध ताप[3] जानत नहिं आन।
तिनके मुख-कमल-दरस, पावन पदरेनु[4] परस,
अधम जन 'गदाधर' से पावैं सनमान ॥३॥

देश

मोहन-बदन की सोभा।
जाहिं देखत उठति सखि आनंद की गोभा[5] ॥
नैंन धीर अधीर कछु-कछु असित[6] सित[7] राते[8]।
प्रिया-आनन चंद्रिका-मधुपान-रस - माते ॥
बंसिका कलहंसिका[9] मुखकमल-रस-राची[10]।
पवन परसत अलक अलिकुल कलस-सी माची ॥
ललित लोल कपोल, कुण्डल मधुरमकराकार।
जुगल सिसु सौदामिनी जनु नचत नट-चटसार[11] ॥
बिमल जलक सुढार मुक्ता नासिका दीनों।
ऊँच आसन पर असुर-गुरु[12] उदौ-सौ कीनों ॥
भौंह सोहनिका कहौं अरु भाल कुमकुम[13] बिंदु।
स्यामबादर[14]-लेरेख परि मनु अबहिं ऊग्यौ इंदु ॥
लग्यौ मन ललचाइ तातें टरत नहिं टारचौ।
अमित अद्भुत माधुरी[15] पर 'गदाधर' वारचौ ॥४॥

श्री

नमो, नमो जय श्रीगोविंद।
आनँदमय ब्रज सरस सरोवर, प्रगटित बिमल नील अरविंद ॥

---

१ सजल नेत्र। २ समूह। ३ आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक दुःख। ४ रज। ५ लहर। ६ श्याम। ७ श्वेत। ८ लाल। ९ हंसिनी। १० रंगी, मग्न। ११ रंगभूमि, नृत्यशाला। १२ शुक्र, जिसका रंग श्वेत है। १३ रोरी। १४ काले बादल। १५ छवि।

जसुमति-नीर नेह नित पोषित, नवनव ललित लाड़[1] सुखकंद।
ब्रजपति-तरनि[2] प्रताप-प्रफुल्लित, प्रसरित[3] सुजस सुबास अमंद॥
सहचरि -जाल-मराल संग रँग, रसभरि नित खेलत सानंद।
अलि गोपीजन नैन 'गदाधर', सादर पिवत रूप-मकरंद॥५॥

सारंग

हरि हरि हरि हरि रट रसना मम।
पीवति खाति रहित निधरक[4] भई, होत कहा तोकों स्रम।
तैं तो सुनी कथा नहिं मो-से उधरे अमित महाघम।
ग्यान ध्यान जप तप तीरथ ब्रत, जोग-जाग[5] बिनु संजम॥
हेम हरन[6] द्विज-द्रोह मान-मद, अरु पर-गुरु-दारागम[7]।
नाम-प्रताप-प्रबल-पावक में होत भसम अघ अमित सलभ[8] सम॥
इहिं कलिकाल-कराल-काल विष-ज्वाल विषम भोये[9] हम।
बिन इहिं मंत्र 'गदाधर' की क्यों, मिटिहै मोह-महातम॥६॥

बिहाग

जो मन स्याम-सरोवरि न्हाहिं।
बहुत दिनन को जरचो बरचो तूँ, तबहीं भले सिराहिं॥
नयन बयन कर चरन-कमल से, कुंडल मकर समान।
अलकावलि सिवाल-जाल तहँ, भौंह-मीन मो जान॥
कमठ-पीठ[10] दोउ भाग उरस्थल, सोभितदीप[11] नितंब।
मनि मुकुता-आभरन बिराजत, ग्रहनछत्र प्रतिबिंब॥
नाभि-भँवर त्रिवली-तरंग, झलकत सुन्दरता-बारि।
पीत बसन फहरानि उठी जनु पदुम रेनु[12] छबि धारि॥

---

१ प्यार। २ सूर्य। ३ फैला हुआ। क्या ही सुन्दर रूपक है। ४ निडर। ५ यज्ञ। ६ स्वर्ण की चोरी। ७ परस्त्री-गमन। ८ पतिंगे। ९ रंगे हुए। १० कछुवा; जिसकी उपमा पीठ से दी जाती है। ११ द्वीप। १२ कमल का पराग।

सारस-सरिस सरस रसना-नव, हंसक[1] धुनि कलहंस।
कुमुद-दाम[2] बग-पंगति[3] बैठी, कविकुल करत प्रसंस॥
क्रीड़ा करति जहाँ गोपीजन, बैठि मनोरथ-नाँव।
बारबार यह कहत 'गदाधर' देह सँवारी दाँव[4]॥७॥

आसावरी

है हरि तें हरिनाम बड़ेरो[5], ताकों मूढ़ करत कत झेरो[6]?
प्रगट दरस मुचकुन्दहिं[7] दीन्हों, ताहू आयुसु भी तप केरो॥
सुत-हित नाम अजामिल[8] लीनों, या भव में न किया फिरि फेरो[9]॥
पर-अपवाद[10] स्वाद जिय राच्यौ, वृथा करत बकवाद घनेरो॥
कौन दसा जु ह्वै है 'गदाधर' हरि हरि कहत जात कह तेरो॥८॥

गौरी

नंद-कुल-चंद, वृषभानु-कुल-कौमुदी
उदित वृन्दाबिपिन बिमल आकासे।
निकट वेष्ठित[11] सखीवृन्द, बरतारिका,[12]
लोचन-चकोर तिन रूप-रस-प्यासे॥
रसिकजन अनुराग-उदधि तजी मरजाद,
भाव अगनित कुमुदिनी-गन बिकासे।
कहि 'गदाधर' सकल विस्व तमयन, बिना
भानु भव-ताप-अग्यान न बिनासे॥९॥

---

१ बिछुवा नूपुर से आशय है। २ माला। ३ बगुला की पंक्ति। ४ यह मौका हाथ से न जाने दो। ५ बड़ा। ६ झेल, देर। ७ इक्ष्वाकुवंशी एक राजा। इन्होंने कालयवन को भस्म कर दिया था। पीछे श्रीकृष्ण ने जाकर इन्हें दर्शन दिया। पुराणों में लिखा है कि मुचकुन्द कल्पांत के बाद सूर्यवंश पुनः चलायेंगे। ८ एक पापी ब्राह्मण जो अंतकाल अपने नारायण नामक पुत्र का नाम लेने से मुक्त हो गया था। ९ पुनर्जन्म। १० निंदा। ११ युक्त। १२ तारा।

इस पद का रूपक क्या हो सुन्दर और सर्वाङ्गपूर्ण है।

सारंग

कबै हरि कृपा करिहौ सुरति मेरी। और न कोऊ काटन कों मोह-बेरी[1]।
काम-लोभ आदि ये निर्दय अहेरी[2]। मिलिकै मन-मति मृगी चहुँघा घेरी।
रोपी आय पास पासि[3] दुरासा केरी। देत वाही में फिरि-फिरि फेरी॥
परी कुपथ कंटक आपदा घनेरी। नैकहीन पावति भजि भजन सेरी[4]॥
दंभ के आरंभ ही सतसंगति डेरी। करै क्यों 'गदाधर' बिनु करुना तेरी॥१०॥

दंडक

जयति श्री राधिके सकल-सुख -साधिके,
तरुनि-मनि नित्य नवतन किसोरी।
कृष्ण-तनु-लीन मनरूप की चातकी,
कृष्ण-मुख-हिम-किरन[5] की चकोरी॥
कृष्णदृग-भृग-विश्राम हित पद्मिनी,[6]
कृष्णदृग-मृगज[7] बंधन सुडोरी।
कृष्ण-अनुराग-मकरंद की मधुकरी,
कृष्ण-गुन-गान-रस-सिंधु बोरी॥
विमुख परचित तें चित जाकौ सदा,
करत निज नाह[8] की चित्त-चोरी।
प्रकृति यह 'गदाधर' कहत कैसें बनै
अमित महिमा, इतै बुद्धि थोरी[9]॥११॥

बसंत

देखौ प्यारी, कुंज-बिहारी मरतिवंत बसंत॥
मौरी[10] तरुनि तरनिजा[11] तन में, मनसिज-रस बरसंत॥
अरुन अधर नव-पल्लव-सोभा, बिहँसन कुसुम-बिकास।

---

१ बेड़ी, बंधन। २ शिकारी। ३ फांसी। ४ ओर। ५ चंद्रमा। ६ कमलिनी। ७ हिरण का बच्चा। ८ नाथ, स्वामी। ९ थोड़ी; छोटी। १० बौरी हुई। ११ यमुना।

फूले बिमल कमल-से लोचन, सूचत[१] मन उल्लास ।।
चलि चूरन कुन्तल अलिमाला, मुरली कोकिल नाद ।।
देखत गोपीजन बनराई[२], मदन मुदित उनमाद ।।
सहज सुबास स्वास मयलयानिल[३], लागत परम सुहायौ ।।
श्रीराधा-माधवी 'गदाधर', प्रभू परसत सचु[४] पायौ ।।१२।।

सारंग

दधि मथति नन्दनरिंद[५] रानी करति सुत-गुन-गान।
नील नीरद अंग दिव्य दुकूल बर परिधान ।।
केस कुसुमनि किरनि मनि ताटंक[६] झलकत कान।
स्वेदकन[७] गन बदन-विधु पर सुधा-बिंदु-समान ।।
नेत[८] करषत हरष बरषत बलय-किंकिनि-क्वान[९]।
पय-पयोधर स्रवत, चातक-कृष्ण पिवत निदान ।।
सहज-आनन[१०] कहि सकें नहिं जासु भाग्य-बखान।
जगतबंद्य गोविंद-माता 'गदाधर' करि ध्यान ।।१३।।

दंडक

जय महाराज व्रजराज-कुल-तिलक गोविन्द गोपीजनानन्द राधारमन
नन्दनृप-गेहिनी-गर्भ-आकार[११] यतन सिष्ट[१२] कष्टद धृष्ट दुष्ट दानवदमन
बल-दलनगर्व, पर्वत-बिदारन[१३] ब्रजभक्त-रच्छा-दच्छ[१४] गिरिराज-धरधीर
विविध वेला कुसल मुसलधर[१५] संगलै चारुचरनांकचिततरनि-तनयातीर
कोटि कंदर्प[१६] दर्पापहर[१७] लावन्य धन्य, बृन्दारन्य-भूषन मधुर तरु।

---

१ प्रकट करते हैं। २ बनराज। ३ मलय-सुगंधित वायु। ४ सुख। ५ राजा। ६ तरौना। ७ पसीने की बूंदें। ८ मथानी को डोरो। ९ झनकार; शब्द। १० मेघ, स्तन। ११ खानि। १२ साधु। १३ इन्द्र; पुराणों में लिखा है कि पर्वत पहले सपक्ष थे, ये उड़-उड़कर बड़ा उपद्रव मचाते थे। इन्द्र ने अपने वज्र से उनके पंख काटकर, संसार में शांति स्थापित कर दी। १४ चतुर। १५ बलभद्र। १६ कामदेव। १७ गर्व-भंजन।

मुरलिका-नाद पीयूष महानंदन विदित सकल ब्रह्म रुद्रादि सुरबरु ॥
'गदाधर' विषै वृष्टि करुना-दृष्टि करु दीन कौं त्रिविध-संताप ताप-तवन[1]।
हैं सुनी तुव कृपा कृपनजन[2] गामिनी, बहुरि पैहैं कहाँ मो बराबर कबन ॥१४॥

मलार

रंग हिंडोरना[3] मन मोह्यो।
सहज वृन्दाविपिन-पावस, सदा आनन्द-केलि।
जहँ सघन द्रुम-घटा-घन सौं विद्यु-कंचन वेलि ॥
कुसुम किसलय सुरंग[4] सुरधन मंद पवन झकोर।
नदत[5] गहगह[6] कंठ भरि कलकंठ चित्रक मोर ॥
मनिन-बरनी किरनि नव-तृन निरखि मुद्रित कुरंग।
थल कमलछल छत्राक[7] बिच-बिच बूट विद्रुम-भंग ॥
भ्रमित अलि-मद-अंध बिबिध सुगंध-लहरि अपार।
तहँ कलित-ललित हिंडोरना कल कल्पद्रुम[8] की डार ॥
खचे मन मानिक महाघन, रचे चित्र-विचित्र।
देखिवे कौं किये अनिमिष नैन रसिकन मित्र ॥
झलमलत छलछलनि मोती मनहुँ आनंद[9] नीर।
तिहिं निरखि सुर सुनिहार, कोटिक लजे मनधीर ॥
अति निपुन बीना वेनु, लाल प्रमान गन-विधान।
वलि 'गदाधर' स्याम-स्यामा चरनप्रद कल्यान ॥१५॥

मलार

झूलै कुँवरि गोपराइन की। मधि राधा सुन्दरि-सुकुमारि ॥
प्रथमहिं रितु पावस आरम्भ। श्रीवृषभानु मँगाये खंभ ॥
काढ़ि भवन त रतन अमोल। पटि-पचि-रुचिर रचाइ हिंडोल ॥

---

१ तपन, जलन। २ पतित। ३ हिंडोल। ४ रंग-बिरंगा इन्द्र-धनुष। ५ बोलते हैं। ६ सुरीला गला। ७ कुकुरमुत्ता। ८ कल्पवृक्ष; यहाँ कदंब से तात्पर्य है। ९ आनंद।

एक-तें एक सुभग सुकुमारि। रची मनीं बिधि कुंकुम नारि॥
जगमगाति नव जोबन-जोति। निरखि नैन चकचौंधी होति॥
बरन-बरन चूनरी सुरंग। फबीं सलौने सोने-अंग॥
राजत मनि-अभरन रमनीय। गुही जुही कबरी कमनीय[1]॥
गावहिं सुघर सरस रसगीत। दुलरावैं मन मोहन मीत॥
प्रेम-बिबस भई सकहिं न गाइ। उपज्यौ आनंद उर न समाइ॥
दुरि देखत गोकुल-कुलराइ[2]। सोभा निरखत मन न अघाइ॥
मुदित 'गदाधर' नन्दकिसोर। लोचन भये भरे के चोर॥१६॥

देश

राधे, रूप अद्भुत रीति।
सहज जे प्रतिकूल[3] तो तन, रहे छाँड़ि अनीति॥
कचनि[4] रचना राहु ढिगहीं, मुदित बदन मयंक।
तिलक-बान, कमान[5] दृग, मृग रहे निपट निसंक॥
रतन-जतननि जटिल जुग ताटंक[6] रबि रहे छाज।
तदपि दूनी जोति मोतिन, मंडली उडुराज।
अधर सुधर सुपक्व बिंबा, सुभग दसन अनार।
धीर धारिकैं कोर-नासा, करत नहिं संचार॥
निकट कटि-केहरी पै, गज-गति न मेटी जाति।
प्रकट गज-गति जहाँ जंघा, कदलि-रुचि-हुलसाति[7]॥
'गदाधरि' बलि जाइ बूझत, लगत हैं मन त्रास।
इती संपत्ति सहित, क्यों पै, देत नहिं मवास[8]॥१७॥

---

१ सुन्दर। बेनी में जूही के फूल गुथे हैं। २ श्रीकृष्ण। ३ परस्पर विरोधी; विपरीत धर्मवाले। ४ बाल, जिनके कालेपन की उपमा काले राहु से दी गयी है, ५ धनुष। ६ तरौना। ७ प्रगट . . . हुलसाति=हाथी केले के पेड़ को पकड़ कर गिरा देता है, पर यहाँ यह बात नहीं है। गजगामिनी राधिका की जंघा रूपी केले तो और भी प्रसन्न होते हैं। ८ शरण।

हिंडोल

झूलत नागरि नागर लाल।
मंद-मंद सब सखी झुलावति, गावति गीत रसाल॥
फरहराति पटपीत[1] नील[2] के, अंचल चंचल, चाल।
मनहुँ परस्पर उमँगि ध्यान-छबि, प्रगट भई तिहिं काल॥
सिलसिलात अति प्रिया-सीस तें, लटकति बेनी नाल।
जनु पिय-मुकुट-बरहिं[3] भ्रमबस तहँ, व्यालीं[4] बिकल बिहाल॥
स्यामल गौर परस्पर प्रतिछबि, सोभा बिसद बिसाल।
निरखि 'गदाधर' रसिक कुंवरि-मन, परचौ सुरस-जंजाल॥१८॥

केदारा

आजु मोहन रची रासरस-मंडली।
उदित पूरन निसनाथ निर्मल दिसा,
देखि दिनकर-सुता[5] सुभग पुलिन-स्थली[6]॥
बीच हरि बीच हरिनाच्छ माला[7] बनी,
तरुलता पिछ जनु कनक-कदली रली[8]॥
पवन-बस चपल दल तुलन सों देखियत,
चारु हस्तक भेद[9] भाँति भारी भलीं॥
चरन-विन्यास[10] कर्पूर - कुंकुम - धूरि।
पूरि रहि चारिदिसि कुञ्जबन की गली॥
कुन्द - मन्दार - अरबिंद मकरंद - मद,
पुञ्ज-पुञ्जनि मिले मंजु गुंजत अली॥
गान-रस तान के बान बेध्यो बिस्व,

---

१ श्रीकृष्ण का पीतांबर। २ राधिका का नीलांबर। ३ मोर। ४ सर्पिणी। ५ यमुना। ६ तट का स्थान। ७ मृगनयिनी गोपियों की पंक्ति। ८ मिली। ९ नृत्य विशेष। १० गति के ताल के साथ चरणों का ठीक-ठीक रखना। ११ गुलाल।

जान अभिमान मुनि-ध्यान-रति दलमली[1]॥
अवर गिरधरन के लागिकै जगत,
बिजयी भई माधुरी मुरलिका काकली[2]॥
रस-सिरे मध्य मण्डल बिराजत खरे,
नन्दनन्दन कुँवर भानुजू की लली[3]।
देखु अनिमेषु लोचन 'गदाधर' जुगल,
लेखु जिय आपने भाग-महिमा फली॥१९॥

सारंग

संगीत-रस-कुसल नृत्य-आवेस-बस,
लसित राधा रस-मण्डल-बिहारिनी॥
दिव्य गति चरन चारन चक्रवर्ती,
तो कुँवर स्यामल मनोहर मनोहारिनी॥
लोचन बिसाल मृदुहास मन उल्लास,
नन्दनन्दन-मनसि[4] मोद - बिस्तारिनी॥
मृदुल पद-विन्यास चलित बलयावली,
किंकिनी मंजु मंजीर झंकारिनी॥
रूप निरुपम काँति भाँति बरनी न जाति,
पहिरि आभरन रवि षोडस-सिंगारिनी॥
मृदंग वीना ताल सुर सप्त संचार,
चारुता चातुरी सार अनुसारिणी॥
मधुर मुख-सबद पीयूष बरसत मनों,
सींचि पिय-स्रवन तन-पुलक[5]-कुल - कारिनी॥
कहि 'गदाधर' जु गिरिराजधर तें अधिक,
बिदित[6] रस-ग्रंथि अद्भुतकला - धारिनी॥२०॥

---

१ नष्ट कर दी, भंग कर दी। २ मधुर ध्वनि। ३ लाड़िली पुत्री। ४ मन में। ५ रोमाँच। ६ प्रकट।

गौरी

आजु ब्रजराज को कुँवर बनतें वन्यों[1],
देखि, आवते मधुर अधर-रंजित बेनु।
मधुर कल गान निज नाम सुनि स्रवन पुट
परम प्रमुदित बदन फेरि हूँकति धेनु।।
मद विघूर्नित[2] नैन मन्द बिहँसनि बैन,
कुटिल अलकावली ललित गोपद-रेनु[3]।
ग्वाल-ग्वालनि-जाल करत कोलाहलनि,
सृग दल ताल धुनि रचत संचत[4] चैनु[5]।
मुकुट की लटक, अरु चटक[6] पटपीत की
प्रगट अंकुरित[7] गोपी मनहिं मैनु[8]।
कहि 'गदाधर' जु इहि न्याय[9] ब्रज-सुन्दरी,
बिमल बनमाला के बीच चाहतु ऐनु[10]।।२१।।

कान्हरा

जम्हाई रिझाई सारंग-नैनी[11]।
अति रस काननि अमरत बरषत,
अँखियाँ जल झलमलाय[12] आई तन पुलकनि-स्रेनी।
आयु तकति करताल देत[13] दीनों न जाइ.
मुरझाई[14] भाइ-भीनी गज गैनी[15]।।

---

१ शृंगार किए हुए। २ मद्य से घूमते हुए; रँगीले। ३ गायों के खुरों से उड़ी हुई धूल। ४ एकत्र करता है। ५ आनन्द। ६ झलक। ७ उत्पन्न। ८ कामदेव। ९ इस प्रकार। १० निवास। ११ मृगनयनी। १२ आँसू झलकने लगे, जैसा कि जँभाई लेते समय स्वाभाविक ही होता है। १३ जंभाई लेते समय, कहते हैं, ताली या चुटकी बजा देने से आयु बढ़ती है। १४ भाव में रंगी हुई है। १५ गामिनी।

प्रेम-पागि उर लागि रही 'गदाधर'
प्रभु के पिय अंग-अंग-सुखदैनी ॥२२॥

भैरवी

अघ-संहारिनी, अधम-उधारिनी,
कलिकाल-तारिनी मधु-मथन[1] गुन-कथा।
मंगल-बिधायिनी, प्रेम-रस-दायिनी,
भक्ति अनपायिनी[2] होइ जिय सर्वथा॥
मथि वेद[3] मथि ग्रंथ कथि व्यासादि,
अजहुँ आधुनिक तन कहत है मतियथा।
परमपद सोपान करि 'गदाधर' पान,
आन अलाप[4] तें जात जीवन वृथा ॥२३॥

सारंग

जमुना देवी कों न भलाई।
नामरूप गुन लै हरिजू कौ, न्यारी अपनी चाल चलाई॥
अपबस[5] देस कियो भ्राता[6] कौ, उनहिं परसि कोऊ तहाँ न जाई।
जे तन तजत तीर तुम्हरे, दे तात-किरन में गैल लगाई[7]।
मुक्तिबधू कौं करि दूतत्व[8], अघमनि कों लै आनि मिलाई।
आपुन स्याम, आन[9] उज्ज्वल करि, तात[10] तपत अपु सीतलताई।
जल कों छल करि[11], अनल अघन कों, यह सुनिकै कोऊ क्यों पतिआई।

---

१ मधु दैत्य को मारनेवाले श्रीकृष्ण। २ निरंतर रहनेवाली। ३ वेदों में से सार निकालकर। ४ बातचीत। ५ अपने अधीन। ६ यमुनाजी ने अपने भाई यमका देश अपने अधीन कर लिया, अर्थात् अपने पुण्य-प्रताप से नरक के द्वार बन्द कर दिये। ७ हे यमुने, जो तुम्हारे तीर पर मरते हैं वे तुम्हारे पिता सूर्य के मंडल को भेदकर सीधे ब्रह्म-लोक चले जाते हैं। ८ दूतीपन। ९ दूसरों को निर्मल कर देती है। १० सूर्य से आशय है। ११ छद्म-वेष धारण कर।

निसिदिन पच्छपात पतितनकौ, तदपि 'गदाधर' प्रभु मन भाई ॥२४॥

भैरवी

मो कुल[1] कमरु कलमष नासत, देखि प्रवाह प्रभाकर-कन्या[2]।
वह देखो पाप जात जित-तित बहे, ज्यों मृगराज देखि मृगसैन्या ॥
दै पय-पान पूत लौं[3] पोषति, जननि कृतारथ धनि बहु धन्या।
दीनीं चहति 'गदाधरजू' पै, चरन-सरन अति प्रीति अनन्या ॥२५॥*

गाली

सुन्दर स्याम सुजान-सिरोमनि, देऊँ कहा कहि गारी[4] हो।
बड़े लोग के औगुन बरनत, सकुचि उठति मन भारी हो ॥
को करि सके पिता कौ निरनौ[5] जाति-पाँति को जाने हो।
जाके मन जैसीयै आवति, तैसिय भाँति बखाने हो ॥
तुम पुनि प्रगट होय बारे[6], तें, कौन भलाई कीनीं हो।
मुक्तिबधू उत्तमजन-लायक, लै अधमनि कौं दीनीं हो ॥
बसि दस मास गर्भ माता के, इहिं आसा करि जाये[7] हो।
सो घर छाँड़ि जीभ के लालच[8] भये हो पूत पराये[9] हो ॥
बारें तें गोकुल गोपिन के सूने घर तुम डाटे हो ॥
पैठे तहाँ निसंगक रंक-लौं दधि के भाजन चाटे हो ॥
आपु कहाइ धनी कौ ढोटा[10] भात कृपन लौं माँग्यो हो।

---

१ मेरे अर्थात् जीव के सब शुभाशुभ कर्म। २ सूर्य-पुत्री यमुना। ३ समान। ४ विवाह की गालियाँ, एक प्रकार का गीत, जिसमें विवाह के अवसर पर ससुराल की स्त्रियाँ दूलह को व्यंगभरी बातें सुनाती हैं। ५ निर्णय। ६ बचपन से। ७ पैदा किये गए। ८ चटोरपन। ९ दूसरे के; देवकी से जन्म लेकर दूध-दही के लालच से गोकुल में आकर अपने को यशोदा के पुत्र कहलाने लगे। १० बेटा।

* इस पद में विरोधाभास अलंकार है। महाकवि केशवदास ने रामचन्द्रिका में सरयू का भी ऐसा ही वर्णन किया है।

मान भंग पर दूजैं[1] जाचतु, नैकु सँकोच न लाग्यो हो॥
सब कोउ कहत नन्दबाबा कौ, घर भरयौ रतन अमोलै हो।
गर गुंजा, सिर मोर-पखौवा[2], गायन के सँग डोलै हो॥
मोहन बसीकरन चट-चटक[3], मंत्र-जंत्र सब जानै हो।
तातें भले-भले सब तुमकों भले-भले करि मानै हो॥
बरनौं कहा जथामति मेरी बेदहुँ पार न पावै हो।
भट्ट 'गदाधर' प्रभु की महिमा गावत ही उर आवै हो॥२६॥

---

१ सुदामा से चावल माँग कर खाये। २ मोर के पंख। ३ इन्द्रजाल, जादू-टोना।

स्वामी हरिदास

छप्पय

जुगल-नाम सों, नेम, जपत नित कुञ्जबिहारी।
अवलोकत नित रहैं केलि-सुख के अधिकारी॥
गान-कला-गंधर्व स्याम-स्यामा कों तोषैं॥
उत्तम भोग लगाय मोर मरकट तिमि पोषैं॥
नित नृपति द्वार ठाढ़े रहैं, दरसन आसा जास को।
अस आसधीर-उद्योतकर 'रसिक' छाप हरिदास की॥

नाभाजी

श्रीस्वामी हरिदासजी का जन्म-संवत् अनिश्चित-सा ही है। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि यह सम्राट् अकबर के सिंहासनारूढ़ होने के पहले ही प्रख्यात हो चुके थे। स्वामीजी कहाँ, किस कुल में अवतीर्ण हुए थे, यह भी कुछ विवादास्पद-सा है। वे लोग, जो इनके वंशधर कहे जाते हैं, इन्हें सारस्वत ब्राह्मण, मुल्तान के समीप के उच्च गाँव का निवासी बताते हैं। और स्वर्गीय बाबू राधाकृष्णदास ने 'भक्तसिंधु' के अनुसार इनका सनाढ्य ब्राह्मण, कोल के निकट हरिदासपुर का निवासी होना लिखा है। 'भक्तसिंधु' के साथ स्वामीजी की शिष्य-परम्परा वाले श्रीसहचरिशरण भी अपना स्वर मिला रहे हैं:

श्री स्वामी हरिदास रसिक-सिरमौर अनीहा।
द्विज सनाढ्य सिरताज सुजसु कहि सकत न जीहा॥
गुरु-अनकंपा मिल्यौ ललित निधिवन तमाल के।
सत्तर लौं तरु बैठि गनै गुन प्रिया लाल के॥

भगवतरसिक की वाणी, पृष्ठ १३१

उसी छंद के आगे सहचरिशरणजी फिर लिखते हैं:

बीठल बिपुल सनाढ्य अनाढ्य धन-धर्म पताका।
श्री गुरु अनुग अनन्य अनूपम जनु ससि राका।।

बीठल विपुलजी स्वामीजी के मामा तथा प्रधान शिष्य थे। बीठल विपुलजी सनाढ्य थे। सनाढ्यों एवं सारस्वतों का परस्पर सम्बन्ध नहीं होता। अतएव स्वामीजी को भी सनाढ्य माना है। इस विषय पर बहुत विवाद चल चुका है। हमें इस पर कोई आग्रह नहीं कि स्वामीजी किस वंश के विभूषण थे—सनाढ्य थे या सारस्वत। हमारी दृष्टि में वे इन सभी सांसारिक जाति-भेदों और वंश-बन्धनों से परे थे। वे तो वास्तव में 'भागवत' वंश के थे और, 'अच्युत' गोत्रज। जो प्रमाण मिले वे हमने ऊपर लिख भर दिये हैं। अपनी राय हमने किसी पर स्थिर नहीं की। ब्रजमाधुरीसार के अनन्य मधुव्रत स्वामी हरिदासजी महाराज सनाढ्य थे या सारस्वत इन बातों पर हमारी दृष्टि ही नहीं जानी चाहिए। वह तो बस 'श्रीराधाकृष्णीय' थे।

स्वामी हरिदास जी बड़े त्यागी, निस्पृह और रसिक-गण्य महात्मा थे। निंबार्क-संप्रदाय के अंतर्गत 'टट्टी-संस्थान' के आदि संस्थापक स्वामीजी थे। संगीत के आप बड़े भारी आचार्य माने जाते हैं। प्रसिद्ध गायनाचार्य तानसेन के आप गुरु थे। कहते हैं कि एक बार साधु का वेष धारण कर तानसेन के साथ बादशाह अकबर भी स्वामीजी का संगीत सुनने गया था। बहुत सारी भेंट रखने पर भी आपने कुछ ग्रहण नहीं किया।

आप अष्टप्रहर श्रीराधाकृष्ण के लीला-विहार में मस्त रहा करते थे। भावावेष में आपको प्रायः सहज समाधि लगी रहती थी। सुनते हैं, एक बार एक भक्त स्वामीजी को भेंट करने के लिए इत्र की एक शीशी लाया। स्वामीजी ने उस शीशी को जमीन पर उड़ेल दिया। सेवक के पूछने पर आपने इत्र उँड़ेल देने का यह कारण वतलाया कि "आज मैं श्री बिहारीजी के साथ होली खेल रहा था। तुम अच्छे अवसर पर इत्र लाये; देखो, काम आ गया। मैंने तुम्हारी शीशी को श्रीबिहारीजी के ऊपर उँड़ेला है, जमीन

पर नहीं। विश्वास न हो, देख आओ।" सचमुच ही श्रीबिहारीजी के वस्त्र इत्र से सराबोर पाये गये। इस प्रसंग के लिखने का यह तात्पर्य नहीं कि लोग इसमें ऐतिहासिक तत्त्व देखने की चेष्टा करें। इस पर कोई विश्वास करे या न करे, पर इसमें तो संदेह, नहीं कि महात्माओं के भक्ति-भाव अद्‌भुत होते हैं।

स्वामी जी ने पदों के अतिरिक्त और छंदों में रचना नहीं की।[1] आपके पद भी ऐसे हैं, जो साधारणतया पढ़ने में बहुत पिंगल-संगत नहीं जान पड़ते, पर संगीत के ढाल पर वे पूरे उतरते हैं। उनमें कविता का बाहरी चमत्कार चाहे न हो, पर मनोहारिता, मार्मिकता और भक्ति तो उनमें बड़ी ऊँची कोटि की है। सिद्धांत और श्रृंगार दोनों पर ही स्वामीजी ने पदावली रची है। सिद्धांत के १९ तथा श्रृंगार-सम्बन्धी ११० पद मिलते हैं।[2] आपकी

---

१ 'कविता-कौमुदी' (भाग) १ के पृष्ठ १४१ पर स्वामी हरिदासजी का एक कवित्त लिखा है। वह यह है :

गायौ न गोपाल मन लाइकै निवारि लाज,
  पायौ न प्रसाद साधु-मंडली में जाइकै।
धायौ न धमक वृन्दाविपिन की कुञ्जन में,
  रह्यौ न सरन जाय बिट्‌ठलेसराइ कै॥
नाथ जू न देखि छक्यौ छिनहूँ छबीली छबि,
  सिह पौरी परस्यौ नाहि सीसहूँ नवाइकै।
कहै 'हरिदास' तोहि लाज हूँ न आवै नेक,
  जनम गँवायौ न कमायौ कछु आइकै॥

किंतु यह कवित्त स्वामी हरिदास जी का रचा नहीं है। वल्लभ-कुल में हरिदास नाम के एक अन्य कवि हुए हैं, उन्हीं का रचा यह कवित्त है। इनके और भी कवित्त पाये जाते हैं। वैसे ही 'विट्‌ठलेस नाथजू' और 'सिह पौरि' प्रत्यक्ष ही वल्लभ-कुल की साक्षी दे रहे हैं।

२ 'मिश्रबंधुविनोद' के प्रथम संस्करण के ३०३ पृष्ठ पर स्वामी हरिदासजी कृत 'भरथरी वैराग्य' का उल्लेख मिलता है। किंतु हमें यह सही

विहार-विषयक पदावली को 'केलिमाला' भी कहते हैं। टट्टी-संस्थान में एक-से-एक बढ़कर सुकवि, त्यागी, अनुरागी और अनुभवी महात्मा हुए हैं। श्रीकृष्ण-सम्बन्धी कविता-सरिता के अविरल प्रवाह में टट्टीवालों ने बड़ा ऊँचा योग दिया है। इन सबका श्रेय रसिक-सम्राट् श्रीस्वामी हरिदास जी को ही है। आपके कुछ पद नीचे उद्धृत किये जाते हैं।

सिद्धांत

विभास

ज्योंही ज्योंही तुम राखत हौ,
त्योंही त्योंही रहियतु हैं, हो हरि।
और अचरचै पाइ धरौं,
सु तौ कहौ कौन के पैंड भरि[1]॥
जदपि हौं अपनौ भायौ[2] कियौ चाहौं,
कैसे करि सकौं, सो तुम राखौ पकरि।
कहि 'हरिदास' पिंजरा के जानवर लौं,
तरफराइ रह्यौ उड़िबे कों कितोउ करि॥१॥*

विभास

काहू कौ बस नाहिं तुम्हारी कृपातें, सब होय बिहारी-बिहारिनि[3]।
और मिथ्या प्रपंच काहे कौ भाषियै, सो तौ है हारनि।
जाहि तुमसों हित, ताहि तुम हित करौ, सब सुख-कारनि।

नहीं जान पड़ता। क्योंकि स्वामी जी ने श्री राधाकृष्ण के नित्यबिहार-संबंधी पदों के अतिरिक्त और कोई ग्रन्थ नहीं लिखा। 'भरथरी-चरित्र' के रचयिता कोई दूसरे ही हरिदास हैं।

१ बलसे, आधार से। २ मनचाहा। ३ श्रीकृष्ण और राधिका। ४ हार, वृथा श्रम।

*इस पद में जीव की परतंत्रता भागवत-कृपा से मुक्ति-प्राप्ति दिखाई गई है।

श्री 'हरिदास' के स्वामी स्यामा कुंज-बिहारी, प्राननि के आधारनि ।।२।।*

आसावरी

हित तौ कीजै कमलनैन सों, जा हित के आगे और हित लागै फीको।
कै हित कीजै साधु-सँगति सों, जावै कलमष जी को ।।
हरि कौ हित ऐसी जैसी रंगमजीठ[1], संसार हित कसूभि[2] दिन दूती[3] को।
कहि 'हरिदास' हित कीजै बिहारी सों, और न निबाहु जानि जी को ।।३।।

तिनका[4] बयारि[5] के बस।
ज्यों भावै त्यों उड़ाइ लै जाइ आपने रस[6]।
ब्रह्मलोक सिवलोक और लोक अस ।।
कहि 'हरिदास' विचारि देख्यौ बिना विहारी नाहीं जस ।।४।।

आसावरी

हरि के नाम कौं आलस क्यों करत है रे, काल फिरत सर साँधे[7]।
हीरा बहुत जवाहर संचे, कहा भयो हस्ती दर बाँधे ।।
बैर-कुबेर[8] कछु नहिं जानत, चढ़ो फिरत हैं काँधै।
कहि 'हरिदास' कछू न चलत जब, आवत अंत[9] की आँधैं ।।५।।

आसावरी

मन लगाइ प्रीतिकर-करवा[10] सौं ब्रज-बीथिन दीजै सोहिनी।
बृन्दाबन सौं, बन-उपवन सौं, गुंजमाल कर पोहिनी[11] ।।

---

१ मजीठ का रंग कभी छूटता नहीं। २ कच्चा लालरंग। ३ दो दिन का, क्षणिक। ४ तृण, यहाँ जीव से आशय है। ५ वायु, यहाँ भगवत्प्रेरणा से तात्पर्य है। ६ अपनी इच्छा से। ७ धनुष पर बाण चढ़ाये हुए; एकदम तैयार। ८ मौका-बेमौका। ९ मृत्यु की घड़ियाँ। १० मिट्टी का एक टोंटीदार बरतन; स्वामीजी अपने पास बरतनों के नाते एक करवा ही रखते थे। ११ गूंथना।

*इसमें भी जीव के पुरुषार्थ की हीनता और भगवान् की कृपा की प्रधानता दिखाई गई है।

गो गो-सुतन सौं, मृग-सुतन सौं, और तन[1] नेकु न जोहिनी[2] ॥
श्री 'हरिदास' के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी सौं।
चित्त ज्यों सिर पर दोहिनी[3] ॥६॥

कल्याण

हरि कौ ऐसोई सब खेल।
मृगतृस्ना जग व्यापि रही हैं, कहूँ बिजोरो[4] न बेल ॥
धन-मद जोबन-मद औ राज-मद, ज्यों पंछिन में डेल[5] ॥
कहि 'हरिदास' यहै जिय जानौ, तीरथ कौ सो मेल[6] ॥७॥

कल्याण

झूठी बात साँची करि दिखावत हौं, हरि नागर।
निसिदिन बुनत-उधेरत[7] ही जात प्रपंच कौ सागर।
ठाठ बनाइ धर्‌यो मिहरी कौ[8], है पुरुष[9] तें आगर[10]।
कहि 'हरिदास' यह जिय जानौ, सुपने कौं-सो उजागर ॥८॥

कल्याण

जौलौं जीवै तौलौं हरि भजु रे मन, और बात सब बादि[11]।
दिवस चारि कौ हला-भला[12], तूं कहा लेइगौ लाद ॥
माया-मद गुन-मद जोबन-मद, भूल्यौ नगर-बिबादि।
कहि 'हरिदास' लोभ चरपट भयो, काहे की लागै फिरादि[13] ॥९॥

कल्याण

प्रेम-समुद्र रूप-रसि गहिरे, कैसे लागै घाट।
बेकारचो दै जानि कहावत, जानिपनो[14] की कहा परी बाट ॥

---

१ ओर। २ देखना। ३ जैसे स्त्रियाँ अपने सिर के घड़े पर, सबसे बात-चीत करती हुई भी, सदा एकाग्रचित्त से ध्यान रखती हैं। ४ फल विशेष। ५ एक पक्षी। ६ क्षणिक मेल, तीर्थों में क्षणभर के लिए कितनों से ही मेल-मिलाप हो जाता है। ७ बनाते-मिटाते। ८ स्त्री; यहाँ 'माया' से तात्पर्य है। ९ ब्रह्म। १० बढ़कर। ११ वृथा। १२ चैन-चान। १३ फर्याद। १४ ज्ञान।

काहू[1] कौ सर पै न सूधो, मारत[2] गाल गली-गली हाट[3]।
कहि 'हरिदास' बिहारिहिं जानौ, तकौ न औघट[4] घाट॥१०॥

केलिमाला

कान्हरा

प्यारी[5] जैसे तेरी आँखिन में हौं अपनपौ
देखत, तैंसे तुम देखति हौ किधौं नाहीं?
हौं तोसौं कहौं प्यारे[6] आँख मूदि
रहौं, लाल[7] निकसि कहाँ जाहीं।
मोकों निकसिबे कों ठौर बताऔ,
साँची कहौं बलि जाऊँ, लागौं पाहीं[8]।
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा,
तुमहिं देख्यौ चाहत और सुख लागत नाहीं॥११॥*

कान्हरा

आजु तृन-टूटत[9] है ही, ललित त्रिभंगी[10] पर।
चरन-चरन पर मुरलि अधर पर,
चितवनि बंक छबीली भुव पर॥
चलहु न बेगि राधिका पिय पै[11]
जो भई चाहत हौ सर्वोपरि।
'श्रीहरिदास' समय जब नीकौ, हिल-मिलि-केलि अटल रति भ्रू पर॥१२॥

---

१ किसका अहंमन्यतायुक्त पुरुषार्थ सफल नहीं हुआ। २ बातें बनाता फिरता है। ३ बाजार। ४ कुमार्ग। ५ श्रीराधिका से आशय है। ६ श्रीकृष्ण से आशय है। ७ श्रीकृष्ण। ८ पैरों पड़ता हूँ। ९ बलिहारी है।

*इस पद में प्रिया-प्रीतम श्रीराधाकृष्ण की एकरूपता का बड़ा सुन्दर चित्र खींचा गया है।

१० बाँकेबिहारी श्रीकृष्ण। ११ पास।

अद्‌भुत गति उपजति, अति नाचत, दोऊ मंडल कुँवर-किसोरी ।।
सकल सुगन्ध अंग भरि झोरी, पिय नृत्यति, मुसुकति मुख मोरी ।
ताल धरैं बनिता मृदंग, चंद्रा-गति-घात[१] बाजै थोरी-थोरी ।।
मधुर भाव-भाषा बिचित्र अति, ललित गीत गाव चित चोरी ।।
श्रीवृन्दावन फूलनि फूल्यौ, पूरन ससि, समीर-गति[२] थोरी ।।
गति बिलास, रस-हास परस्पर, भूतल अद्‌भुत जोरी[३] ।।
श्रीजमुना-जल विथकित[४] पुहुपनि, छबि रतिपति डारति तृन-तोरी ।।
'श्रीहरिदास' के स्वामी-स्यामा, कुंजविहारीजू कौ रस[५] रसना कहै कोरी ।।१३।।

कान्हरा

तुव जस कोटि ब्रह्मांड बिराजै राधे ।
श्री सोभा बरनी न जाइ अगाधे, बहुतक जन्म बिचारत ही गये साधे[६] ।।
'श्रीहरिदास' कहत री प्यारी, ये दिन[७] मैं क्रम करि-करि लाधे[८] ।।१४।।

कान्हरा

सोई तो बचन मों सों मानि, तैं मेरी लाल मोह्यो, री साँवरी ।।
नव निकुञ्ज-सुखपुञ्ज-महल में सुबस[९] बसौ यह गाँव री ।।
नव-नव लाड़ लड़ाइ लाड़िली नहिं-नहिं यह ब्रज बावरी ।।
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा, कुंजबिहारी पै वारूँगी मालती-भावरी ।।१५।।

केदारा

झूलत डोल[१०] दूलहिनी-दूलह ।
उड़त अबीर कुमकुमा छिरकत, खेल, परस्पर भूलहु ।।
बाजत ताल रवाब[११] और बहु तरनि-तनैया[१२] कूलहु ।।

---

१ मृदंग की थाप । २ मंद-मंद वायु । ३ जोड़ा । ४ स्थिर हो गया । ५ आनन्द । ६ साधन करते-करते । ७ तेरी महिमा करने के लिए ये दिन । ८ प्राप्त किए । ९ स्वतंत्रता से, सुख से । १० फूलों का झूला । ११ वाद्य विशेष । १२ सूर्य-पुत्री यमुना ।

'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा कुंजविहारी को अंतै[1] नहिं फूलहु ॥१६॥

केदारा

प्यारी तेरो बदन - चंद देखे,
मेरे हृदय-सरोवर में कुमोदिनी फूली।
मन के मनोरथ तरंग अपार,
सुन्दरता तहँ गति-मति भूली ॥
तेरो कोप-ग्राह[2] ग्रसै लियै जात,
छुड़ाये न छूटत रह्यो बुधिबल झूली[3]।
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा चरन-बनसी[4],
गहि काढ़ि रहे लपटाइ गहि भुजमूली ॥१७॥

---

१ अन्यत्र आनंद नहीं है। २ क्रोध-रूपी मगर। ३ निष्फल।
४ लोहे का एक काँटा, जिसमें डोरी बाँधकर मछलियाँ फँसाते हैं।

श्री सूरदास मदनमोहन

छप्पय

गान-काव्य-गुन-रासि सुहृद सहचरि-अवतारी।
राधाकृष्ण-उपासि रहसि-सुख के अधिकारी॥
नवरस मुख्य सिंगार विविध भाँतिन करि गायौ।
वदन उच्चरत वेर सहस पायँन ह्वै धायौ॥
अंगीकारहि की अवधि, ज्यों, आख्या भ्राता जमल।
श्रीमदनमोहन सूरदास की नाम-शृंखला जुरि अटल॥

—नाभाजी

श्रीसूरदास मदनमोहन, सम्राट् अकबर के राज्य-काल में, संडीले के अमीन थे। इनका रचना-काल संवत् १९५० के लगभग जान पड़ता है। इनका असली नाम सूरध्वज था। आप श्री मदनमोहनजी* के परम्-भक्त थे। अपने नाम के साथ अपने इष्टदेव का नाम इतनी घनिष्ठता से सम्बद्ध कर लिया था कि इनका असली नाम छिप ही गया और लोग इन्हें सूरदास मदनमोहन कहने लगे, जैसा कि नाभाजी ने लिखा है।

श्रीमदनमोहन सूरदास की नाम शृंखला जुरि अटल।

यह जाति के ब्राह्मण और श्रीचैतन्य-सम्प्रदाय के नैष्ठिक वैष्णव थे। साधु-सेवी तो आप ऐसे थे कि रुपया-पैसा आता, बिना आगा-पीछा देखे, साधु-सेवा में सब खर्च कर डालते। कहते हैं, एक बार संडीले की तहसील

---

* 'मिश्रबन्धुविनोद' के ३५४ पृष्ठ पर इनके सम्बन्ध में लिखा है कि यह मदनमोहन के शिष्य थे। शायद विनोदकारों को 'मदन-मोहन' नाम में किसी सांप्रदायिक गोसाईं का भ्रम हो गया है।

से तेरह लाख रुपया वसूल होकर आया। आपने सब-का-सब साधु-सेवा में खर्च कर दिया। शाही खजाने में संदूक कंकड़-पत्थरों से भरकर भेज दिये। संदूकों के अंदर एक-एक कागज भी रख दिया, जिसमें लिखा था

तेरह लाख सँडीले आये, सब साधुन मिलि गटके।
'सूरदास मदनमोहन' आधी रात सटके।।

आपकी उदारता और सरलता पर बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ। कहने लगा—'रुपये साधुओं ने गटक लिये, तो कोई हर्ज नहीं, पर सूरदास क्यों आधी रात को सटक गये; भागने का ऐसा कारण ही क्या था?' बादशाह ने आपके पास एक फरमान, कसूर की माफी और दरबार में हाजिर होने का भेजा, पर सूरदासजी नहीं गये। कहला भेजा—'अब, आपका आमिली और सूबेदारी से श्रीवृन्दाबन की गलियों में झाड़ू देना हजार गुना अच्छा है। तभी से आप सँडीला छोड़कर ब्रज में आ बसे।

इनकी कविता बड़ी ही सरल और मनोहारिणी है। सभी पद संगीत-संगत हैं। सूरदास नाम होने से इनके बहुत-से पद तो 'सूरसागर' में घुल-मिल गये हैं। इनका कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। श्रद्धेय श्रीराधाचरण गोस्वामी के अनुग्रह से कुछ फुटकर पद हमें मिले हैं, जो नीचे लिखे जाते हैं—

ललित

पाछे ललिता[1], आगे स्यामा प्यारी,
ता आगे पिय मारग फूल बिछावत जात।
कठिन कली बीन-बीन न्यारी करत,
प्यारी के चरन कोमल जानि सकुचन जिय गड़िबेऊ डरात।।
दीर्घ लता कर सों निवारत[2] पाछे
गहे डारि सीस नाहिं परसत पल्लव-पात।
'सूरदास मदनमोहन' पिय की आधिनताई
देखत मेरे री नैन सिरात[3]।।१।।

---

१ श्रीराधा की एक सखी। २ सुलझाते हैं। ३ ठंडे होते हैं, तृप्त होते हैं।

मलार

माई रीः, झूलत रंग-हिंडौरैं ।।
सोभा तन स्याम-गौरैं नील,
पीत पट दामिनी के भोरैं[1] ।।
सखीजन चहूँ ओर झुलावति,
थोरैं-थोरैं पवन गवन आवैं सोधैं[2] की झँकोरैं[3] ।
सोभासिंधु मन बौरैं[4] नैननि सों,
नैन जोरैं रीझि, प्रान वारति छवि पर तृन तोरैं,
'सूरदास' 'मदनमोहन' चित चोरैं,
मुरली की धुनि सुनि सुरवधू सिर ढोरैं[5] ।।२।।

ललित

अहो मेरी लाड़िली सुकुमारि पालनैं झूलैं।
मृदु मुसकानि निरखि नैननि सुख, कीरतजू[6] मन-ही-मन फूलैं ।।
कबहूँ चटकोरा चटकावति, झुंझन झुंझना छूलन झूलैं ।।
कबहुँ लेत उछंग अंक भरि, अंतरगत की हरति है सूलैं ।।
श्रीवृषभानु गोद लै बैठे, मन-क्रम-वचन साधना तूलैं ।।
'सूरदास मदनमोहन' के अंतरनिधि की खानि सो खूलैं[7] ।।३।।

बधाई

नंदजू मेरे मन सानंद भयो हौ गोबर्धन तैं[8] आयो।
तुम्हरे पुत्र भयो हौं सुनिकैं, अति आतुर उठि धायो ।।

---

१ धोखे से; उपमा-योग्य होने से। २ सुगंध। ३ लहरें। ४ डुबाये हुए हैं। ५ पछता रही है; मुरली की मनोहर ध्वनि सुन कर देवांगनाएं मन-ही-मन पछताती हुई कहती हैं, कि हाय, हम आज ब्रज-गोपिकाएँ क्यों न हुईं? ६ राधिका की माता। ७ खुलती हैं; उजागर होती हैं। ८ गोवर्द्धन पर्वत के पास उसी नाम का एक ग्राम।

बंदीजन अरु भिच्छुक सुनि सुनि देस-देस तें आये।
इक पहले ही आसा लागे, बहुत दिननि तें छाये॥
ते पहिरैं कंचन मनि मुकता, नाना बसन अनूप।
मोहि मिले मारग में मानों जात कहूँ के भूप॥
तुम तौ परम उदार नंदजू, जोइ माँग्यो सोइ दीनों।
एसो और कौन त्रिभुवन में तुम-सरि[1] साकौ[2] कीनों॥
लच्छ[3] हेतु तौ पर्‌यौ रहौं, बिनु देखे नहिं जैहौं।
नंदराइ सुनि बिनती मेरी तबै बिदा भलि ह्‌वैहौं॥
दीजै मोहिं कृपाकरि जो हौं आयौ माँगन।
जसुमति सुत अपने पाइनि चलि खेलत आवै आँगन॥
जब तुम मदनमोहन कहि टेरो, यह सुनि हौं घर जाऊँ।
हौं तौ तेरो घर कौ ढाढ़ी,[4] 'सूरदास' मो नाऊँ॥४॥

बधाई

प्रगट भई सोभा त्रिभुवन की भानु[5] गोप के आई।
अद्‌भुत रूप देखि ब्रज-बनिता रीझीं लेति बलाइ[6]॥
नहिं कमला नहिं सची नहीं रति उपमाहूँ न समाइ।
जा हित प्रगट भये ब्रजभूषन, धन्य पिता धन माइ॥
जुग-जुग राज करौ दोऊ जन, इत तुव उत नँदराइ।
उनके मदनमोहन, तेरे स्यामा, 'सूरदास' बलि जाइ॥५॥

आसावरी

प्रीतम प्यारी राजति रंगमहल।
गरजि - गरजि रिमझिम - रिमझिम
बूंदनि लाग्यौ बरसनि घन॥

---

१ बराबरी। २ कीर्ति। ३ एक लाख मुद्रा। ४ कथिकों का एक वर्ग, जो केवल जन्मोत्सव के अवसर पर गाता-नाचता है। ५ महाराज वृषभानु। ६ बलैयाँ।

बोलत चातक-मोर दामिनी दमकि,
आवे झूमि बादर अवनि परसन॥
तैसी हरियारी सावन मनभावन
आनंद उर उपजावत इन्द्र-बधू-दरसन॥
'मदनमोहन' प्रिया सँग गावत राग मलार
ललित लता लागीं सुनि-सुनि सरसन[1]॥६॥

मलार

गौर गोबिंद नवलकिसोर सखी चितचोर,
ठाढ़े हैं द्रुम की छहियाँ।
अधर धरे मुरली ऊँच सुर लीयें सुनि तोहि बुलावत हैं,
माई री, तू कत कहति नहियाँ॥
बिनही अंजन खंजन से नैना पिय-मन-रंजन,
रहैं तिरछी ह्वै पिय-मन-महियाँ।
'सूरदास मदनमोहन' के ध्यान तेरो निसिबासर
सखी, कौन प्रकृति तो पहियाँ॥७॥

कान्हरा

स्याम निकट सनमुख ह्वै बैठी स्यामा कंचनमनि आभूषन पहिरैं।
साँवरे तन में प्रतिबिंबित हैं, मानों स्नान करत बैठी जमुना जल में गहिर॥
अंग-अंग-आभास[2] तरंग गौर स्यामता सुन्दरता सोभा की लहरैं।
'सूरदास मदनमोहन', मोपै कहि न आवति, मेरी दृष्टि न ठहरै॥८॥

कान्हरा

तू सुनि कान दै री, मुरली
तेरे गुन गावैं स्याम कुंज-भवन।

---

१ हरी-भरी होने लगीं, प्रसन्न होने लगीं। २ छाया। ३ दिव्य सौंदर्य के आगे आँखें चकाचौंध में पड़ गई हैं।

सनमुख होइकरि ताहिं कों आँकौं[१] भरि
सों तन परसि आवै जो पवन ॥
तेरोई ध्यान धरत उर-अंतर नैन मूँदि
निकसत उर डरपत, तेरोई आगम[२] सुनि स्रवनन ।
'सूरदास मदनमोहन' सों तूँ चलि
मिलि तोहिं तें[३] पायो नाम राधारमन ॥९॥

देस

मेरी गति तुमही अनेक तोष पाऊँ
चरन-कमल-लख-मनि पर विषै-सुख बहाऊँ ।
घर-घर जो डोलौं[४], तौ हरि तुम्हैं लजाऊँ ॥
तुम्हरों कहाय कहौ कौन कौ कहाऊँ ?
तुमसौ प्रभु छाँड़ि कहा दीनन को धाऊँ ?
सीस तुम्हें नाय कहौ कौन कों नवाऊँ ?
कंचन उर हार छाँड़ि काँच क्यों बनाऊँ ?
सोभा सब हानि करूँ, जगत को हँसाऊँ ।
हाथी तें उतरि कहा गदहा चढ़ि धाऊँ ॥
कुमकुम कौ लेप छाँड़ि काजरमँह लाऊँ[५] ।
कामधेनु घर में तजि, अजा[६] क्यों दुहाऊँ ?
कनक-महल छाँड़ि क्योंऽब[७] परनकुटी[८] छाऊँ ?
पाइन जो पेलौं[९] प्रभु तौ न अनन्त जाऊँ ॥
'सूरदास मदनमोहन' जनम-जनम गाऊँ ।

---

१ हृदय से लगा ले । ताहिं को पवन . . . उस वायु को ही भेंट ले, जो प्यारे कृष्ण का स्पर्श कर आयी है । २ आगमन । ३ तेरे ही साथ रमण से । ४ द्वार-द्वार पर भीख मांगता फिरूँ । ५ लगाऊँ । ६ बकरी । ७ क्यों अब । ८ पत्तों और घास-फूस की झोपड़ी । ९ ठेलो, धक्का देकर निकाल दो ।

संतन की पानहीं[१] कौ रच्छक कहाऊँ ॥१०॥*

प्रभाती

स्याम लाल, प्रीत भयो, जागौ बलि जाऊँ।
चुटिया सुरझाय[२] बीच सुमन हौं गुँथाऊँ॥
उगत सूर्य ज्योति भई कुलहिरी[३] बनाऊँ।
पायँ बाँधि घुँघरू सु चालिवो सिखाऊँ॥
'सूरदास मदनमोहन' गुन तिहारो गाऊँ।
हरखि-निरखि गोविंद-छवि जीवन-फल पाऊँ॥११॥

ध्रुवपद

खेलिए आँगन छगन-मगन[४] कीजिए कलेवा।
छीके तें सौंधी दधि ऊपर तें काढ़ि धरी,
पहिरि लेउ झंगुली, फेंटा[५] बाँधि लहु मेवा॥
ग्वालन के संग खेलन जाहु खेलन के मिस भूषन[६] ल्याहु
कौन परी प्यारे निसिदिन की टेवा[७]।
'सूरदास मदनमोहन' घर में ही खेलौ प्यारे ललन,
भँवरा चकडोर[८] दैहौं हँस चकोर[९] परेवा[१०]॥१२॥

---

१ जूती। २ कंघी से सुलझाकर। ३ टोपी। ४ श्रीकृष्ण का वात्सल्यरस-सूचक प्यार का नाम। ५ कमर पर कसने का दुपट्टा। ६ गुंजाओं या फूलों के गहने। ७ आदत। ८ लट्टू। ९ चकरी। १० बच्चों के खिलौने।

*सूरदास की यह मनोकामना, कि मैं संतों की जूतियों की रखवारी किया करूँ, पूरी हो गयी। कहते हैं कि एक दिन एक साधू इन्हें अपनी जूतियाँ सौंपकर श्रीमदनमोहनजी का दर्शन करने चला गया। जब गोसाईं जी ने उन्हें किसी काम से बुलवाया तब कहला भेजा 'कि आज मेरी मनोवांच्छा सफल हो गई। अभी तक तो कोरा जमा-खर्च ही था, आज मुझे यह सेवा मिल गयी, जिसकी सदा से इच्छा थी।'

बिलावल

मधु के मतवारे स्याम खोलो प्यारे पलकैं।
सीस मुकुट लटा छुटी और छुटी अलकैं[१]॥
सुर नर मुनि द्वार ठाढ़े दरस हेतु किलकैं॥
नासिक के मोती सोहैं बीच लाल ललकैं॥
कटि पीतांबर मुरली कर स्रवन कुंडल झलकैं।
'सूरदास मदनमोहन' दरस दैहौ भलकैं[२]॥१३॥

देस

चलो री, मुरली सुनिए कान्ह बजाई जमुना-तीर।
तजि लोक-लाज, कुल की कानि गुरु-जन को भीर[३]॥
जमुना-जल थकित भयौ बछा[४] न पीवैं छीर।
सुर-विमान थकित भये, थकित कोकिल-कीर।
देह की सुधि बिसरि गई, बिसरो तन कौ चीर[५]।
मात तात बिसरि गये, बिसरे बालक बीर[६]॥
मुरली-धुनि मधुर बाजै, कैसेकैं धरौं धीर।
'सूरदास मदनमोहन' जानत हौ पर-पीर॥१४॥

---

१ आनन्द मना रहे हैं। २ भली भाँति। ३ भय। ४ गाय के बछड़े। ५ कपड़ा। ६ भाई।

श्रीभट्ट

छप्पय

मधुर-भाव-संवलित, ललित लीला सुवलित छबि।
निरखत हरषत हृदय प्रेम बरसत, सुकलित कवि।
भव-निस्तारन हेत देत दृढ़ भक्ति सबनि नित।
जासु सुजसु-ससि-उहै हरत अति तम भ्रम स्रमचित।।
आनंदकन्द श्रीनंदसुत श्रीवृषभानु सुता-भजन।
श्रीभट्ट सुभट्ट प्रगटचौ अघट रस रसिकन मनमोद-वन।।

—नाभाजी

श्रीनिवार्क-कुलावतंश विद्वच्चक्रचूड़ामणि केशव काश्मीरीजी के श्रीभट्टजी अंतरंग शिष्य थे। केशव काश्मीरीजी के सम्बन्ध में यह श्लोक प्रसिद्ध है:—

वागीशा यस्य वदने, हृत्कञ्जे च हरिः स्वयम्।
यस्यादेशकरा देवाः मंत्रराज-प्रसादतः।

वास्तव में, केशव काश्मीरीजी ने आचार्योचित वह कार्य किया, जिसके कारण निंबार्क संप्रदाय की नींव सदा के लिए सुदृढ़ हो गयी। आपके शिष्य श्रीभट्टजी ने तो मानो संप्रदाय-मंदिर पर कलश ही रख दिया। गुरुदेव यदि भगवान् के ऐश्वर्य के पूर्णप्रतिपादक थे, तो भट्टजी माधुर्य के सच्चे मधुव्रत। श्रीभट्टजी का जन्म-संवत् अनुमानतः १५५९ के लगभग जान पड़ता है, और इनका रचना-काल संवत् १६२५ सिद्ध हुआ है।

श्रीभट्टजी ने 'युगल-शतक' नामक केवल सौ पदों की रचना की। आपके शिष्य श्री हरिव्यासदेवजी ने 'युगल-शतक' पर एक विस्तृत पद्यात्मक टीका लिखी, जिसे 'महाबानी' कहते हैं। कविता की दृष्टि से 'युगल-शतक'

बहुत ऊँचा नहीं है, पर यदि उसका भक्त दृष्टि से अनुशीलन किया जाय तो उसमें वह चमत्कार अवश्य मिलेगा जो प्रायः रसिक महात्माओं की बानियों में पाया जाता है।

कहते हैं कि आपकी हार्दिक उत्कंठा पूरी करने के लिए भक्तवत्सल भगवान् समय-समय पर नित्य नयी-नयी लीलाएँ दिखाया करते थे। जैसे, एक बार भावावेश में भट्टजी महाराज मलार राग अलापने लगे। वह पद यह था——

भीजत कब देखौं इन नैना।
स्यामाजू की सुरँग चूनरी, मोहन कौ उपरैना॥

इतना ही गाया था कि आपकी रसमयी लालसा पूरी हो गयी। क्या देखा, सो शेष पद से प्रकट हो जाता है——

स्यामा-स्याम कुंजतर ठाढ़े, जतन कियौ कछु मैं ना,
'श्रीभट्ट' उमड़ि घटा चहुँदिसि तें, घिरिआई जल-सैना॥

भट्टजी के हृदय गगन में ज्यों ही श्याम-घटा उठी, कि रस-वर्षा आरम्भ हो गयी। घनश्याम और सौदामिनी राधिका की जोड़ी प्रत्यक्ष हो गई। आपकी धारणा कैसी भव्य है——

सेव्य हमारे श्री प्रिय प्यारे वृन्दाविपिन-विलासी।
नँद-नन्दन वृषभानु-नंदिनी-चरन-अनन्य उपासी॥
मत्त प्रनय-बस सदा एक रस बिबिध निकुंज निवासी।
'श्रीभट्ट' जुगुल रूप बँसीवट सेवत सब सुखरासी॥

श्री भट्टजी के कुछ पद नीचे उद्धृत किये जाते हैं:——

युगल शतक

पद

मदनगुपाल, सरन तेरी आयो।
चरनकमल को सरन दीजिये, चेरौ करि राखौं घर-जायो[1]।

---

१ घर में पैदा हुआ; पाला-पोसा गुलाम।

धनिधनि मात पिता सुत बंधु धनि, जननी जिन गोद खिलायो ॥
धनिधनि चलन चलत तीरथ की, धनि गुरुजन हरिनाम सुनायो ॥
जे नर विमुख भये गोविंद सों, जनम अनेक महादुख पायो।
'श्रीभट्ट' के प्रभु दियौ अभय पद[1] जम डरप्यौ[2] जब दास कहायौ ॥१॥

दोहा

मोहन जन ब्रजभूमि सब; मोहन सहज समाज।
मोहन जमुना कुंज तहँ विहरत श्रीब्रजराज ॥२॥

पद

ब्रजभूमि मोहिनी मैं जानी।
मोहन कुंज, मोहन बृन्दाबन, मोहन जमुना-पानी ॥
मोहन नारि सकल गोकुल की बोलति अमरित बानी[3] ॥
'श्रीभट्ट' के प्रभु मोहन नागर, मोहनि राधारानी ॥३॥

दोहा

सेव्य हमारे हैं सदा, वृन्दाबिपिन-बिलासि।
नँद-नंदन-वृषभानुजा चरन-अनन्य - उपासि ॥४॥

पद

सेव्य हमारे हैं पिय प्यारे वृन्दाबिपिन-बिलासी।
नँद-नन्दन वृषभानु नंदिनी चरन-अनन्य उपासी ॥
मत्त प्रनय[4] बस, सदा एकरस[5] बिविध निकुंज-निवासी।
'श्रीभट' जुगुलरूप बंसी वट सेवत सब सु रासी ॥५॥

---

१ वह पद, जिसके पा जाने पर सांसारिक त्रिविध दुःखों का आत्यंतिक नाश हो जाता है। २ डर गया। ३ अमृत के समान सुमधुर वाणी। प्रसिद्ध है कि 'वाचि श्रीमाधुरीणाम्' ४ प्रणय-मत्त, प्रेम में मतवाले। ५ निरंतर एक दशा में, सहज समाधि में लीन।

दोहा

आन[1] कहै आनै न उर, हरि गुरु सों रति होय।
सुखनिधि स्यामा-स्याम के पद पावै भल[2] सोय ॥६॥

पद

स्यामा-स्याम पद पावै सोई।
मन-बच-क्रम करि सदा नित्य जेहिं, हरिगुरु-पद-पंकज-रति होई।
नंद-सुवन वृषभानु-सुता-पद, भजै-तजै मन आनै जोई ॥
'श्रीभट' अटकि रहै स्वामीपन आन ब्रत मानैं सब छोई[3] ॥७॥

दोहा

जनम-जनम जिनके सदा, हम चाकर निसि-भोर।
त्रिभुवन-पोषन सुधाकर, ठाकुर जुगल-किशोर ॥८॥

पद

जुगलकिशोर हमारे ठाकुर
सदा-सर्वदा हम जिनके हैं, जनम-जनम घर-जाय चाकर ॥
चूक परैं परिहरैं न कबहूँ, सबहीं भाँति दया के आकर[4]।
जै 'श्रीभट्ट' प्रगट त्रिभुवन में प्रनतनि पोषत परम-सुधाकर ॥९॥

दोहा

तनिक न धीरज धरि सकै, सुनि धुनि होत अधीन।
वंसी[5] बंसीलाल की, बन्धन कों मन-मीन ॥१०॥

पद

बंसी त्रिभगी लाल की मन मीन की बनसी।
कहा अंतर धरि दूरी रह छई मूरति बनसी[6] ॥

---

१ आन. . . उर इष्ट को छोड़कर दूसरे को मन में न लाये। २ भली-भाँति। ३ रही, व्यर्थ। ४ खानि, स्थान। ५ मछलियों के फँसाने का लोहे का काँटा; मुरली। ६ बादलों की घाटी के समान।

हरि देखें बिनु क्यों रहौं, धीरज नहिं तनसी[1]।
जै 'श्रीभट' हरि-रस-बस भई, सुनि धुनि नेक भनसी[2]॥११॥

दोहा

मेरे मन की अघटना के तुम जाननिहारु।
बलि, रावे-नंद-नन्दना, चरन दिखाये चारु॥१२॥

पद

वलि-बलि, श्री नंद-नंदना।
मेरे मन की अमित अघटना को जाने तुम बिना॥
भलेई चारु चरन दरसाये, ढूंढत फिरिहौं बृन्दावना।
जै 'श्रीभट' स्यामा-स्याम रूप पै निछावर तन-मना॥१३॥

दोहा

अंग-अंग-दुति माधुरी, बिबि मुख चन्द्रचकोर।
अटके 'श्रीभट'-दृष्टि में, नटवर नवलकिसोर॥१४॥

पद

बसौ मेरे नैननि में दोऊ चंद।
गौरबरनि वृषभानु-नन्दनी, स्यामवरन नँद-नन्द।
गोलक[3] रहे लुभाय रूप में, निरखत आनन्द-कन्द।
जै 'श्रीभट' प्रेम-रस बन्धन क्यों छुटै दृढ़ फंद॥१५॥

दोहा

जमुना वंसीवट निकट, हरन हिंडोरा हीय।
रँगदेव्यादि[4] झुलावहीं, झूलत प्यासी पीय॥१६॥

---

१ तनिक-सा। २ भनक; अर्थात् झनसी आवाज। ३ आँखों की पुतलियाँ। ४ रंगदेवी आदि; राधिकाजी की अष्ट सखियाँ।

हिंडोरौ झूलति हैं पियप्यारी।
श्रीरँगदेयी सुदेयी[1] विसाखा, झोंटा देति ललिता री॥
श्री जमुना बंसीबट के तट सुभंग भूमि हरियारी।
तैसेइ दादुर मोर करत धुनि मन कों हरत महा री॥
घन रजनी दामिनि तैं डरपैं, पिय-हिय लपटि सुकुमारी।
जै 'श्रीभट' निरखि दंपति-छबि देत अपनपो बारी॥१७॥

दोहा

बेदी पुलिन बिराजहीं, मंगल बेलि-तमाल।
नच्यौं किधौं यह रच्यौ है, ब्याह बिहारीलाल॥१८॥

पद

श्री ब्रजराज कै युवराज, मानो ब्याह बृन्दावन रच्यौ।
पुलिन-बेदी[2] बिराजैं, दंपति, देखि देखि-कैं मन सच्यौ[3]॥
है पुरोहित रिचा[4] उचारत, बेलि-तमाल मंडप खच्यौ।
जै 'श्रीभट' भांवरी परत नटवर, अंकमाल प्रिया-संग नच्यौ॥१९॥

दोहा

तिहिं छिन की बलि जाऊँ सखि, जिहिं छिन भाँवरि लेत।
लालबिहारी साँवरे, गौर-बिहारिनि-हेत॥२०॥

पद

जै श्री बिहारिनि गौर, बिहारीलाल साँवरे।
तिहि छिन की बलि जाउँ सखी री, परति जिहिं छिन भाँवरे॥
कंचन-मनि-मरकत-मनि प्रगट, बसिए जो नंदगाँव रे।
बिधिना रचित न होय जै 'श्रीभट', राधा-मोहन नाँव[5] रे॥२१॥

---

१ सुदेवी, ललिता, विशाखा—सखियों के नाम। २ यमुना का तट मानों वेदी है। ३ सुखी हुआ। ४ वेदमंत्र। ५ नाम।

'श्रीभट' प्रगट "जुगल सत", पढ़ै कंठ तिहुँकाल।
जुगल-केलि-अवलोक तें, मिटै विषय-जंजाल[१]॥२२॥

छप्पय

दस पद हैं सिद्धान्त, बीस-षट[२] ब्रज-लीला पद।
सेवा सुख सोलहौं, सहज सुख एक-बीस[३] हद॥
आठै सुख, अरु उनत-बीस[४] उच्छव सुख लहिए।
श्रीजुत 'श्रीभटदेव' रच्यो 'सतजुगल'[५] जो कहिए॥
निज भजन-भाव-रुचि तें किये, इते भेद ये उर धरौ।
रूप-रसिक सब संतजन, अनुमोदन याकौ करौ॥२३॥

---

१ संसारी झंझट। २ छब्बीस। ३ इक्कीस। ४ उन्नीस। ५ 'युगल-शतक' ग्रंथ का नाम।

हरिराम व्यास

छप्पय

काहू के आराध्य मच्छ, कछ, सूकर, नरहरि।
बावन, परसाधरन, सेतु-बंधनहुँ सैल करि।।
एकन के यह रीति, नेम, नवधा सों लाये।
सुकुल समोखन-सुवन, अचुतगोत्री जु लड़ाये।।
नोगुनों तोरि नूपुर गुह्यौं, महतसभा-मधि रास के।
उत्कर्ष तिलक अरु दाम कौ, भक्त इष्ट अति व्यास के।।

—नाभाजी

श्रीहरिराम व्यास, ब्रजमंडल में, 'व्यासजी' के नाम से ही प्रसिद्ध हैं। यह ओरछा के रहनेवाले सनाढ्य ब्राह्मण थे। तत्कालीन ओरछाधीश महाराजा मधुकरशाह के यह राजगुरु थे। इनका रचना-काल संवत् १६२० जान पड़ता है। कहते हैं कि यह पहले गौर-संप्रदाय के अनुयायी थे। पीछे श्रीहितहरिवंशजी के शिष्य होकर राधावल्लभीय हो गये। इनके वंशज आज भी गौर संप्रदाय का तिलक धारण करते हैं।

व्यासजी के सम्बन्ध में 'मिश्रबन्धुविनोद' में एक भारी भूल हुई है। उसमें व्यास जी का दो स्थानों पर उल्लेख आया है, जो इस प्रकार है :

कवि-संख्या	कवि-नाम		कविता-काल	पृष्ठ-संख्या
(७८)	व्यासस्वामी	(उर्छा, बुन्देलखण्ड)	१६१५	३३७
(१८१)	व्यासजी	(ओड़छावाले)	१६८५	४५०

उर्छा और ओड़छा दोनों एक ही है। इसी प्रकार व्यास स्वामी कहिए, चाहे व्यासजी। विनोद में (७८) संख्यावाले व्यास स्वामी 'हरिव्यासी' मत के संस्थापक और (१८१) संख्यावाले व्यासजी निंबार्क-संप्रदाय के 'हरिव्यास-देव कहे गये हैं। उदाहरणार्थ, 'मिश्रबन्धुविनोद में जो पद दिये

गये हैं. वे भी एक ही बानी से दो विभिन्न स्थानों पर दो व्यासों को मानकर उद्धृत किये गये हैं।

अतः दो भिन्न-भिन्न स्थानों पर उल्लिखित व्यास एक ही हैं, दो नहीं। ये न हरिव्यासदेव थे और न हरिव्यासी-मत के प्रवर्त्तक। इनका निम्बार्क-संप्रदाय से कोई संबंध नहीं था। हरिव्यासी शाखा के संस्थापक हरिव्यास-देव महात्मा श्रीभटजी के शिष्य थे। ओरछावाले हरिराम व्यास श्रीराधा-वल्लभीय थे, निम्बार्कीय नहीं। जान पड़ता है, 'शिवसरोज' के आधार पर, विना व्यास-वंशियों अथवा वैष्णवों से पूछताछ किये ही, सुबुद्ध मिश्र-बन्धुओं ने व्यास जी के सम्बन्ध में ऐसा भ्रामक उल्लेख किया है।

व्यासजी संस्कृत के प्रकांड विद्वान् थे। यह सदा शास्त्रार्थ करने की धुन में रहते थे। एक दिन यह श्रीहितहरिवंशजी के पास पहुँचे; और उन्हें भी शास्त्रार्थ करने के लिए ललकारा। गोसाईंजी ने सौ बात की एक बात इस पद में सुना दी :

'यह जु, एक मन बहुत ठौर करि, कहि कौन सचु पायो।
जहँ-जहँ बिपति जार-जुवती ज्यों, प्रगट पिंगला गायो।।'

इत्यादि

यह पद सुनकर पंडिताग्रगण्य व्यास का सारा विद्या-बल तत्क्षण चूर-चूर हो गया। आप उसी दिन गोसाईं जी के अनन्य भक्त हो गये। व्यासजी राधावल्लभीय होते हुए भी अन्य सम्प्रदायों के प्रति कोई भेद-भाव नहीं रखते थे। उनकी दृष्टि में सन्त-मात्र भगवत्-स्वरूप थे।

ओरछे में सब प्रकार का मान-सम्मान होते हुए भी व्यासजी उसे छोड़ कर वृन्दावन में आ बसे। महाराजा मधुकरशाह, गुरुभक्ति-वश इन्हें लेने के लिए जब वृन्दावन आये, तब ये विरहाकुल होकर यह पद गाने लगे—

बृन्दावन के रूख (वृक्ष) हमारे, मात-पिता सुत बंध।
गुरु गोविंद साधु गति-मति सुख, फल-फूलनि कौ गंध।।

इनहिं पीठ दै अनत डीठि करि, सो अंधन में अंध।
'व्यास' इनहिं छोड़ै औ छुड़ावै, ताकौ परियौ कंध॥

बृन्दावन की गुल्म-लताएँ छोड़कर ये फिर कभी ओरछा नहीं गये। इन्होंने तत्कालीन सन्त-महात्माओं के सत्संग में ब्रजमाधुरीसार का जो अटूट रस लूटा उसे अपनी हृदयवेधिनी बानी में कई स्थानों पर बड़ी भक्ति-भावना से व्यक्त किया है।

व्यासजी भगवान् से भी भक्तों को कहीं अधिक ऊँचा मानते थे। साधु-सेवा के लिए सर्वस्व समर्पण कर दिया था। जाति और पद का तो तनिक भी ध्यान नहीं था, जैसा कि इन साखियों से प्रकट होता है:—

'व्यास' कुलीननि कोटि मिलि, पंडित लाख पचीस।
स्वपच भक्त की पानहीं, तुलै न तिनके सीस॥
'व्यास' मिठाई बिप्र की, तामें लागै आगि।
बृन्दावन के स्वपच की जूठनि खैये माँगि॥

इन्होंने अपना अनन्य रसिक-व्रत आजीवन निबाहा। सर्वस्व त्याग दिया, परन्तु सन्त-सेवा से विमुख नहीं हुए।

इनके तीन पुत्र थे—तीनों ही सन्त और सुकवि। व्यास जी गुरु-भक्त तो एक ही थे। श्रीहितहरिवंशजी के गोलोक-वास पर, उनके विरह में इन्होंने जो पद लिखा, उससे इनकी अद्वितीय गुरुभक्ति प्रकट होती है। वह प्रसिद्ध पद यह है:—

हुतो रस-रसिकन कौ आधार।
बिन हरिवंसहिं सरस रीति कौ, कापै चलिहै भार?
को राधा दुलरावै, गावै, बचन सुनावै चार।
बृन्दावन की सहज माधुरी, कहिहै कौन उदार?
पद-रचना अब कापै ह्वै है, निरस भयौ संसार।
बड़ौ अभाग अनन्य सभा कौ, उठिगो ठाठ-सिंगार।
जिन बिन दिन-छिन जुगसम बीतत, सहज रूप-आगार।
'व्यास', एक कुल-कुमुद-चंद्र बिनु, उडुगन जूठो थार॥

व्यासजी के लगभग ८०० पदों का एक हस्तलिखित संग्रह हमें उपलब्ध हुआ है। इसमें इनके सिद्धान्तों तथा विहार-सम्बन्धी पद संग्रहीत हैं। इनमें इनके १४५ दोहे भी हैं जो साखियों के नाम से प्रसिद्ध हैं। सिद्धान्तों पदों और साखियों में वैराग्य, ज्ञान और अनन्य भक्ति का बड़ा ही विशद वर्णन किया गया है। व्यासजी ने धर्म-दंभियों को खूब खरी-खरी सुनाई है। बिहार के पद कितने ललित और भाव-पूर्ण हैं; इसके लिखने की आवश्यकता नहीं। आश्चर्य और खेद का विषय है कि व्यासजी 'मिश्र-बन्धु विनोद' में साधारण श्रेणी के कवि माने गये हैं। नीलसखीजी ने व्यासजी की वानी के विषय में क्या ही सुन्दर पद कहा है—

जय-जय बिसद व्यास की बानी।
मूलाधार इष्ट रसमय-उतकर्ष भक्ति-रस-सानी॥
लोक-वेद-भेदन तें न्यारी, प्यारी मधुर कहानी।
स्वादिल सुचि रुचि उपजै पावत, मृदु मनसा न अघानी॥
सक्ति अमोघ विमुख भंजन की, प्रकट प्रभाव बखानी।
मत्तमधुप-रसिकन के मन की, रस-रंजित रजधानी॥
सखी-रूप नवनीत उपासन अमृत निकस्यौ आनी।
'नीलसखी' प्रनमामि नित्य, सो अद्भुत कथा-मथानी॥

व्यासजी के कुछ सिद्धांती पद, साखियाँ तथा नित्य विहार विषयक पद उद्धृत किये जाते हैं:—

सिद्धांत के पद

सारंग

राधावल्लभ मेरौ प्यारौ।
सरबोपरि सबही कौ ठाकुर, सब सुख-दानि हमारौ॥
ब्रज-बृन्दाबन-नायक सेवा-लायक स्याम उज्यारौ।
प्रीति-रीति पहिचानै जानैं, रसिकन कौ रखवारौ॥
स्यामकमल-दल-लोचन, मोचन-दुख, नैनन कौ तारौ।

अवतारी[1] सब अवतारन कौ, महतारी-महतारौ[2]।।
मूरतिवंत[3] काम गोपिन कौं, गाय-गोप कौ गारौ।
'व्यास' दास कौ प्रान-सजीवन, छिनभर हृदय न टारौ।।१।।

सारंग

वृन्दावन की सोभा देखैं मेरे नैन सिरात।
कुंज-निकुंज-पुंज सुख बरसत, सब कौ हरषत[4] गात।
राधा-मोहन के निज मन्दिर, महाप्रलय नहिं जात।।
ब्रह्मा तें उपज्यौ न, अखंडित कबहूँ नाहिं नसात।।
फनि[5] पर, रवि[6] तरि नहिं बिराट महँ, नहिं संध्या नहिं प्रात।
निरगुन-सगुन ब्रह्म तें न्यारौ बिहरत सदा सुहात।।
'व्यास', बिलास-रास अद्भुत गति, निगम अगोचर बात[7]।।२।।

देवगंधार

श्रीवृन्दावन देखत नैन सिरात।
इन मेरे लोभी नैननि में, सोभा-सिन्धु न मात[8]।।
संतत सरद बसंत बेलि-द्रुम, झूलत-फूलत रात[9]।
नँदनंदन वृषभानु-नंदिनी, मानहुँ मिलि मुसक्यात।।
ताल तमाल रसाल साल, पल-पल चमकत[10] फल-पात[11]।
मनहुँ गौर मुख बिधुकर[12] रंजित, सोभित साँवल गात।
किंसुक नवल नवीन माधुरी, बिकसित हिय उरझात।

---

१ जिसके अंश से और सब अवतार होते हैं, जैसा श्रीमद्भागवत में कहा है : 'एते चांशकलाःपुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।' २ पिता; यह शब्द केवल व्यासजी ने प्रयुक्त किया है। ३ साक्षात्। ४ प्रसन्न होते हैं। ५ शेषनाग के ऊपर नहीं है। ६ सूर्य के नीचे अथवा सौर जगत् में नहीं है। ७ रहस्य; सारांश यह, कि वृन्दावन प्राकृत नहीं है। ८ समाता है। ९ रहता है। १० झिलमिल-झिलमिल हो रहे हैं। ११ पत्ते। १२ चन्द्रमा की किरणें।

मनहुँ अवीर-गुलाल-भरे तन, दंपति अति अकुलात ।।
नाचत मोर-कोकिला गावत, कीर-चकोर सुहात।
मनहुँ रास-रस नाचै दोऊ, बिछुरि न जानै प्रात ।।
त्रिभुवन कौ कवि कहि न सकत कछु, अद्भुत छवि की बात।
'व्यास' वचन नहिं मुख कहि आवै, ज्यों गूँगो गुर[1] खात ।।३।।

चर्चरी

नव चक्र-चूड़ा[2] नृपति-मनि साँवरो, राधिका तरुनि-मनि पट्टरानी।
सेस ग्रह आदि वैकुंठ परिजंत[3] सब, लोक-थानैत[4] ब्रज राजधानी ।।
मेघ छानवे[5] कोटि बाग सींचत जहाँ, मुक्तिचारी[6] जहाँ भरति-पानी ।।
सूर-ससि पाहरू, पवन जन, इन्दिरा[7] चरन-दासी, भाट निगम बानी ।।
धर्म कुतवाल[8], सुक सूत नारद चारु, फिरत चर[9] चारि सनकादि[10] ग्यानी।
सत्व गुनपौरिया, काल बंधुवा[11] जहाँ, कर्मबस काम रति सुख-निसानी ।।
कनक मरकत[12]-बरनि कुंज कुसुमित महल, मध्य कमनीय सयनीय ठानी।
पल न बिछुरत दोऊ, जात नहिं तहँ कोऊ 'व्यास' महलनि लिये पीकदानी ।।४।।

धनाश्री

हरिदासन के निकट न आवत प्रेम पितर जमदूत।
जोगी भोगी संन्यासी अरु पंडित मुंडित धूत[13] ।।
ग्रह गनेस[14] सुरेस सिवा-सिव डर करि भागत भूत।
सिधि-निधि-विधि-निषेध हरिनामहिं डरपत रहत कपूत ।।
सुख-दुख-पाप-पुन्य मायामय ईति-भीति आकूत।
'व्यास' आस तजि सबकी भजिए ब्रज बसि भगत सपूत ।।५।।

---

१ गुड़। २ मस्तक, श्रेष्ठ। ३ पर्यन्त। ४ थाने; छोटे-छोटे स्थान। ५ पुराणों के अनुसार छियानबे करोड़ मेघ माने गए हैं। ६ सायुज्य सालोक्य, सामीप्य और सारूप्य। ७ लक्ष्मी। ८ कोतवाल, नगर-रक्षक। ९ गुप्तचर। १० सनक, सनंदन, सनातन और सनत्कुमार। ११ बंदी। १२ नीलम मणि। १३ धूर्त, पाखंडी। १४ गणेश।

सारंग

रसिक अनन्य हमारो जाति।
कुलदेवी राधा, बरसानों खेरौ[1] ब्रजबासिन सों पाँति।
गोत गोपाल, जनेऊ माला, सिखा, सिखंडि, हरिमन्दिर[2] भाल[3]।
हरिगुननाम बेद-धुनि सुनियतु, मूज पखावज, कुस[4] करताल॥
साखा जमुना, हरि-लीला षटकर्म[5], प्रसाद प्रानधन रास।
सेवा[6] बिधि-निषेध, जड़ संगति, वृत्ति सदा बृन्दावन-वास।
सुमति[7] भागवत, कृष्ण-नाम संध्या-तर्पन-गायत्री जाप[8]।
बंसोरिषि,[9] जजमान कल्पतरु 'व्यास' न देत असीस-सराप॥६॥*

सारंग

ऐसैं ही बसिए ब्रज बीथिन।
साधुन के पनवारे[10] चुनि-चुनि, उदर पोषिए सीथिन[11]।
घूरन में के बीन चिनगटा,[12] रच्छा कीजै सीतन[13]।
कुंज-कुंज-प्रति लोटि लगै उड़ि, रज ब्रज की अंगीतन।
नितप्रति दरस श्यामस्यामा, कौ, नित जमुना-जल-पीतन।

---

१ श्रीराधिकाजी की जन्मभूमि बरसाना ही हमारा खेड़ा या आदिघर है। २ मोर-पंख ही शिखा है। ३ तिलकयुक्त मस्तक ही भगवान् का मंदिर है। ४ हरिभजन करते समय हाथ से ताली बजाना कुश है। ५ ब्राह्मणों के छह, कर्म, अर्थात् वेद पढ़ना और पढ़ाना, यज्ञ करना और कराना तथा दान देना और लेना। ६ भगवान् की या संतों की सेवा। ७ स्मृति; धर्म-शास्त्र-संबंधी पुस्तकें। ८ हरिनाम-स्मरण ही गायत्री का जप है। ९ ऋषि। १० पत्तल। ११ झूठे भात से। १२ चिथड़ा। १३ जाड़े से।

*कहते हैं, एक बार रासमंडल में श्रीकृष्ण का नूपुर टूट गया। व्यासजी ने तुरन्त अपना जनेऊ तोड़कर उससे ठाकुरजी का नूपुर बांध दिया। यह देखकर कोरे कर्मठ ब्राह्मण व्यास जी से बहुत नाराज हुए। इस पर व्यासजी ने यह पद गाकर अपने 'ब्राह्मणत्व' को सिद्ध कर दिया।

ऐसेहिं 'व्यास' रचै तन पावन, ऐसेहिं मिलन अतीतन[१] ॥७॥

जैए कौन के अब द्वार

जो जिय होय प्रीति काहू के, दुख सहिए सौ बार।
घर-घर राजस-तामस बाढ़्यौ, धन-जोवन को गार।
काम-बिवस ह्वै दान देत, नीचन को होत उदार।
साधु न सूझत, बात न बूझत, ये कलि के व्यौहार॥
'व्यासदास' कत भाजि उबरिए, परिए माँझीधार॥८॥

सारंग

कहा-कहा नहिं सहत सरीर।
स्याम-सरन बिनु करम सहाइ न, जनम-मरन की पीर॥
करुनावंत साधु-संगति बिनु, मनहिं देइ को धीर॥
भक्त-भागवत-बिनु को मेटै, सुख दै दुख को भीर[२]॥
बिनु अपराध चहुँ दिसि बरसत, पिसुन[३]-बचन अतितीर[४]।
कृष्ण-कृपा कवची[५] तें उबरे, पावै तबहीं सीर[६]।
चेतहु भैया, बेगि बड़ी कलि-काल-नदी गम्भीर।
'व्यास' वचन बलि बृन्दावन बसि, सेवहु कुंज कुटीर॥९॥

सारंग

भजौ सुत, साँचे स्याम पिताहि।
जाके सरन जात ही मिटिहै, दारुनदुख कौ दाहि[७]॥
कृपावंत भगवंत सुने में, छिन छाँड़ौ जिनि ताहि।
तेरे सकल मनोरथ पूजैं, जा मथुरा लौं जाहि॥
वै गोपाल दयाल, दीन तू, करिहैं कृपा निबाहि।
और न ठौर अनाथ दुखिन को, मैं देख्यौं जग माहिं॥

---

१ वैरागियों से। २ समूह। ३ निर्दय, दुष्ट। ४ बाण के समान। ५ कवच। ६ शीतलता, शांति। ७ दाह, जलन।

करुना-वरुनालय की महिमा, मो पै कही न जाहि।
'व्यास दास' के प्रभु को सेवत, हारि भई कहु काहि ॥१०॥*

सारंग

धर्म दुर्‌यौ, कलिराज दिखाई।
कोनों प्रगट प्रताप आपुनो, सब विपरीत चलाई॥
धन भौ मीत, धर्म भौ बैरी, पतितन सों हितवाई[1]॥
जोगी जती तपी संन्यासी, व्रत[2] छाँड़्यो अकुलाई।
बरनाश्रम की कौन चलावै, संतन हूँ में आई॥
देखत संत भयानक लागत, भावत[3] ससुर जमाई।
संपति सुकृति सनेह मान चित, ग्रह व्यौहार बड़ाई॥
कियो कुमंत्री लोभ आपुनो, महामोह जु सहाई।
काम क्रोध मद मोह मत्सरा, दीन्हीं देस दुहाई॥
दान लेन कों बड़े पातकी, मचलन को बँभनाई[4]।
लरन-मरन कों बड़े तामसी[5], बारौं कोटि कसाई[6]॥
उपदेसन को गुरू गुसाईं आचरनैं[7] अइमाई।
'व्यासदास' के सुकृत-साँकरे[8] में गोपाल सहाई॥११॥

केदार

भटकत फिरत गौड़[9] गुजरात।
सुखनिधि मथुरा तजि वृन्दावन दामनि[10] कों अकुलात॥
जीवनमूर जहाँ की धूरहि छाँड़त हूँ न लजात।
मुक्ति-पुंज समताहिं[11] न पावत एक कुंज के पात॥

---

१ मित्रता। २ अपना-अपना कर्म। ३ प्यारे। ४ किसी से मुड़-चिरापन से कुछ लेने में ही अब ब्राह्मणत्व रह गया है। ५ क्रोधी। ६ हत्यारे। ७ आचरण में। ८ कष्ट में। ९ बंगाल। १० रुपये-पैसे के लिए। ११ उपमा को!

*अंत समय व्यासजी ने अपने रोते-विलपते हुए पुत्रों को उपदेश करते हुए यह पद कहा था।

जाकौ तक्र[1] सक्र[2] कों दुरलभ ताहि न बूझत बात।
'व्यास', विवेक बिना संसारहिं लूटत हूँ न अघात ॥१२॥

सारंग

जो दुख होत बिमुख[3] घर आये।
ज्यों कारौ[4] लागै कारी निसि, कोटिक बीछी खाये[5] ॥
दुपहर जेठ जरत बारू[6] में, घायन लौन लगाये।
कांटन माँझि फिरै बिन पनहीं, मूड़ै टोला खाये ॥
ज्यों बाँझहि दुख होत सौति कौ सुन्दर बेटा जाये।
देखत ही मुख होत जितौ दुख बिसरत नहिं बिसराये ॥
भटकत फिरत निलज बरजत हीं कूकर ज्यों झहराये[7]।
गारी देत बिलग[8] नहिं मानत, फूलत दमरी[9] पाये।
अति दुख दुष्ट जगत में जेते नैकु न मेरे भाये।
भूलि दरस नहिं कीजौ वाकौ, 'व्यास' वचन बिसराये ॥१३॥

सारंग

सुने न देखे भक्त भिखारी।
तिनके दाम-काम कौ लोभ न, जिनके कुंज-बिहारी ॥
सुक नारद और सिव सनकादिक ये अनुरागी भारी।
तिनकौ मत भागवत न समुझैं सबकी बुधि पचिहारी।
रसना, इन्द्री[10] दोऊ बैरिन, जिनकी अनी,[11] न्यारी[12]।
कहि आहार-बिहार परस्पर वैर करत बिभिचारी ॥
बिषयिनि की परतीति न हरि सों, प्रीति-रीति बाजारी[13]।
'व्यास' आस-सागर में बूड़ै आई[14] भक्ति बिसारी ॥१४॥

---

१ मट्ठा। २ शक्र, इन्द्र। ३ हरि-विमुख। ४ काला; काला सांप। ५ काट लेने पर। ६ जलती हुई बालू। ७ तिरस्कार होने पर भी। ८ बुरा नहीं मानता है। ९ दमड़ी अर्थात् थोड़ा-सा धन पा जाने से कुप्पा-जैसा फूल जाता है। १० इन्द्रिय; यहाँ शिश्नेंद्रिय से तात्पर्य है। ११ नोक। १२ पैनी। १३ लुच्चाई से भरी हुई। १४ अनायास मिली हुई।

जो सुख होत भक्त घर आये।
सो सुख होत नहीं बहु संपति, बाँझहिं बेटा जायें।।
जो सुख होत भक्त-चरनोदक, पीवत गात लगाये।
सो सुख अति सपनेहुँ नहिं पैयतु, कोटिक तीरथ न्हायें।
जो सुख कबहुँ न पैयतु पितु-घर, सुत कौ पूत खिलायें।
सो सुख होत भक्त-बचननि सुनि, नैननि-नीर[1] बहायें।।
जो सुख होत मिलत साधुन सों, छिन-छिन रंग[2] बढ़ायें।
सो सुख होत न नैकु 'व्यास' कों, लंक सुमेरहुँ पायें[1]।।१६।।

सारंग

हरि-विनु को अपनो संसार।
माया-मोह-बँध्यो जग बूड़त काल-नदी की धार।।
जैसे संघट[3] होत नाव में, रहत न पैले पार[4]।।
सुत-संपति-दारा सों ऐसे, बिछुरत लगै न बार।।
जैसे सपने रंक पाय निधि, जाने कछू न सार।
ऐसे छिनभंगुर देही के गरबहिं करत गँवार।।
जैसे अँधरे टेकत डोलत, गुनत न खाइ[5]-पनार[6]।
ऐसे 'व्यास' बहुत उपदेसे, सुनि-सुनि[7] गये न पार।।१६।।

सारंग

कहत सुनत बहुतै दिन बीते, भक्ति न मन में आई।
स्याम-कृपा बिनु साधु-संग बिनु, कहि कौने रति[8] पाई।
अपने-अपने मद-मत भूले, करत आपनी भाई[9]।
'कह्यौ हमारो बहुत करत हैं, बहुतन में प्रभुताई।।'

---

१ प्रेम के आँसू बहाने से। २ प्रेम। ३ साथ। ४ परले पार, उस पार। गड्ढा। ६ नाला। ७ ज्ञानोपदेश सुनकर भी मुक्त नहीं हुए। ८ अनुरक्ति। अपनी मनचाही, मनमुखी बात।

'मैं समझी काहू न समझी, मैं सबहिंन समझाई।
'भोरे'[१] भक्त हुए सब तब के[२], हमरैं बहु चतुराई॥'
'हमहीं अति परिपक्व भये, औरनि कै सबै कचाई[३]।'
कहनि सुहेली[४] रहनि दुहेली[५] बातनि बहुत बड़ाई॥
हरिमंदिर माला धरि गुरु करि, जीवन के दुखदाई।
दया-दीनता-दास-प्रभाव बिनु, मिलें न 'व्यास' कन्हाई॥१७॥

धनाश्री

वृन्दावन साँचे धन भैया।
कनक-कूट[६] कोटिक लगि तजिए, भजिए कुंवर-कन्हैया॥
जहँ श्रीराधा-चरनरेनु की कमला लेति बलैया।
तिनमें गोपी नाच नचावति, मोहन बेनु बजैया॥
कामधेनु कौं छीरसिंधु तजि भजहुँ नन्द की गैया।
चार्‌यौ मुक्ति कहा लै करिहौं, जहाँ जसोदा मैया।
अद्‌भुत लीला, अद्‌भुत वैभव, सत[७] सुकदेव कहैया।
आरत[८] 'व्यास' पुकारत बन में थोरे लोग सुनैया॥१८॥

कान्हरा

परमधन राधे-नाम अधार।
जाहि स्याम मुरली में टेरत, सुमिरत बारंबार॥
जंत्र-मंत्र अरु वेद-तंत्र में, सबै तार कौ तार[९]।
श्रीसुक[१०] प्रकट कियौ नहिं यातें, जानि सार कौ सार॥
कोटिन रूप[११] धरे नँद-नंदन तऊ न पायौ पार।

---

१ भोले, मूर्ख। २ पुराने। ३ कच्चापन। ४ कहना सुन्दर है। ५ रहना दो प्रकार का है। हाथी के दाँत खाने के और होते हैं और दिखाने के और; कपट-भाव। ६ सुमेरु पर्वत। ७ सत्य; सार। ८ दूसरों के हित में आर्त्त। ९ रहस्य का रहस्य। १० श्री...सार। इसी से अधिकारी न पाकर शुकदेवजी ने श्रीमद्भागवत में श्रीराधिकाजी का नाम स्पष्ट रूप से नहीं कहा है। ११ छद्म रूप।

'व्यासदास' अब प्रगट बखानत डारि भार में भार ॥१९॥

साखी

आदि अंत अरु मध्य में, गहि रसिकन की रीति।
संत सबै गुरुदेव हैं, 'व्यासहिं' यह परतीति ॥१॥
'व्यासहिं' ब्राह्मन जिन गनौ, हरि-भक्तन कौ दास।
राधावल्लभ कारनै, सह्यौ जगत-उपहास ॥२॥
'व्यास' न कथनी[1] काम की, करनी[2] है इक सार।
भक्ति विना पंडित वृथा, ज्यों खर चन्दन भार ॥३॥
'व्यास' रसिक सब चलि बसे, नीरस रहे कुबंस[3]।
बक[4]-ठक की संगति भई, परिहरि गये जुहंस ॥४॥
श्रीराधाकर ध्यायकैं, और ध्याइए कौन।
'व्यासहिं' देत[5] बनै नहीं, बरी-बरी-प्रति लौन ॥५॥
'व्यास' बड़ाई लोक की, कूकर की पहिचान।
प्रीति करैं मुख चाटही बैर करैं तनु-हानि ॥६॥
मुहरै मेवा अनत के, मिथ्या भोग-बिलास।
वृन्दावन के स्वपच की, जूठन खैए 'व्यास' ॥७॥
'व्यास' आस करि माँगियो, हरि हूँ हरुवो[6] होय।
'बावन'[7] ह्वै वलि कैं गये, यह जानत सब कोय ॥८॥
नैन न मूँदे ध्यान कों किये न अंगन-व्यास[8]।
नाचि-गाय स्यामहिं मिले, वसि वृन्दावन 'व्यास' ॥९॥
'व्यास' राधिकारमन विनु, कहूँ न पायो सुक्ख।

---

१ कोरा कथन, मौखिक वाद-विवाद। २ शास्त्र-विहित कर्त्तव्य कर्म। ३ बुरे बांस, कुपूत, हरि-विमुख। ४ बगुला। ५ देत. .लौन—एक-एक बड़ी (दाल की बड़ियों) पर नमक डालते नहीं बनता। एक-एक देवता का अलग-अलग पूजन नहीं करते बनता। ६ हलका, तिरस्कृत। ७ विष्णु का बावन अवतार। इसी रूप से भगवान् ने राजा बलि को छला था। ८ संध्या-वंदन के अंगन्यास इत्यादि।

डारन-डारन[1] मैं फिर्‌यौ, पातन-पातन[2] दुक्ख॥१०॥
'व्यास' भक्ति की कुबुद्धि गहि, गुरु गोविन्दहिं मारि।
कै या व्रतहिं निवाहि लै, कै मालादि उतारि॥११॥
मन जो चरननि तर बसै, तनु जो अनत हि जाय।
अस चरननि मन अनतही, ताहि न 'व्यास' पत्याय॥१२॥
प्रेम अतनु या जगत में, जानै बिरलो कोय।
'व्यास' सतनु क्यों परिसिहै, पचि हार्‌यौ जग रोय॥१३॥
अपने-अपने मत लगे, वादि, मचावत सोर।
ज्यों-त्यों सब कौं सेइबो, एकै नन्दकिसोर॥१४॥*
हरि-हीरा निरमोल है, निरधन गाहक 'व्यास'।
ऊँचो फल क्यों पावही चौप करत उपहास॥१५॥
मुख मीठी बातें कहै, हिरदै निपट कठोर।
व्यास कहौं क्यों पाय हैं, नागर नंदकिसोर॥१६॥
'व्यासदास'-सें पतित सो, भृगु[3] कौं पलटौ[4] लेहु।
उन्ह उर दीनों एक पग, तुम दोऊ पग देहु॥१७॥
'व्यास' आस इत जगत की, उत चाहत हिय स्याम।
निलज अधर्म सकुचत नहीं, चाहत है अभिराम॥१८॥

---

१ डाल-डाल पर। २ पत्ते-पत्ते पर। ३ भृगु मुनि; जिन्होंने सर्वश्रेष्ठ धर्म की परीक्षा लेने के लिए विष्णु भगवान् की छाती पर लात मारी थी। ४ बदला। व्यासजी कहते हैं—'हे हरे! भृगु मुनि ने आपके वक्षःस्थल पर एक लात मारी थी। क्या आप उनका बदला लेना चाहते हैं? तो मेरे हृदय पर अपने दोनों चरणों को रखकर बदला चुका लीजिए न, क्योंकि मैं भी भृगु का ही सजातीय ब्राह्मण हूँ' क्या ही अनोखी सूझ है।

* यह दोहा बिहारी-सतसई में भी है। यह नहीं कहा जा सकता कि बिहारी ने इसे अपनी सतसई में रख लिया होगा। संपादकों की भूल से ही ऐसी गड़बड़ी का होना संभव है।

मो मन अटक्यौ स्याम सौं, गड़्यौ रूप में जाय।
चहले[1] परि निकसै नहीं, मनों दूबरी[2] गाय॥१९॥
साधुन की सेवा कियें, हरि पावत संतोष।
साधु-बिमुख जे हरि भजैं, 'व्यास' बढ़ै दिन रोष॥२०॥
स्याम प्रसादहि छ्वै गयो, कौआ गयो बिटारि[3]।
दोऊ पावन 'व्यास' के, कहि भागौत[4] बिचारि॥२१॥
'व्यास' जु रसिकन की रहनि, बहुत कठिन है वीर।
मन आनन्द घटै न छिन, सहत जगत की पीर॥२२॥
सती सूरमा संतजन, इन समान नहिं और।
अगम पंथ पै पग धरैं, डिगै न पावैं ठौर॥२३॥
उपदेस्यौ रसिकन प्रथम, तब पाये हरिबंस।
जब हरिबंस कृपा करी, मिटे 'व्यास' के संस[5]॥२४॥
'व्यास' बड़ाई और की, मेरे मन धिक्कार।
रसिकन की गारी भली, यह मेरौ सिंगार॥२५॥
काहू के बल भजन कौ, काहु के आचार।
'व्यास' भरोसे कुँवरि,[6] के सोवत पाउँ पसार॥२६॥
मोह-माया[7] के फंद बहु, 'व्यासहिं' लीनों घेरि।
श्रीहरिबंस कृपा करी, लीनों मोंको टेरि॥२७॥
'व्यास' आस हरिबंस की तिनहीं के बड़भाग।
वृन्दावन की कुंज में, सदा रहत अनुराग॥२८॥
'व्यास' भक्ति कौ फल लह्यौ, बृन्दावन की धूरि[8]।
श्री हरिबंस-प्रताप तें पाई जीवन-मूरि॥२९॥
मेरे मन आधार प्रभु, श्रीवृन्दावन—चंद।
नितप्रति यह सुमरत रहौं 'व्यासहिं' मन आनन्द॥३०॥

---

१ दलदल। २ दुबली। ३ चोंच मार गया। ४ भागवत। ५ संशय, अविद्या। ६ श्रीराधिका। ७ माया। ८ धूल; रज।

श्रीहरि-भक्ति न जानहीं, माया ही सों हेत।
जीवत ह्वैहैं पातकी, मरिकै ह्वैहैं प्रेत॥३१॥
'व्यास' दीनता के सुखहिं, कह जाने जग मंद[1]।
दीन भये तें मिलत हैं; दीनबन्धु सुख-कंद॥३२॥
बृन्दावन के स्वपच कौ, रहिए सेवक होय।
तासों भेद न कीजिए, पीजै पद-रज धोय॥३३॥
'व्यास' मिठाई विप्र की, तामें लागै आगि[2]।
बृन्दावन के स्वपच की जूठहि खैए माँगि॥३४॥
'व्यास', कुलीननि कोटि मिलि, पंडित लाख पचीस।
स्वपच भक्त की पानहीं[3] तुलैं न तिनके सीस॥३५॥
'व्यास' न व्यापक[4] देखिए, निरगुन परै न जानि[5]।
तव भक्तन हित औतरे, राधावल्लभ आनि॥३६॥

विहाग के पद

विहाग

गौर मुख चंद्रमा की भाँति।
सदा उदित वृन्दावन प्रमुदित, कुमुदित वल्लभ[6] जाति॥
नील निचोल[7] सुहार, गगन में लसति तारिका-पाँति[8]।
झलकत अलक, दसन-द्युति दमकत, मनहुँ किरन कुलकाँति[9]॥
हास-कला कल सरद-सुहाई, तनु छबि चाँदनि राति।
नैन कुरंग निकट सिंहनि-उर, पर अति अनखाति॥
नाह निकट नहिं राहु-बिरह, डरपत शोभा न समाति।
देखत पाप न रहत 'व्यास' दासी-जन ताप बुझाति॥१॥

मलार

आजु कहु कुञ्जनि में बरषा-सी।

---

१ मूर्ख। २ वह चूल्हे में जला दी जाय। ३ जूती। ४ सर्वव्यापी ब्रह्म। ५ अवतार लिया। ६ प्रिय। ७ वस्त्र। ८ ताराओं की पंक्ति। ९ कांति।

बादल-दल[1] में देखि सखी री, चमकति है चपला-सी ॥
नान्हीं-नान्हीं बूँदनि कछु धुरवा[2]-से पवन बहै सुखरासी ।
मन्द-मन्द गरजनि-सी सुनियतु, नाचति मोर सभा-सी ॥
इन्द्र-धनुष बग-पंगति डोलति, बोलति, कोककला-सी ।
इन्द्र बधू[3] छबि छाय रही, मनु गिरि पर अरुन घटा-सी ॥
उमँगि महीरुह[4]-सी महि फूली[5], भली मृगमाला-सी ।
रटति 'व्यास' चातक ज्यों रसना, रस[6] पीवत ही प्यासी ॥२॥*

कल्यान

सुघर राधिका प्रवीन[7] बीना, बर रास रच्यौ
स्याम-सँग वर सुगन्ध तरनि-तनय[8] तीरे।
आनन्दकन्द वृन्दावन सरद मन्द-मन्द पवन,
कुसुम-पुंज ताप-दवन,[9] धुनत कलकुटीरे[10]।
रुनित[11] किंकिनी सुचारु, नूपुर तिमि बलय-हारु[12],
अंग बर मृदंग ताल तरल रंग भीरे।
गावत अति रंग रह्यौ, मोपै नहिं जात, कह्यौ,
'व्यास' रस-प्रवाह बह्यौ निरखि नैन सीरे ॥३॥

सारंग

नृत्यत नागर नटवर बपु धरि सुख-सागरहिं बढ़ावत।
सरद सुखद निसि ससि गोरंजित[13] वृन्दावन उपजावत।
ताल लिये गोपाललाल सँग ललिता मृदँग बजावति।
हरिबंसी-हरिदासी गावति, सुघर[14] रबाब[15] बजावति ॥

---

१ घन-घटाएँ। २ मेघ। ३ बीरबहूटी। ४ वृक्ष। ५ प्रसन्नता से हरी-भरी हो गई। ६ आनन्दामृत। ७ वीणा बजाने में चतुर। ८ सूर्य-पुत्री, यमुना। ९ दमन; नाश करने वाला। १० कुटी या कुंज में। ११ शब्दायमान। १२ हाथों में पहिनने के कड़े। १३ गाय के खुरों से उड़ी हुई धूल से कुछ-कुछ धुंधला-सा। १४ चतुर। १५ वाद्य विशेष।

* इस पद में प्रकृति-श्री का क्या ही सजीव चित्रण है !

मिश्रित धुनि सुनि खग-मृग मोहित जमना[1] जल न बहावति।
लेत तिरपि विगलित माला तित कुसुमावलि बरसावति॥
जय जय साधु करति हरि सहचरि, 'व्यास' चिराक[2] दिखावति॥४॥

केदारा

पिय कों नाचन सिखवति प्यारी।
वृन्दावन में रास रच्यौ है, सरद-इन्दु-उजियारी॥
मान गुमान लकुट लियें ठाढ़ी डरपत कुञ्जबिहारी।
'व्यास' स्वामिनी की छबि-निरखति,हँसि-हँसि दै करतारी॥५॥

रास-पंचाध्यायी*

त्रिपदी छन्द

निठुर बचन जिनि बोलहु नाथ, निज दासी जिनि करहु अनाथ;
रास-रसिक गुन गाइहौं।
नव कुंकुम-जल बरसत जहाँ, उड़त कपूर-धूर[3] जहँ-तहाँ,
और फूल-फल को गनै?
तहाँ स्यामघन रासहि रच्यौ, मरकत[4] मनि कंचन सों खच्यौ;
सोभा कहति न आवई॥
चारु मण्डली जुवतिन बनी; द्वै-द्वै बिच आये हरि धनी[5];
अद्भुत कौतुक प्रगटि कियौ।
पद पटकति लटकति लट, बाहु, भौंहन मटकति हँसति उछाहु,
अंचल चंचल झूमका॥

---

१ स्थिर होकर यमुना भी रास देख रही हैं। २ दीपक। ३ कपूर का चूर्ण। ४ मरकत...सच्यौ नीलम मणि के समान श्रीकृष्ण कंचनवर्ण गोपियों के साथ शोभायमान ो रहे हैं। ५ प्यारे।

*संग्रहकर्त्ताओं की भूल से व्यासजी की यह 'रासपंचाध्यायी' सूर सागर में रख दी गयी है। इसकी रचना भी सूरदास की रास-विहार विषयक रचना से कुछ कम नहीं; और कदाचित् इसी से 'सूरसागर' के संपादकों को ऐसा करने में भ्रम हो गया।

मन कुंडल ताटंक बिलोल,[1] मुख सुखरासि कहै मृदु बोल;
गंडल[2] मंडित स्वेदकन ॥
बिलुलित[3] माला, बिगलित[4] केस, घूमत, लटकत भृकुट बिसेस;
कुसुम खसैं सिर तें घनैं।
हरषित बैनु बजायो छल, चंदहिं[5] बिसरी घर की गैल,
तारागन मन में लजैं ॥
मोहनि-धुनि बैकुंठहि गयी, नारायन मन प्रीति जु भयी,
कमला सों बोले बचन—
"कुन्जबिहारी बिहरत देखि, जीवन जनम सुफल करि लेखि;
यह सुख हमकों हैं कहाँ ?*
श्रीबृन्दावन हमतें दूरि, कैसेकरि उड़ि लागै धूरि;
रास-रसिक गुन गाइहौं ॥"
धुनि कोलाहल दस दिसि जाति, कल्प समान भयौ सुखराति;
जीव-जंतु मुदमंत सब ॥
उलटि बह्यौ जमुना कौ नीर, बालक-बच्छ न पीवत खीरु[6];
राधारमन-ठगे[7] सबै।
गिरिवर तरुवर पुलकित गात, गोगन-थन तें दूध चुचात[8];
सुनि खग-खग मुनिव्रत[9] धर्‌यौ॥१॥

---

१ चंचल, हिलता हुआ। २ गालों का ऊपरी भाग। ३ हिलती हुई, उरझी हुई। ४ बिथुरे हुये। ५ चंदहि...गैल चंद्रमा स्थिर हो गया। ६ दूध। ७ मोहित कर लिये। ८ चू रहा है। ९ आनन्द के मारे विदेह से हो गये; समाधिस्थ हो गये।

* भक्ति-पक्ष में वैकुण्ठ-वासी नारायण और लक्ष्मी से गोलोक वृन्दावनवासी श्रीकृष्ण और श्रीराधिका परे हैं। नारायण और लक्ष्मी श्रीकृष्ण और राधिका के अंशावतार कहे जाते हैं। अतः यह नित्यविहार का आनन्द-लाभ उन्हें कहाँ ?

कह्यौ भागवत में अनुराग, कैसें समुझैं बिनु बड़भाग;
श्रीगुरु सुक जु कृपा करी॥
'व्यास' आस करि बरन्यौ रास; चाहत हौं वृन्दावन-वास;
करि राधे, इतनी कृपा॥
निज दासी अपनी करि मोहिं, नितप्रति स्यामा सेऊँ तोहिं;
नव निकुन्ज-सुख-पुन्ज में॥
हरिबंसी[1] हरिदासी[2] जहाँ, मोहिं करुना करि राखौ तहाँ;
नितबिहार-आधार दै।
कहत-सुनत बाढ़ै रसरीति, स्रोतहिं बकतहिं हरिपद-प्रीति;
रास-रसिक गुन गाइहौं॥२॥*

---

१ श्रीराधावल्लभीय सहचरी। २ टट्टी संस्थानीय सहचरी।

* व्यासजी श्रीहितहरिवंश और स्वामी हरिदास को समभक्ति से देखते थे। उनकी दृष्टि में संकीर्ण सांप्रदायिक भेदभाव के लिए स्थान नहीं था।

कृष्णदास

छप्पय

श्री बल्लभगुरु-दत्त भजन-सागर गुन-आगर।
कवित्त तोष, निर्दोष, नाथ-सेवा में नागर॥
बानी बंदित विदुष सुजस गोपाल अलंकृत।
ब्रजरत अति आराध्य वहै धारी सर्वसु चित॥
सान्निध्य सदा हरिदास-वर, गौर-स्याम दृढ़-व्रत लियौ।
गिरिधरन रीझि कृष्णदास से नाम माँझ साझो दियौ॥

—नाभाजी

महात्मा कृष्णदासजी गोस्वामी श्रीवल्लभाचार्य जी के शिष्य थे। गोसाईं विट्ठलनाथ जी ने इनकी भी 'अष्टछाप' में गणना की है। इनकी कविता, सूरदास और नन्ददास की रचनाओं को छोड़कर 'अष्टछाप' में सर्वोत्कृष्ट मानी जाती है। यह यद्यपि जाति के शूद्र थे, तथापि श्रीवल्लभाचार्यजी के परम कृपापात्र होने के कारण, यह श्रीनाथजी के मन्दिर के प्रथम प्रबन्धकर्त्ता नियुक्त किये गये। इनका जन्म संवत्, श्रीनाथद्वारा के नित्य कीर्त्तन के अनुसार, १५९० माना जाता है। '८४ वैष्णवन की वार्त्ता' में इनका विस्तृत जीवन-चरित्र आया है। लिखा है, कि एक बार गोसाईं विट्ठलनाथजी से रुष्ट होकर इन्होंने श्रीनाथ जी के मन्दिर में उनकी डेवढ़ी बन्द कर दी। इस बात पर गोसाईंजी के कृपापात्र महाराज बीरबल ने कृष्णदास जी को कैद कर लिया। गोसाईंजी भला इस कार्यवाही से संतुष्ट हो सकते थे? उन्हें एक परमभक्त के बन्दी हो जाने से इतना कष्ट हुआ कि अन्न-जल तक छोड़ दिया। यह देखकर बीरबल ने कृष्णदास को कारागार से मुक्त कर दिया। गोसाईंजी ने पुनः इन्हें मन्दिर का प्रबन्ध कार्य सौंप दिया।

श्रीकृष्णदास ने श्रीराधाकृष्ण के विशुद्ध शृंगार का स्वरचित पदों में बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। इनका कोई ग्रंथ नहीं मिलता। हमने 'कृष्णदास जू कौ कीर्तन' नामक एक हस्तलिखित संग्रह देखा है। उसमें इनके १२५ पद हैं। इनकी कविता बड़ी ही सरस और भावमयी है। कहते हैं, यह सूरदासजी से अपनी कविता के सम्बन्ध में लागडाँट करते थे। इनका गोलोकवास संवत् १६६५ के लगभग हुआ।

देवगंधार

जब तें स्याम-सरन हौं पायो।
तब तें भेंट भई श्रीबल्लभ,[1] निज पति[2] नाम बतायो॥
और अविद्या[3] छाँड़ि मलिनमति, स्रुतिपथ आइ दृढ़ायो।
'कृष्णदास' जन चहुँ जुग खोजत, अब निहचैमन आयो॥१॥

बिलावल

बाल-दसा गोपाल की सब काहू प्यारी।
लै-लै गोद खिलावहीं जसुमति महतारी॥
पीत झँगुलि[4] तन सोहही, सिर कुलहि[5] बिराजै।
छुद्रघंटिका[6] कटि बनी पायँ नूपुर बाजै॥
मुर-मुरि नाचैं मोर-ज्यौं, पुर-नर-मुनि मोहैं।
'कृष्णदास' प्रभु नंद के आँगन में सोहैं॥२॥

बिभास

रास-रस गोविंद करत बिहार।
सूर-सुता[7] के पुलिन रम्य महँ, फूले कुंद-मँदार॥

---

१ यह आचार्यवर विष्णुस्वामी सम्प्रदाय की परंपरा में हुए हैं। आपने दाक्षिणात्य होकर भी ब्रजभाषा का अतुल उपकार किया। शुद्धाद्वैत-मत का प्रतिपादन कर आचार्यवर ने मायावाद का खंडन किया। २ जीव के भर्त्ता श्रीकृष्ण। ३ माया; हेरफेर का ज्ञान। ४ बच्चों का कुरता; अलफा। ५ टोपी। ६ करधनी। ७ सूर्य-पुत्री, यमुना।

अद्‌भुत सतदल[1] बिगसित कोमल, मुकुलित कुमुद कल्हार[2]।
मलय-पवन बह सारलदि[3] पूरनचन्द मधुप झंकार॥
सुघरराय[4] संगीत-कलानिधि, मोहन नंदकुमार।
ब्रजभामिनि-सँग प्रमुदित नाचत, तन चरचित घनसार[5]॥३॥

ललित

इहि मन कैसेकै रहै राख्यौ।
जिहि मधुकर ह्वै गिरधर पिय कौ बदन कमल-रस[6] चाख्यौ॥
जु कछुक मैं मानी बरबस ह्वै ताही कौ सो साख्यौ[7]।
बारबार बहु-बिधि समुझायौ ऊँचो[8]-नीचो भाख्यौ[8]॥
केहुँ[9] न मानत महाहठीलौ, कही तुम्हारी आख्यौ[10]।
'कृष्णदास' कहँलौ हौं बरनौं, रूपमधुर-मधु चाख्यौ॥४॥

नट

गौपाल देखन किन[11] आई री।
आजु बने गोबिंद मानिनी, तोकों लैन पठाई री।
तरनि-तनया-पुलिन बिमल सरद निसि जन्हाई[12] री।
राकापति-कर-रंजित द्रुमलता भूमि सुहाई री॥
गोबर्द्धन-धरन-लाल गान सों बुलाई री।
'कृष्णदास' प्रभु सों मिलन जुवतिनि सुखदाई री॥५॥

बिभास

आजु पिय सों तू मिली री, मानो।
स्रमजलकन भरि बदन की शोभा, निरखि नभसि[13] उडुराज खिसानो[14]॥

---

१ सौ पंखड़ीवाला कमल। २ पुष्प विशेष। ३ शरद ऋतु की। ४ निपुण-शिरोमणि। ५ कपूर। ६ पराग। ७ साक्षी। ८ साम, दाम, दंड, भेद, सब तरह से समझाया। ९ किसी भी तरह। १० उल्लंघन कर गया। ११ क्यों नहीं। १२ चाँदनी। १३ आकाश में। १४ अपने को निस्तेज-सा समझकर चन्द्रमा मन-ही-मन कुढ़ गया।

त्रिभुवन-जुवतिन कौ सुख-सरबसु, जानति हौं तुव माँझ समानो ॥
'कृष्णदास' प्रभु रसिक-मुकुट-मनि, सुबस कियो गोवर्द्धन-रानो[१] ॥६॥

गौरी

मो मन गिरिधर-छबि अटक्यौ।
ललित त्रिभंग चाल पै चलिकै, चिबुक चा गड़ि ठटक्यौ[२] ॥
सजल श्यामघन-बरन लीन है, फिरि चित अनत न भटक्यौ।
'कृष्णदास' किये प्रान निछावर, यह तन जग सिर पटक्यौ[३] ॥७॥*

---

१ राजा। २ ठिठक गया, ठहर गया। ३ इस क्षणभंगुर शरीर को संसार के हवाले कर दिया।

*कहते हैं इसी पद को गाते-गाते कृष्णदासजी ने अपना शरीर छोड़ दिया था।

परमानन्ददास

छप्पय

ब्रज-लीलामृत-रसिक, रुचिर पद-रचना-नेमी।
गिरिधारन श्रीनाथ-सखा, बल्लभ-पद-प्रेमी।।
ब्रज-रस मधुकर मत्त, भक्त, भावुकता-भूषन।
कविता रस-संबलित, नाहिं जामें कछु दूषन।।
नित रहत प्रेम में रँगमगी, ब्रजबल्लभ के पास।
सुचि अष्टछाप की भक्तिकवि, श्री परमानन्ददास।।

—वियोगी हरि

'चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता' में श्री परमानन्ददासजी की कथा आई है। 'अष्टछाप' में इनकी भी गणना की गई है। आचार्य महाप्रभुजी के यह शिष्य थे और सूरदासजी के गुरुभाई। यह कन्नौज निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। श्री वल्लभाचार्यजी के यह भारी कृपापात्र थे। इनकी कविता सुनकर आचार्य देव प्रेमोन्मत्त हो जाते थे। वात्सल्य और प्रेम का तो परमानन्ददास ने बड़ा ही सुन्दर और सजीव चित्रण किया है। सुनते हैं, इनका रचा हुआ एक ग्रंथ 'परमानन्द-सागर' है। साहित्यान्वेषकों को उस ग्रंथ-रत्न को अवश्य प्रकाश में लाना चाहिए। 'मिश्रबन्धुविनोद' के अनुसार इनका रचना-काल संवत् १६०६ के लगभग माना जाता है। 'परमानन्ददासजी का पद', 'दान-लीला' और 'ध्रुव-चरित्र' नाम के इनके ग्रंथ खोज में मिले हैं। नीचे इनके कुछ पद उद्धृत किये जाते हैं—

कहा करौं बैकुंठहिं जाय।
जहँ नहिं नन्द जहँ न जसोदा, जहँ नहिं गोपी ग्वाल न गाय।

जहँ नहिं जल जमुना कौ निरमल, और नहीं कदमन[1] की छाय[2]।
'परमानन्द' प्रभु चतुर ग्वालिनी, ब्रजरज तजि मेरी जाय बलाय ॥१॥

ब्रज के बिरही लोग बिचारे।
बिनु गोपाल ठगे-से ठाढ़े, अति दुर्बल तन हारे[3] ॥
मात जसोदा पंथ निहारत, निरखत साँझ-सकारे।
जो कोई कान्ह-कान्ह कहि बोलत, आँखिन बहत पनारे ॥
यह मथुरा काजर की रेखा, जे निकसे ते कारे[4]।
'परमानन्द' स्वामी बिनु ऐसे, ज्यों चंदा बिनु तारे ॥२॥

कौन रसिक[5] है इन बातन कौ।
नंद-नँदन बिनु कासों कहिए, सुनि री सखी, मेरे दुखिया मन कौ ॥
कहाँ वे जमुना-पुलिन मनोहर, कहाँ वह चंद सरद रातन कौ।
कहाँ वे मंद सुगंध कमल रस, कहाँ षट्पद जलजातन[6] कौ ॥
कहाँ वो सेज पौढ़ियो बन कौ, फूल बिछौना मृदुपातन[7] कौ ॥
कहाँ वे दरस-परस 'परमानन्द', कोमल तन कोमल गातन कौ ॥

माई, को मिलिबै नन्दकिसोरै।
एक बार को नैन दिखावै मेरे मन के चोरै ॥
जागत जाय गनत नहिं खूटत,[8] क्यों पाऊँगी भोरै[9]
सुनि री सखी, अब कैसे जीजै, सुनि तमचुर खग-रोरै[10]
जो यह प्रीति सत्य अंतरगत जिन काहू बन होरै।
'परमानन्द' प्रभु आनि मिलैंगे, सखी सीस जिनि ढोरै[11] ॥४॥

मोहन नन्दराय-कुमार।
प्रगट[12] ब्रह्म निकुंज-नायक, भक्तिहित अवतार ॥
प्रथम चरन-सरोज बंदौं, स्यामघन गोपाल।

---

१ कदंब वृक्षों का। २ छाया। ३ निराशा। ४ काले, कपटी। ५ ग्राहक। ६ कमलों पर मँडराता हुआ। ७ पत्तों का। ८ घींचता है। ९ सबेरे का। १० शब्द को। ११ मत्त धुन, दुःख न कर। १२ प्रत्यक्ष है।

मकर कुंडल गंड[1]-मंडित, चारु नैन बिसाल ॥
सहित श्री बलराम लीला, ललित सों करि हेत[2]।
दास 'परमानन्द' प्रभु हरि, निगम बोलत नेत[3] ॥५॥
माई[4] री, कमलनैन स्यामसुन्दर, झूलत है पलना ॥
बाल-लीला गावत, सब गोकुल की ललना ॥
अरुन तरुन कमल नख-मनि जस जोती।
कुंचित[5] कच मकराकृत लटकत गज-मोती ॥
अँगुठा गहि कमलपानि मेलत मुख माहीं।
अपनी प्रतिबिम्ब देखि पुनि-पुनि मुसुकाहीं ॥
जसुमति के पुन्य-पुञ्ज बार-बार लाले[6]।
'परमानंद' प्रभु गोपाल सुत-सनेह पाले ॥६॥
जसोदा, तेरे भाग्य की कही न जाय।
जो मूरति ब्रह्मादिक-दुर्लभ, सो प्रगटे हैं आय ॥
सिव नारद सुक-सनकादिक मुनि मिलिवे कों करत उपाय।
ते नँदलाल धूरि-धूसरि बपु रहत गोद लपटाय ॥
रतन-जड़ित पौढ़ाय पालने, बदन देखि मुसुकाय।
झलौ लाल, जाऊँ बलिहारी, 'परमानंद' जसु गाय ॥७॥

हरि, तेरी लीला की सुधि आवै।

कमल नैन मन-मोहनि मूरति, मन-मन[7] चित्र बनावै।
बारक[8] मिलत जात माया करि, सो कैसें बिसरावै।
मुख मुसिकान, बंक अवलोकनि, चाल मनोहर भावै ॥
कबहुँक निविड़तिमिर आलिंगन, कबहुँक पिक सुर गावै।
कबहुँक संभ्रम 'क्वासि-क्वासि[9]' कहि-कहि सँगही उठि धावै ॥

---

१ कपोल का ऊपरी भाग। २ प्रेम। ३ वेद, जिसके संबंध में 'नेति-नेति' कहते हैं। ४ सखी। ५ घुंघराले बाल। ६ प्यार किये। ७ मन-चाहे। ८ एक बार। ९ कहाँ हो ? कहाँ हो ?

कबहुँक नन मूँदि, अंतरगत,[१] मनि-माला पहिरावै।
'परमानंद' प्रभु स्याम ध्यान करि, ऐसें बिरह जगावै ॥८॥

माई री, हौं आनँद गुन गाऊँ।
गोकुल की चिंतामनि[२] माधो जो माँगौं सो पाऊँ।
जब तें कमलनैन ब्रज आये, सकल संपदा बाढ़ी।
नन्दराय के द्वारे देखौं अष्टमहासिधि ठाढ़ी ॥
फूलै-फलै सदा बृन्दावन कामधेनु दुहि दीजै।
माँगत मेघ इन्द्र बरषावै, कृष्ण-कृपा-सुख लीजै।
कहति जसोदा सखियनि आगे, हरि-उत्कर्ष[३] जनावै।
'परमानन्ददास' कौ ठाकुर मुरलि मनोहर भावै ॥९॥

गावति गोपी मधु[४] ब्रज-बानी।
जाके भवन बसत त्रिभुवन-पति, राजा नन्द जसोदा रानी।
गावत वेद, भारती गावति, गावत नारदादि मुनि ग्यानी।
गावत गुन गंधर्व काल सिव गोकुलनाथ-महातम जानी ॥
गावत चतुरानन, सुर-नायक, गावत सेषसहस-मुखरास।
मन क्रम बचन प्रीति पद-अम्बुज, गावत 'परमानंददास' ॥१०॥

भली यह खेलिबे की बानि।
मदन गुपाल लाल काहू की नाहिंन राखत कानि[५] ॥
अपने हाथ लै लेत हैं सबहिन दूध दही घृत सानि।
जो बरजौ तौ आँख दिखावै, परधन को दिनदानि[६] ॥
सुनि री जसोदा, सुत के करतब पहले माँट[७] मथानि।
फोर डारि दधि डार अजिर[८] में, कौन सहै नित हानि ॥
ठोढ़ो देखत नन्दजू की रानी, मूँदि कमल मुख पानि।

---

१ हृदय में, ध्यान में। २ स्वर्ग की मणि, जो सब कामनाओं को पूर्ण कर देती है। ३ महत्त्व। ४ मधुर। ५ शील। ६ नित्य दान देने वाला महादानी। ७ दही बिलोने का मिट्टी का बड़ा बरतन। ८ आँगन।

'परमानन्ददास' जानत हैं, बोलि बूझि धौं आनि ॥११॥

आये मेरे नंदनन्दन के प्यारे[1]।
माला तिलक मनोहर बानो,[2] त्रिभुवन के उँजियारे[3]।
प्रेम समेत बसत मन-मोहन, नैकहुँ टरत न टारे।
हृदय-कमल के मध्य बिराजत, श्रीब्रजराज-दुलारे॥
कहा जानौं कौन पुन्य प्रकट भयौ, मेरे घर जो पधारे।
'परमानंद' प्रभु करी निछावरि, बार-बार हौं वारे॥१२॥

---

१ श्रीकृष्ण के भक्त संतजन। २ चिह्न। ३ तीन लोक को ज्ञान और भक्ति से प्रकाशित करनेवाले।

कुंभनदास

छप्पय

श्री गोवर्द्धन-धरन-सुहृद, प्रेमामृत-सागर।
श्री बल्लभ-पद-मधुर सुपद-रचना में आगर॥
लोक और परलोक-रीति तिनका-ज्यौं तोरी॥
समाटहुँ दै पीठि, दीठि गोविन्द सों जोरी॥

श्री गिरिधर 'अष्ट सखान' में थप्पौ नाम है जास।
मनु मूर्तिवंत रस-कुंभ सों पूरन कुंभनदास॥

—वियोगी हरि

श्रीकुंभनदासजी की भी कथा 'चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता' में है। 'अष्टछाप' में इनकी भी गणना है। यह महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य के शिष्य थे। बड़े ही त्यागी और भजनानंदी संत थे। भक्त-कवि तो थे ही, गायक भी ऊँचे दरजे के थे। इनका कविता-काल संवत् १६०६ के लगभग माना जाता है।

वार्त्ता में कुंभनदास जी का निवास-स्थान गोवर्द्धन के समीप जमुनावती गाँव लिखा है। पारासोली चंद्रसरोवर के समीप यह खेती किया करते थे। इन्हें 'गोरवा' जाति का लिखा है। यह ग्वाल का काम करते थे। श्रीनाथ जी के अनन्य सखाओं में कुंभनदासजी की गणना की गई है। इनकी कविता भावमयी और रसभरी है, यद्यपि 'मिश्रबन्धुविनोद' में इन्हें 'साधारण कोटि' का ही कवि माना गया है। नीचे इनके थोड़े-से पद दिये जाते हैं:—

देखिहौं, इन नैननि।
सुंदर स्याम मनोहर मूरति, अंग-अंग सुख-दैननि[1]॥
वृन्दावन-विहार दिन-दिनप्रति गोप-वृन्द सँग लैननि।
हँसि-हँसि हरषि पतोवनि[2] पावन बाँटि-बाँटि पय-फैननि[3]॥
'कुंभनदास', किते दिन बीते, किये रेनु सुख-सैननि।
अब गिरधर बिनु निसि अरु बासर, मन न रहतु क्यों[4] चैननि॥१॥

हिलगनि[5] कठिन है या मन की।
जाके लियैं देखि मेरी सजनी, लाज गई सब तन की।
धरम जाव अरु लोग हँसौ सब, गावौ मिलि कुलगारी[6]।
सो क्यों रहै ताहि बिन देखे, जो जाकौ हितकारी॥
निमिष न छाँड़त रस-लुब्धक ज्यौं, वह अधीन मृग-गानो[7]।
'कुंभनदास' सनेह परम[8] श्रीगोवर्द्धनधर जानो॥२॥

आवत मोहन मन जु हरचो है।
हौं गृह अपने सचु[9] सो बैठी, निरखि बदन सर्बसु बिसर्यो है॥
रूप-निधान, रसिक नँदनंदन, उमँग्यो हिय धीरज न धर्यो है।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धनधर, अँग-अँग प्रेम-पीयूष भर्यो है॥३॥

केते दिन जु गये बिनु देखैं।
तरुन किसोर रसिक नँद-नंदन, कछुक उठति मुख रेखैं॥
वह सोभा, वह कांति बदन की, कोटिक चंद बिसेखैं।
वह चितवन, वह हास मनोहर, वह नटवर बपु भेखैं॥
स्यामसुंदर-सँग मिलि खेलन की आवति हिये अपेखैं[10]॥
'कुंभनदास' लाल गिरधर बिनु जीवन जनम अलेखै[11]॥४॥

---

१ सुख देनेवालों को। २ पत्तों पर। ३ फेन उठता हुआ धारोष्ण दूध। ४ किसी भी तरह। ५ प्रीति, लगन। ६ कुल-कलंक। ७ नाद। ८ परम-प्रेम-स्वरूप। ९ सुख, शांति। १० स्मृतियाँ। ११ व्यर्थ ही।

संतन[१] कौ कहा सीकरी काम।
आवत[२]-जात गन्हैयाँ टूटीं, बिसरि गयौ हरि-नाम।।
जाकौ मुख देखैं दुख लागै, ताको करिबे परी सलाम।
'कुंभनदास' लाल गिरधर बिन और सब बेकाम।।५।।

---

१ संतन...काम='वैष्णवन की वार्ता' में लिखा है कि एक बार श्रीकुंभनदासजी को अकबर बादशाह ने फतेहपुर सीकरी इनका गायन सुनने के लिए बुलवाया। वह गए तो, पर वहाँ जाना इन्होंने समय नष्ट करना ही समझा। उसी प्रसंग का यह पद है। २ आवत...टूटीं—आना-जाना व्यर्थ हुआ।

रसखानि

छप्पय

दिल्लीनगर निवास, बादसा-बंस बिभाकर।
चित्र देखि मन हरो, भरो पन-प्रेम-सुधाकर।।
श्रीगोवर्द्धन आय जबै दरसन नहिं पाये।
टेढ़े-मेढ़े बचन-रचन निर्भय ह्वै गाये।।
तब आप आय सुमनाय करि सुश्रूषा महमान की।
कवि कौन मिताई कहि सकै, श्रीनाथ-साथ रसखान की।।

—गोस्वामी राधाचरण

वैष्णव-प्रवर रसखानिजी दिल्ली के एक पठान मुसलमान थे। इन्होंने अपने को बादशाही खानदान का बतलाया है, जैसा कि नीचे के दोहे से प्रकट होता है:—

देखि गदर, हित साहिबी, दिल्ली नगर मसान।
छिनहिं बादसा-बंस की ठसक छाँड़ि रसखान।।

—प्रेम बाटिका

कुछ लोग इन्हें सैयद इब्राहीम पिहानीवाले समझते हैं, पर '२५२ वैष्णवन की वार्त्ता' में इनकी चर्चा नहीं है। यदि होता, तो स्वयं रसखानिजी दिल्ली और पठान के स्थान पर पिहानी और सैयद लिखते। पिहानीवाले सैयद इब्राहीम उपनाम 'रसखानि' एक दूसरे ही कवि थे।

यह गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के कृपापात्र शिष्य थे। इनका जन्म संवत् १६१५ के लगभग माना जाता है। इन्होंने संवत् १६७१ में 'प्रेम-बाटिका' लिखी थी, जो उसके इस दोहे से प्रकट होता है:—

विधु सागर, रस इन्दु सुभ, बरस, सरस 'रसखानि'।
'प्रेम-बाटिका' रचि रुचिर, चिर हिय हरषि बखानि॥

इनकी युवावस्था सम्बन्धी कई आख्यायिकाएँ प्रचलित हैं। (२५२ वैष्णवन की वार्ता) में लिखा है कि यह एक बनिये के सुन्दर लड़के पर आशिक हो गये थे। उसकी जूठन तक खाया करते थे। एक दिन चार वैष्णवों ने आपस में बात करते हुए कहा कि भगवान् में ऐसा प्रेम लगाना चाहिए जैसा कि रसखानि का उस बनिये के लड़के पर है। यह बात राह चलते रसखानि ने सुन ली। उनके पूछने पर कि भगवान् का रूप कैसा है, वैष्णवों ने उन्हें श्रीनाथ जी का एक चित्र दिखाया। चित्रपट की छवि देखते ही इनका मन उस लड़के की ओर से हट गया। श्रीनाथजी को खोजते-खोजते आप विह्वल दशा में गोकुल चले आये। इनका उत्कट वैराग्य और सच्ची लगन देखकर गोसाईं विट्ठलदासजी ने अन्यधर्मी और विजातीय का विचार छोड़कर, इन्हें अपना लिया। कहते हैं, रसखानिजी श्रीनाथजी के प्रेम में ऐसे रँग गये थे कि भावावेश में आप नित्य गोपाललाल के साथ गाएँ चराने जाया करते थे।

एक आख्यायिका यह भी प्रचलित है कि यह जिस स्त्री पर आसक्त थे, वह बड़ी अभिमानिनी और रूपगर्विता थी। वह सदा इनके प्रेम का अनादर करती थी। एक दिन वह श्रीमद्भागवत का फारसी उल्था पढ़ रहे थे। उसमें गोपियों के विरह का प्रसंग आया। उसे पढ़कर इनके मन में आया कि जिस नंद के फरजंद पर हजारों हसीन गोपियाँ जान दे रही हैं, उसी रसिकलाल से इश्क क्यों न जोड़ा जाय? बस, इसी भक्ति-भावना में मस्त होकर उस स्त्री को छोड़ दिया और वृन्दावन चले आये। इस प्रसंग पर आप लिखते हैं:—

तोरि मानिनी तें हियो, फोरि मोहिनी-मान।
प्रेमदेव की छबिहिं लखि, भये मियाँ रसखानि॥

—प्रेन-बाटिका

जो हो, इसमें संदेह नहीं, कि यह प्रेम का पूरा-पूरा लुत्फ उठा चुके

थे। इश्कमजाजी को इन्होंने इश्कहक्रीकी की तरफ मोड़ दिया, संसारी प्रेम को दिव्य-प्रेम में परिणत कर दिया। और सचमुच 'रसखानि' हो गये।

इन्होंने मुसलमान होते हुए भी, ब्रजभाषा में बड़ी ही उत्तम कविता रची। इनकी कविता में शब्दाडंबर शायद ही कहीं हो। उसमें प्रसाद और भाव-गांभीर्य कूट-कूट कर भरा हुआ है। 'सवैया' इनका इतना टकसाली और रसपूर्ण है कि उसका दूसरा नाम 'रसखानि' पड़ गया है। इनकी दो पुस्तकें स्वर्गीय पंडित किशोरीलाल जी गोस्वामी ने प्रकाशित की थीं। एक 'सुजान-रसखान' और दूसरी 'प्रेम-बाटिका'। सुजान-रसखान में १५९ पद्य हैं, जिनमें कुछ दोहे-सोरठे छोड़कर, शेष सवैये और घनाक्षरी हैं। श्री लाला भक्तराम द्वारा संगृहीत 'राग-रत्नाकर' में भी इनके लगभग १३० सवैये और कवित्त हैं। हमें 'सुजान-रसखान' और 'राग-रत्नाकर' का ही पाठ अधिक शुद्ध जान पड़ता है। 'प्रेम-बाटिका' में प्रेम-परिपूरित ५२ दोहे हैं। प्रेम और भक्ति का जैसा सजीव और सुन्दर चित्र रसखानि ने खींचा है कदाचित् ही वैसा किसी अन्य कवि ने खींचा हो। इनके कुछ पद्य नीचे दिये जाते हैं:—

सुजान-रसखान

सवैया

मानुष हौं, तो वही रसखानि, बसौं ब्रज-गोकुल-गाँव के ग्वारन[१]।
जो पसु हौं तो कहा बसु मेरो, चरौं नित नन्द की धेनु मँझारन[२]॥
पाहन हौं तो वही गिरि को, जो धर्‌यौ कर छत्र पुरंदर[३] धारन।
जो खग हौं, तो बसेरो करौं, मिलि कालिंदी-कूल-कदंब की डारन॥१॥

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर कौ तजि डारौं।
आठहुँ सिद्धि नवों निधि कौ सुख नंद की गाइ चराइ बिसारौं॥
आँखिन सों 'रसखानि' कबौं ब्रज के बन-बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिक ही कलधौत के धाम, करील[४] की कुंजन ऊपर वारौं॥२॥

---

१ ग्वालों के बीच। २ बीच में। ३ इन्द्र। ४ काँटेदार एक वृक्ष; ब्रज-प्रान्त में यह बहुत अधिकता से होता है।

मोर-पखा सिर ऊपर राखिहौं, गुंज की माल गरें पहिरौंगी।
ओढ़ि पितंबर, लै लकुटी बन, गोधनि ग्वारिन संग फिरौंगी॥
भाव तो वाहि मेरो 'रसखानि', सो तेरे कहे सब स्वांग भरौंगी।
या मुरली मुरलीधर की, अधरान-धरी अधरा न धरौंगी*॥३॥
गावैं गुनी गनिका गंधर्व, और सारद सेस सबै गुन गावैं।
नाम अनन्त गनन्त गनेश ज्यों ब्रह्मा त्रिलोचन पार न पावैं॥
जोगी जती तपसी अरु सिद्ध, निरंतर जाहिं समाधि लगावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया[1] भरि छाछ[2] पै नाच नचावैं॥४॥
सेस महेश गनेश दिनेस, सुरेसहुँ जाहि निरंतर गावैं।
जाहि अनादि अनन्त अखंड, अछेद[3] अभेद सुबेद बतावैं॥
नारद-से सुक व्यास रटैं, पचि हारे तऊ[4] पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ, छछिया भरि छाछ पर नाच नचावैं॥५॥
धूरि-भरे अति सोभित स्यामजू, तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।
खेलत-खात फिरैं अँगना, पग पैंजनी बाजतीं, पीरी कछौटी[5]॥
वा छवि को 'रसखानि' बिलोकत, बारत काम-कलानिधि[6] कोटी[7]।
काग के भाग कहा कहिए, हरि-हाथ तें लै गयौ माखन रोटी॥६॥
आयो हुतो नयरे[8] 'रसखानि', कहा कहूँ तूं न गई वह ठैया[9]।
या ब्रज में सिगरी बनिता, सब वारति प्राननि, लेति बलैया॥
कोऊ न काहू की कानि करै, कछु चेटक सों[10] जू कर्‌यो जदुरैया।
गाइगो तान, जमाइगो नेह, रिझाइगो प्रान, चराइगो गैया॥७॥

---

१ छोटा-सा बरतन। २ मट्ठा। ३ जिसका छेदन न हो सके। ४ तो भी। ५ काछनी। ६ चौसठ कलाओं में प्रवीण; चंद्रमा। ७ करोड़। ८ पास। ९ स्थान। १० जादू-टोना। ११ बीज बो गया।

तात्पर्य यह है कि मैं श्रीकृष्ण का रूप तो धारण कर लूंगी, पर उनकी जूठी मुरली ओठों को न छुआऊँगी। यह क्यों? क्योंकि वह मेरी सौत है। वह कृष्ण का अधरामृत पहले ही पान कर चुकी है; भला उससे मेरी कैसे बनेगी?

सोहत हैं चँदवा[1] सिर मोर कें, जैसिये सुँदर पाग कसी है।
तैसिये गोरज भाल बिराजति, जैसी हियें बनमाल लसी है॥
'रसखानि' बिलोकति बौरी[2] भई, दृग,मूँद कै ग्वारि[3] पुकारिहँसी है।
खोलि री घूंघट, खोलौं कहा, वह मूरति नैननि मांझै बसी है॥८॥
ब्रह्म मैं ढुंढ्यौ पुराननि, गाननि, वेद-रिचा[4] सुनि चौगुनी चायन[5]।
देख्यौ सुन्यौ कबहूँ न कितू[6], वह कैसे सुरूप औ कैसे सुभायन॥
टेरत-हेरत हारि पर्यौ 'रसखानि' बतायौ न लोग लुगायन।
देख्यौ, दुर्यौ वह कुंज-कुटीर में, बैठ्यो पलोटतु[7] राधिका-पायन॥९॥
कानन दै अँगुरी रहिबो, जबहीं मुरली-धुनि मंद बजै है।
मोहिनी ताननि सौं, 'रसखानि', अटा चढ़ि गोधन[8] गैह तो गैहैं[9]॥
टेरि कहौं सिगरे ब्रजलोगनि, काल्हि कोऊ कितनों समुझैहै।
माई री, वा मुख की मुसुकानि,[10] सँभारी न जैहै न जैहै न जैहै॥१०॥
द्रौपदि औ गनिका गज गीध, अजामिल सों कियो सो न निहारो।
गौतम-गेहिनी[11] कैसे तरी, प्रहलाद को कैसे हर्यौ दुख भारी॥
काहे कों सोच करै 'रसखानि' कहा करिहै रविनंद[12] बिचारो।
कौन सी संक[13] परी है जु माखन-चाखन हारी है राखनहारी॥११॥
यह देखि धतूरे के पात चबात, औ गात सों भूरि लगावतु है।
चहुँ ओर जटा अटकै, लटकै सुभ सीस फनी फहरावतु है॥
'रसखानि' जोई[14] चितवै चित दै, तिनके दुख-दुंद भजावतु है॥

---

१ मोर के चंद्राकार पंख। २ पगली, गूंगी। ३ ग्वालिन। ४ ऋचा, मंत्र। ५ चाव से। ६ कहीं भी। ७ सहराता है। ८ गाएँ हो जिनका धन हैं, श्रीकृष्ण। ९ गायेगा। १० मुसुकानि...जैहै—मुसक्यान देखकर मन हाथ न रहेगा। ११ अहिल्या। १२ सूर्य-पुत्र यम। १३ शंका, भय। इसी आशय का रहीम का भी एक दोहा है :

'कहु रहीम का करि सकै' ज्वारी चोर लबार।
जो पत राखनहार है, माखन-चाखनहार॥

१४ जिसको भी।

गजखाल, कपाल[1] की माल बिसाल सो गाल बजावतु[2] आवतु है ॥१२॥

बैद की औषधि खाइ कछू न, करै कछु संयम[3] री, सुनि मोसें।
जो जलपान कियौ 'रसखानि', सजीवनि जानि लियौ सुख तोसें ॥
एरी सुधामयी भागीरथी! सब[4] पथ्य-कुपथ्य बनै तोरे पोसें।
आक धतूर चबात फिरै, विष खात फिरै सिव तोरे भरोसें ॥१३॥

बैन वही, उनकौ[5] गुन गाइ, औ कान वही, उन बैन सों सानी।
हाथ वही, उन गात सरै[6], अरु पाइ वही जु वही अनुजानी[7] ॥
जान वही, उन प्रान के संग, औ मान वही, जु करै मनमानी।
त्यों 'रसखानि'[8], वही रसखानि, जु है रसखानि सो है रसखानी[9] ॥१४॥

कवित्त

दूध दुह्यौ, सीरो[10] पर्‌यो तातो न जमायो बीर,
जामन दयौ सो धर्‌यौ धर्‌यौई घटायगो।
आन हाथ आन पाइ[11] सबही के तबही तें,
जबही तें 'रसखानि' तानिन सुनायगो ॥
ज्यौंही नर त्यौंही नारी तैसीयै तरुनि बारी[12],
कहिये कहा री, सब ब्रज बिललाइगो[13]।
जानिए न आली, यह छोहरा जसोमति को,
बाँसुरी बजायगो, कि विष बगरायगो ॥१५॥

ग्वालन के संग जैबो, ऐबो आ चरैबो गाय,
हेरि तान गैबो[15] सोचि नैन फरकत हैं।

---

१ नर-मुंड। २ शिवजी के आगे गाल बजाना उन्हें प्रसन्न करने का सूचक है। ३ संयम, पथ्य। ४ सब पथ्य. . .पोसें—तेरा सेवन करने से कुपथ्य भी पथ्य हो जाता है। ५ श्रीकृष्ण का। ६ कान में लगे। ७ उनके पीछे-पीछे जाये। ८ कवि का नाम। ९ आनन्द राशि। १० ठंडा। ११ अपने हाथ-पैर अपने वश के नहीं रहे। १२ बच्चे। १३ बादला-सा हो गया। १४ फैल गया। १५ गान।

ह्याँ[1] की गज-मोती-माल वारौं गुंज-मालन पै,
कुंज सुधि आये हाथ प्रान धरकत हैं।।
गोबर कौ गारौ[2] सुतौ[3] मोहि लगै प्यारो, नहिं—
भावैं ये महल जे जटिल मरकत[4] हैं।
मंदर[5] ते ऊँचे कहा मन्दिर[6] हैं द्वारिका के,
ब्रज के खरक[7] मेरे हिये धरकत[8] हैं।।१६।।
कहा 'रसखानि' सुख-संपत्ति सुमार[9] महँ,
कहा महाजोगी ह्वै लगाये अंग छार[10] को।।
कहा साधें पंचानल,[11] कहा सोयें बीच जल,
कहा जीति लायें राजसिंधु वारपार को।।
जप बारबार तप संजम बयार-ब्रत[12]
तीरथ हजार अरे बूझत लबार को।
सोई है गँवार जेहिं कीन्हौं नहिं प्यार, नहीं,
सेयौ दरबार यार नंद के कुमार को।।१७।।
कंचन के मंदिरन दीठि ठहराति नाहीं,
सदा दीपमाल लाल-मानिक-उजारे[13] सों।।
और प्रभुताई अब कहाँ लौं बखानौं,
प्रतिहारिन[14] की भीर भूप टरत न द्वारे सों।।
गंगा में नहाई मुक्ताफल हूँ लुटाइ, बेद,
बीस बार गाइ, ध्यान कीजत सकारे सों।
ऐसे ही भये तौ कहा कीन 'रसखानि' जोपै,
चितदै न कीनीं प्रति पीतपटवारे सों।।१८।।

---

१ यहाँ, अर्थात् द्वारका। २ घर। ३ यह तो। ४ नीलम मणि, यहाँ सभी रत्नों से आशय है। ५ पर्वत। ६ महल। ७ बाड़ा, जहाँ गौएँ रहती हैं। ८ खट्कते हैं याद दिलाकर जी दुखाते हैं। ९ शुमार, गिनती। १० भस्म। ११ पंचाग्नि के बीच में बैठकर तप करने से। १२ पवन-आहार, प्राणायाम। १३ उजेले। १४ द्वारपाल।

गोरज बिराजै भाल लहलही[1] बनमाल,
आगे गैयाँ पाछें ग्वाल गावैं मृदुतान, री।
तैसी धुनि बाँसुरी की मधुर-मधुर तैसी,
बंक चितवनि मंद-मंद मुसुकान री।।
कदम विटप के निकट, तटिनी[2] के तट,
अटा चढ़ि देखु पीतपट-फहरान, री।
रस बरसावै, तन-तपन बुझावै, नैन,
प्रानिनि रिझावै वह आवै रसखान,[3] री।।१९।।
आपनो-सों ढोटा हम सबही कों जानति हैं,
दोऊ प्रानी[4] सबहीं के काज नित धावहीं।
ते तौ 'रसखानि' सब दूर तैं तमासो देखैं,
तरनि-तनूजा के निकट नहिं आवहीं।
आय दिन बात अनहितुन सों कहौं कहा,
हितू जे-जे आये तेऊ लोचन-दुरावहीं[5]।
कहा कहौं आली, खाली देत सब ठाली[6] हाय!
मेरे बनमाली को न काली[7] तें छुड़ावहीं।।२०।।

प्रेम बाटिका

दोहा

या छवि पै 'रसखानि' अब, वारौं कोटि मनोज।
जाकी उपमा कविनु नहिं पाई, रहे सुखोज।।१।।
प्रेम-अयनि श्री राधिका, प्रेमबरन नंद-नन्द!
प्रेम-बाटिका के दोऊ माली मालिन द्वंद्व।।२।।

---

१ हरी-भरी, नवीन। २ (यमुना) नदी। ३ आनन्दराशि श्रीकृष्ण ४ नंद और यशोदा। ५ आँख छिपाते हैं, जो चुराते हैं। ६ धीरज। ७ कालियानाग, जो यमुना में रहता था, और जिसे श्रीकृष्ण ने नाथ लिया था।

'प्रेम-प्रेम' सब कोऊ कहत, प्रेम न जानत कोय।
जो जन जानै प्रेम, तौ मरै जगत क्यों रोय॥३॥
प्रेम अगम, अनुपम, अमित, सागर-सरिस बखान।
जो[1] आवत इहि ढिग बहुरि, जात नहीं 'रसखान'॥४॥
प्रेम बारुनी छानिकै, बरुन भये जलधीश।
प्रेमहिं तें विष पानकरि, पूजे जात गिरीस॥५॥
प्रेमरूप-दरपन, अहो! रचै अजूबो खेल।
यामें अपनो रूप कछु लखि परिहै अनमोल[2]॥६॥
कमल-तंतु-सो छीन, अरु कठिन खड्ग की धार।
अति सूधो, टेढ़ो बहुरि, प्रेम-पंथ अनिवार॥७॥
लोक वेद-मरजाद सब, लाज काज, संदेह।
देत बहाये प्रेम करि, बिधि-निषेध को नेह॥८॥
सास्त्रन पढ़ि पंडित भये, कै मोलवी कुरान।
जु पै प्रेम जान्यो नहीं कहा कियो रसखान॥९॥
काम, क्रोध, मद, मोह, भय, लोभ, द्रोह, मात्सर्य।
इन सबहीं तें प्रेम है, परे कहत मुनिवर्य॥१०॥
बिनु गुन जोबन, रूप, धन, बिनु स्वारथ हित[3] जानि।
सुद्ध कामना तें रहित, प्रेम सकल[4] 'रसखानि'॥११॥
अति सूछम, कोमल अतिहिं, अति पतरो, अति दूर।
प्रेम कठिन सब तें सदा, नित इकरस[5] भरपूर॥१२॥
जग में सब जान्यौ परै, अरु सब कहैं कहायँ।

---

१ जो...रसखान—प्रेम-सिंधु के पास जाकर फिर कोई संसार सागर की ओर नहीं लौटता। गीता में कहा है : 'यद्गत्वा न निवर्त्तन्ते तद्धाम परमं मम।' २ प्रेम-राज्य में प्रवेश करते ही अविद्यात्मक रूप का नाश हो जायगा, और अपना दिव्य स्वरूप दिखने लगेगा। ३ प्रेम। ४ सब प्रकार के सुखों का स्थान। ५ निरन्तर एक अवस्था में, त्रिकालाबाधित।

पै जगदीसऽरु प्रेम यह, दोऊ अकथ लखाय ॥१३॥
जेहि बिनु जानै कछुहि नहिं, जान्यौ जात बिसेस।
सोई प्रेमहिं जानिकैं, रहि[1] न जात कछु सेस ॥१४॥
दंपति-सुख, अरु विषय-रस, पूजा, निष्ठा, ध्यान।
इन तें परे बखानिए, सुद्ध प्रेम 'रसखान' ॥१५॥
मित्र, कलत्र,[2] सुबंध, सुत, इनमें सहज सनेह।
सुद्ध प्रेम इनमें नहीं, अकथ कथा सबिसेह[3] ॥१६॥
इकअंगी,[4] बिनु कारनहिं इकरस, सदा समान।
गनै प्रियहिं सर्वस्व जो, सोई प्रेम प्रमान ॥१७॥
डरै[5] सदा, चाहै न कछु, सहै सबै जो होय।
रहै एकरस चाहिकै, प्रेम बखानौ सोय ॥१८॥
'प्रेम-प्रेम' सब कोउ कहै, कठिन प्रेम की फाँस।
प्रान तरफि निकरै नहीं, केवल चलत उसाँस ॥१९॥
प्रेम हरी कौ रूप है, त्यों हरि प्रेम-स्वरूप।
एक होइ द्वै में लसै, ज्यों सूरज अरु धूप ॥२०॥
प्रेम-फाँस में फँसि मरै, सोई जियै सदाहिं।
प्रेम-मरम जाने बिना, मरि कोउ जीवत नाहिं ॥२१॥
जग में सब तें अधिक अति, ममता तनहिं लखाय।
पै या तन हूँ तें अधिक, प्यारो प्रेम कहाय ॥२२॥

---

१ रहि...सेस—सर्वज्ञता प्राप्त हो जाती है। २ स्त्री। ३ विशेष सर्वोच्च। ४ जहाँ एक ओर से ही प्रेम हो। दोनों ओर का एक-सा सकाम प्रेम, प्रेम नहीं व्यापार है। ५ सदा इस बात से डरता रहे कि कहीं मेरी सेवा में कोई त्रुटि न आ जाय, जिससे मेरा प्रियतम रुष्ट हो जाय।

इस दोहे में जन्म और मरण दोनों एक ही वस्तु के दो नाम बतलाये गये हैं। कबीरदास के 'मरजीवा' की भी यही स्थिति है।

जेहि पायें बैकुण्ठ अरु, हरिहूँ की नहिं चाहि।
सोई अलौकिक सुद्ध सुभ, सरस सुप्रेम कहाहि।।२३।।*

कोउ याहिं फाँसी कहत, कोउ कहत तरवार।
नेजा, भाला, तीर, कोउ, कहत अनोखी ढार[1]।।२४।।

पै एतोहूँ हम सुन्यौ, प्रेम अजूबो खेल।
जाँबाजी[2] बाजी जहाँ, दिल कौ दिल सों मेल।।२५।।

सिर काटौं, छेदौं हियो, टूक-टूक करि देहु।
पै याके बदले बिहँसि, वाह-वाह ही लेहु।।२६।।

याही तें सब मुक्ति तें, लही बड़ाई प्रेम।
प्रेम भये नसि जाहिं सब, बँधे जगत के नेम।।२७।।

हरि के सब आधीन, पै हरी प्रेम-आधीन।
याहीं तें हरि आपुही, याहि बड़प्पन दीन।।२८।।

बेदमूल सब धर्म यह, कहैं सबै स्रुति सार।
परमधर्म है ताहु तें, प्रेम एक अनिवार[3]।।२९।।

जदपि जसोदा-नंद अरु, ग्वालबाल सब धन्य।
पै या जग में प्रेम की, गोपी भई अनन्य।।३०।।

वा रस की कछु माधुरी, ऊधौ लही सराहि।
पावै बहुरि मिठास अस, अब दूजो को आहि।।३१।।

स्रवन, कीरतन, बरसनहिं, जो[4] उपजत सोइ प्रेम।
सुद्धासुद्ध-विभेद तें, द्वैबिध ताके नेम।।३२।।

---

१ ढाल। २ प्राणों की बाजी, आत्म-समर्पण। ३ अनिवार्य; परमावश्यक। ४ आनन्द से तात्पर्य है।

*इस दोहे में मुक्ति का दर्जा ऊँचा बतलाया गया है। गोसाईं तुलसीदास भी कहते हैं; 'सगुन उपासक मोच्छ न लेहीं।'

स्वारथमूल[1] असुद्ध त्यौं, सुद्ध स्वभावनुकूल[2]।
नारदादि प्रस्तार[3] करि, कियो जाहि को तूल ॥३३॥
रसमय[4], स्वाभाविक, विना स्वारथ, अचल महान।
सदा एकरस, सुद्ध सोइ, प्रेम अहै रसखान ॥३४॥
जातें उपजतु प्रेम सोइ, बीज कहावतु प्रेम।
जामें उपजतु प्रेम सोइ, छेत्र कहावत प्रेम ॥३५॥
जातें पनपत,[5] बढ़त अरु, फूलत फलत महान।
सो सब प्रेमहिं प्रेम यह, कहत रसिक रसखान ॥३६॥
जो जातें, जामें, बहुरि, जा हित कहियत बेस।
सो सब प्रेमहिं प्रेम है, जग 'रसखानि' असेस[6] ॥३७॥
देखि गदर हित साहिबी, दिल्ली नगर मसान।
छिनहिं बादसा-बंस की ठसक छाँड़ि 'रसखानि' ॥३८॥
प्रेम-निकेतन श्रीबनहिं, आइ गोवर्द्धन-धाम।
लह्यौ सरन चित चाहिकैं, जुगुलसरूप ललाम ॥३९॥*
अरपी श्री हरि-चरन-जुग, पदुम-पराग निहार।
बिचरहिं यामें रसिकवर, मधुकर-निकर अपार ॥४०॥

---

१ सकाम। २ निःस्वार्थ; निष्काम। ३ विस्तार। ४ आनन्दमय। ५ हराभरा होता है। ६ अशेष संपूर्ण।

*इन दोनों दोहों में कवि ने अपना सूक्ष्म परिचय दिया है। इन्होंने सारी प्रभुता को विषवत् तथा राजधानी दिल्ली को श्मशान-समान छोड़कर बादशाही खानदान का अभिमान क्षण में दूर कर दिया। वहाँ से यह शीघ्र वृन्दावन चले आए। यहाँ गोवर्द्धनधाम में श्रीकृष्ण के शरणापन्न हो गये। यह ऐसे ऊँचे और भक्त वैष्णव हुए कि इनकी गणना गोसाईं गोकुलनाथजी को अपनी '२५२ वैष्णव न की वार्ता' में करनी पड़ी। ऐसे महाभाग मुसलमानों के सम्बन्ध में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने क्या ही अच्छा कहा है :

"इन मुसलमान हरि-जनन पै, कोटिन हिन्दू वारिए।"

ध्रुवदास

राधाकृष्ण - निकुंज - केलि - सुखपुंज - बिलासी।
प्रेम-रसासव-मत्त मधुप सहृदय गुनरासी।।
रचि अनेक पद छंद भजन-पद्धति बिस्तारी।
लीला-अनुभव भक्त नाम माला उरधारी।।
हित-मंत्र स्वप्न में मानिकैं, व्रत अनन्य कीन्हों अटल।
श्रीहितहरिबंस-प्रताप की हित ध्रुवदास धुजा धवल।।

—वियोगी हरि

भक्तवर ध्रुवदास जी के संबंध में, ऐतिहासिक दृष्टि से, कुछ विशेष वृत्तान्त नहीं मिलता। यह गोस्वामी हितहरिबंशजी के स्वप्न द्वारा शिष्य हुए थे। इनकी गुरुभक्ति अनुकरणीय है। 'भक्तनामावली' में श्रीहितजी महाराज को इन्होंने किस श्रद्धा-भक्ति से स्मरण किया है—

हितहरिबंसहि कहत 'ध्रुव', बाढ़ै आनन्द-बेलि।
प्रेम रँगी उर जगमगै जुगुल नवलवर-केलि।।
निगम ब्रह्म परसत नहीं, सो रस सब तें दूरि।
कियौ प्रकट हरिबंसजू, रसिकनि-जीवनमूरि।।

इन्होने 'वृन्दावन-संत को' संवत् १६८६ में लिखा था, जैसा कि अन्तिम दोहे से प्रकट होता है।

'ध्रुव' सोरहसौ छ्यासिया, पूनो अगहन मास।
यह प्रबन्ध पूरन भयौ, सुनत होय अघ-नास।।

'सभा-मंडली' संवत् १६८१ तथा 'रहस्य-मंजरी' संवत् १६९८ में लिखी। रचना-काल से अनुमान किया जा सकता है कि नका जन्म

१६५० के लगभग हुआ होगा। इन्होंने अपनी 'भक्तनामावली' में १७३५ तक के भक्तों का वर्णन किया है। सस इनका गोलोक-वास संवत् १७४० के लगभग माना जा सकता है।

ध्रुवदासजी वृन्दावन में ही अधिक काल तक रहे और वहीं इन्होंने उपर्युक्त ग्रन्थ रचे। वृन्दावन पर इनका बड़ा प्रेम था। इन्होंने माधुर्य रस का बड़ा ही सरस और सुन्दर वर्णन किया है। इनकी लिखी 'भक्तनामावली' स्वर्गीय बाबू राधाकृष्णदासजी ने काशी-नागरी-प्रचारिणी-ग्रन्थमाला से प्रकाशित कराई थी। बाद को भक्त-जीवन प्रेस के संचालक बाबू राम-कृष्ण वर्मा ने इनके कई छोटे-छोटे ग्रंथ 'ध्रुव-सर्वस्व' नाम से प्रकाशित किये सब मिलाकर अब तक इनके निम्नलिखित ग्रंथ उपलब्ध हुए हैं।

१. वृन्दावन-सत; २. सिंगार-सत; ३. रस-रत्नावली; ४. नेह मंजरी; ५. रहस्य-मंजरी; ६. सुख-मंजरी; ७. रति-मंजरी; ८. बन-बिहार; ९. रंग-बिहार; १०. रस-विहार; ११. आनन्द-दसा-विनोद; १२. रंगविनोद; १३. नृत्य-विलास; १४. रंग-हुलास; १५. मानसरसलीला; १६. रहसि-लता; १७. प्रेम-लता; १८. प्रेमावली १९. भजन-कुंडलिया; २०. भक्तनामावली; २१. मन-सिंगार; २२. भजन-सत; २३. मन-शिक्षा; २४. प्रीति-चौवनी; २५. रस मुक्ता-वली; २६. बावन वृहद्पुराण की भाषा; २७. सभा-मंडली; २८. रसानंद-लीला; २९. ख्याल-हुलास-लीला; ३०. सिद्धान्त-विचार; ३१. रस-हीरावली; ३२. हित-सिंगार लीला; ३३. ब्रज-लीला; ३४. आनन्दलता; ३५. अनुरागलता; ३६. जीव-दशा; ३७. वैद्यलीला; ३८. दानलीला ३९. ब्याहुली; ४०. ब्यालिस बानी।

इनमें २३, २९ और ४० संख्यावाले ग्रन्थ इन ध्रुवदासजी-कृत प्रतीत नहीं होते।

कई रचनाएँ तो इनकी बड़ी ही उत्तम हैं। प्रेम-तत्व का इन्होंने कहीं-कहीं आदर्श वर्णन किया है। इनकी सरस रचनाओं में कतिपय पद्य नीचे दिए जाते हैं।

शृंगार शतक

दोहा

हरिबंस-चरन 'ध्रुव' चितवन, होत जु हिय हुल्लास।
जो रस दुरलभ सबनि कों, सों पै यतु अनयास॥१॥

कवित्त

हँसनि में फूलनि की, चाहनि में अमृत की,
नखसिख रूप ही की वरषा-सी होति है।
केसनि की चंद्रिका सुहाग-अनुराग-घटा,
दामिनी की लसनि, दसन ही की द्योति है।
'हित ध्रुव', पानिप[1] तरंग रस छलकत,
ताकौ मनो सहज सिंगार-सींव[2] तोति[3] है।
अति अलबेली प्रिया भूषिताभरन बिन,
छिन-छिन[4] औ रै-और वदन की जोति है॥२॥

छवि ठाढ़ी कर जो रैं, गुन-कला चोरैं ढोरे,
दुति सेवैं तन गोरे, रति वलि जाति है।
उजराई कुंज ऐन, सुथराई[5] रची मैन,
चतुराई चितै नैन अति ही लजाति है॥
राग सुनि रागिनी हूँ होति अनुराग-बस,
मृदुताई[6] अंगनि छुवति सकुचाति है।
'हित ध्रुव', सुकुमारी, पुरीजन हूँ तें प्यारी,
जीवति देखे बिहारी सुख सरसाति है॥३॥

---

१ समुद्र। २ सीमा। ३ नौका। ४ छिन...जोति है—देखते-देखते ही मुख की आभा बढ़ती जाती है। इसी भाव पर कविवर बिहारी का भी एक दोहा, "लिखनि बैठि जाकी छवी, गहि गहि गरब गरूर। भये न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर।" ५ शय्या। ६ मृदुताई...सकुचाति है—स्वयं कोमलता कोमल शरीर को छूकर लज्जित हो जाती है।

कवित्त

आजु की छबीली छवि-छटा चित वेधि रही,
कही नहिं जाति कछू कौन गति भई है।
नवल जुगुल हँसि चितवति ठाढ़ी पासि,
मानों तिहि उर नई नेह-बेलि बई[१] है॥
'हित ध्रुव' नीरज-से नीर-भरे ढरे[२] नैन,
बोलति न कछु बैन चित्र सी ह्वै गई है।
नैन छाइ लीने रूप परी तव प्रेमकूप,
वाकी गत जानै सोई जिहि अनभई[३] है॥४॥

कवित्त

सहज सुभाउ परचौ नवलकिसोरी जू कौ,
मृदुता[४] दयालुता, कृपालुता की रासि हैं।
नेकहूँ न रिस के हूँ भूलेहुँ न होति सखी,
रहति प्रसन्न सदा हियें मुख हासि[५] हैं॥
ऐसी सुकुमारी, प्यारे लालजू की प्रानप्यारी,
धन्य-धन्य धनि तेई, जिनके उपासि[६] हैं॥
'हित ध्रुव' और सब जहँलगि देखियतु,
सुनियतु तहँलगि सबै दुख-पासि[७] हैं॥५॥

सवैया

ऐसी करी नवलाल रँगीले जू चित्त न और कहूँ ललचाई।
जे सुख-दुःख रहै लगि देह[८] सों ते मिटि जाहिंऽरु[९] लोग-बड़ाई॥
सगति साधु, बृन्दावन कानन तो गुन-गाननि माँझ बिहाई।
कुंज-पगों में तिहारे बसौं बस देहु यहै 'ध्रुव' को ध्रुवताई[१०]॥६॥

---

१ बोई है। २ नम्र। ३ अनुभव किया है। ४ आर्द्रता; करुणाभाव। ५ मुसक्यान। ६ उपास्य; इष्ट। ७ बंधन। ८ शरीर से संबंध रखने वाले आधिभौतिक दुःख। ९ और। १० दृढ़ता।

नेह-मञ्जरी

चौपाई

महाप्रेम गति सब तें न्यारी। पिय जानै, कै प्रान-पियारी॥
उरझे मन सुरझत नहिं केहू[1]। जिहि अंग ढरत होत सुख तेहू॥
एकै रुचि हुहुँ में सखि बाढ़ी। परि गई प्रेम-ग्रंथि अति गाढ़ी॥
देखत-देखत कल नहिं माई। तिनकौ प्रेम कह्यौ नहिं जाई॥
सहज सुभाइ अनमनी देखैं। निमिषनि कोटि कलप-सम लेखैं॥
हँसि चितवति जब प्रीतम माहीं। सोई कलप निमिष ह्वै जाहीं॥
खेलनि-हँसनि लाल कों भावै। नेह की देवी नितहिं मनावै॥
कौतुक प्रेम छिनहि-छिन होई। यह रस बिरलो समुझै कोई॥
ज्यों-ज्यों रूपहिं देखत माई। प्रेम-तृषा की ताप[2] न जाई॥१॥

दोहा

प्रेम-तृषा की ताप 'ध्रुव', कैसेहुँ कही न जात।
रूप-नीर छिरकत रहैं, तऊँ न नैन अघात॥२॥

चौपाई

कौन प्रेम तिहि ठाँकौ कहिए। दुहूँ कोद[3] चितवत सखि रहिए।
नित्य सुप्रेम एकरस-धारा[4]। अति अगाध तिहि नाहिन पारा॥
महा मधुर रस प्रेम कौ प्रेमा। पीवत ताहिं भूलि गये नेमा॥
तैसी सखी रहै दिन-राती। 'हित ध्रुव' जुगल-नेह मदमाती॥३॥

दोहा

रसनिधि रसिक किसोर बिबि, सहचरि परमप्रबीन।
महाप्रेम-रस-मोद में, रहित निरंतर लीन॥४॥

प्रेम-कथा कछु कही न जाई। उलटी चाल तहाँ सब भाई॥
प्रेम-बात सुनि बौरा होई। तहाँ सयान रहै नहिं कोई॥

---

१ किसी तरह। २ अतृप्ति। ३ तरफ। ४ निरंतर एक-सा।

तन मान प्रान तिहीं छिन हारै। भली-बुरी कछुवै न बिचारै॥
ऐसो प्रेम उपजिहैं जबहीं। 'हित ध्रुव' बात बनैगी तबहीं॥
ताकौ जतन न दीखै कोई। कुँवरि[1] कृपा तें कहा न होई॥
वृन्दावन-रस सब तें न्यारो। प्रीतम जहाँ अपनपौ हारो॥
श्री हरिवंस-चरन उर धरई। तब या रस में मन अनुसरई॥
सो मति कौन कहै या बानी। तिन चरननि-बल कछुक बखानी॥
जुगुल प्रेम मनहीं में राखौ। अनमिल[2] सों कबहूँ जिन भाखौ॥५॥

दोहा

कहि न सकत रसना कछुक, प्रेम-स्वाद आनन्द।
को जानै 'ध्रुव' प्रेम-रस, बिन बृन्दावन-चंद॥६॥
नारदादि सनकादि ध्रुव, उद्धव अरु ब्रह्मादि।
गोपिन कौ सुख देखि किय[3] भजन आपुनो बादि॥८॥

चौपाई

तिन गोपिन के दुरलभ माई। नित्य बिहार सहज सुखदाई॥
सिव श्रीपति जद्यपि ललचाहीं। मन-प्रवेस तिनहूँ कौ नाहीं॥
ऐसे रसिककिसोर बिहारी। उज्वल[4] प्रेम बिहार-अहारी[5]॥८॥

रहस्य-मञ्जरी

दोहा

अटपट रँग को बिरह सुनि, भूलि रहे सब कोइ।
जल[6] पीवत हैं प्यास कों, प्यास भयौ जल सोइ॥१॥

---

१ श्रीराधा। २ जिसका मन अपने से न मिले; अनधिकारी। ३ किय...बादि-अपने-अपने सिद्धांत रद्द कर दिए। ४ निर्विकार, दिव्य। ५ भोक्ता। ६ जल...सोइ—जिस जल से प्यास बुझाई जाती है, वह जल ही प्यासरूप हो गया है। कविवर बिहारी ने लिखा है : "वहई रोग निदान, वही बैद, औषध वहै।"

'हित ध्रुव' दुरलभ सबनि[1] तें, नित्यबिहार सरूप।
ललितादिक निज सहचरी, सो सुख लहति अनूप ॥२॥

रति-मञ्जरी

दोहा

प्रेम-रसासव[2] छकि दोऊ, करत बिलास-विनोद।
चढ़त रहत, उतरत नहीं, गौर-स्याम-छबि मोद ॥१॥

चौपाई

मेंड़[3] तोरि रस चल्यौ अपारा। रही न तन-मन कछु संभारा[4] ॥
सो रस कहौ कहाँ ठहरानो। सखियन के उर-नैन समानो ॥
तिहि अवलंबि[5] सकल सहचरीं। मत्त हरित ठाढ़ी रँग-भरीं ॥
या रस की जाकों रुचि रहै। भाग पाइ सोइ कछु इक लहै ॥
सखियन-सरन भाव धरि आवै। सो या रस के स्वादहिं पावै ॥
छांड़ि कपट भ्रम दिन दुलरावै[6]। ताकौ भाग कहत नहिं आवै ॥
रतिमंजरि रँग लागै जाके। प्रेम-कमल फूलै हिय ताके ॥
यह रस जाके उर न सुहाई। ताको संग बेगि तजि भाई ॥२॥

दोहा

या रस सों लाग्यों रहै, निसिदिन जाकौ चित्त।
ताकी पद-रज सीस धरि, बंदत रहु 'ध्रुव' नित्त ॥३॥

प्रेम-लता

दोहा

जिन नहिं समुझयौ प्रेम यह, तिनसों कौन अलाप[7] ॥
दादुर हूँ जल में रहैं, जानै मीन-मिलाप[8] ॥१॥

---

१ ज्ञान, कर्मयोगादि सब साधनों से। २ आनन्दरूपी मद्य। ३ मर्यादा। ४ सँभाल; सुध-बुध। ५ दृढ़ता से पकड़कर। ६ भक्ति से प्यार करे। ७ वार्ता। ८ जल का प्रेम।

चौपाई

खान-पान सुख चाहत अपने। तिनकों प्रेम छुवत नहिं सपने॥
जो या प्रेम-हिंडोरैं झूलैं। तिनकों और सबै सुख भूलैं॥
प्रेम-रसासव चाख्यौ जबहीं। औरैं रंग चढ़ै 'ध्रुव' तबहीं॥
या रस में जब मन परै आई। मीन-नीर की गति ह्वै जाई॥
निसिदिन ताहिं न कछू सुहाई। प्रीतम के रस रहै समाई[1]॥
जाकौ जासों है मन मान्यौ। सो है ताके हाथ बिकान्यौ॥
अरु ताके अँग-सँग की बातें। प्यारी सब लागति तिहिं नातें॥
रुचै सोइ जो ताकों भावै। ऐसी नेह की रीति कहावै॥२॥

दोहा

ब्रजदेवी के प्रेम की, बँधी धुजा अति दूरि।
ब्रह्मादिक बांछत[2] रहैं, तिनके पद की धूरि॥३॥

चौपाई

वृन्दावनघन राजत कुंजैं। बिहरत तहाँ रसिक सुखपुंजैं॥
एक प्रान, बिबि[3] देह हैं दोऊ। तिन समान प्रेमी नहिं कोऊ॥
सब पर अधिक जानि यह प्रेमा। ताके बस भे तजि सब नेमा[4]॥

लाल-लाड़िली[5]-प्रेम तें, सरस सखिन कौ प्रेम।
अटकी हैं निज प्रीति-रस, परसत तिनहिं न नेम॥५॥

---

१ मग्न हो जाता है। २ चाहते रहते हैं। ३ दो। ४ नियम इत्यादि। ५ श्रीकृष्ण और राधिका।

*इन चौपाइयों में ध्रुवदासजी ने प्रेम-तत्व का बड़ा ही सजीव वर्णन किया है।

भजन-सत

सोरठा

रसिकन के रहु संग, रे मन, आन बिचार तजि।
नैननि कीलै रंग, मिथुन[1]-रूप-रस-रंग करि ॥१॥

दोहा

रे मन, रसिकन संग बिनु, रंच[2] न उपजै प्रेम।
यह रस कौ साधन यहै, और करहु जिन नेम ॥२॥
दंपति-छवि सों मत्त जे, रहत दिनहिं इक रंग[3]।
हित सों चित चाहत रहौं, निसि-दिन तिनको संग ॥३॥
झूलत-झूमत दिन फिरै, घूमत दम्पति-रंग।
भाग पाय छिन एक जो, पैहै तिनको संग ॥४॥
सेवा अरु तीरथ-भ्रमन, फल[4] तेहिं कालहिं पाइ।
भक्तन-संग छिन एक में, परमभक्ति उपजाइ ॥५॥
जिनके हिय में बसत हैं, राधावल्लभ लाल।
तिनकी पदरज लेइ 'ध्रुव' पिवत रहौ सब काल ॥६॥
महा मधुर सुकुँवार दोउ, जिनके उर बस आनि।
तिनहूँ ते तिनकी अधिक, निहचै कै 'ध्रुव' जानि ॥८॥
जिनके जाने जानिए, जुगुलचंद सुकुमार ॥
तिनकी पद-रज सीस धरि, 'ध्रुव' के यहै अधार ॥८॥

सोरठा

तृन-सम जब ह्वै जाहिं, प्रभुता, सुख त्रैलोक के।
यह आवै मन माहिं, उपजै रंचक[5] प्रेम तब ॥९॥

---

१ युगल, श्रीराधाकृष्ण। २ जरा-सो भी। ३ एकरस। ४ फल पाइ——इन सब का फल कुछ काल के पश्चात् मिलता है। यह दोहा श्रीमद्भागवत के इस श्लोक का उल्था-सा जान पड़ता है——ते पुनंत्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः'। ५ थोड़ा-सा

भक्तन सों अभिमान, प्रभुता भय न कीजिए।
मन बच निहचै[1] जान, इहिं सम नहिं अपराध कछु ॥१०॥

दोहा

सकल बयस सतकर्म में, जो पै बितई होइ।
भक्तन को अपराध इन, डारत सब को खोइ ॥११॥
और सकल अघ-मुचन[2] कों, नाम उपायहिं नीक।
भक्त-द्रोह कौं जतन नहिं, होत बज्र की लीक[3] ॥१२॥
निंदा भक्तिन की करै, सुनत जौन अघरासि।
वे तो एकै संग दोउ, बँधत भानु-सुत[4] पासि[5] ॥१३॥
भूलिहुँ मन दीजै नहीं, भक्तन निंदा ओर।
होत अधिक अपराध तिहिं, मति जानहु उर थोर ॥१४॥
सेवा[6] करतहिं भक्तजन, होइ प्राप्त जो आइ।
सो सेवा तजि बेगिहीं, अरजहु तिनकों जाइ ॥१५॥
भक्तन देखे अधिक ह्वै, आदर कीजै प्रीति।
यह गति जो मन की करै, जाइ सकल जग जीति ॥१६॥
मन अभिमान न कीजिए, भक्तन सो होइ भूलिए।
स्वपच आदि हूँ होइँ जो, मिलिए तिनसों फूलि[7] ॥१७॥

कुंडलिया

बहु बीती, थोरी[8] रही, सोई बीती जाइ।
'हित ध्रुव' बेगि बिचारिकै, बसि बृन्दावन आइ॥
बसि बृन्दावन आइ, लाज तजिकै अभिमानहिं।
प्रेमलीन ह्वै दीन आपको तृन-सम जानहिं॥
सकल सार कौ सार, भजन तूं करि-रस रीती।
रे मन, सोच-विचार, रही थोरी, बहु बीती ॥१८॥

---

१ निश्चय। २ पापों से छूट जाता है। ३ अमिट रेखा। ४ यमराज। ५ फांसी। ६ भगवत्-सेवा। ७ प्रसन्न होकर। ८ थोड़ी ही आयु और बची है।

सोरठा

बृन्दावन रसरीति, रहै बिचारत चित्त 'ध्रुव'।
पुनि जैहै बय बीति, भजिये नवलकिसोर दोउ ॥१९॥

दोहा

दुरलभ मानुष-जनम है, पैयतु केहूँ[1] भांति।
सोई देखौ कौन बिधि, बादि भजन बिनु जाति ॥२०॥
बिषई जल में मीन-ज्यों, करत कलोल अजान।
नहिं जानत ढिग काल-बस, रह्यौ ताकि धरि ध्यान ॥२१॥
ज्यों मृग-मृगियन-जूथ संग, फिरत मत्त मन बांधि[2]।
जानत नाहिंन पारधी[3] रह्यौ काल सर साधि ॥२२॥
निसि-बासर मग करतली[4], लिये काल कर बाहिं।
कागद सम भइ आयु तव, छिन-छिन कतरत ताहिं ॥२३॥
जिहिं तन कों सुर आदि सब, वाँछत है दिन आहिं।
सो पाये मतिहीन ह्वै, वृथा गँवावत ताहिं ॥२४॥
रे मन प्रभुता काल की, करहु जनत ह्वै ज्यों न।
तू फिरि भजन-कुठार सों, काटत ताही क्यों न ॥२५॥
पुरुष सोइ जो पुरिप[5] सम, छाँड़ि भजै संसार।
बियन[6] भजन दृढ़ गहिं रहै, तजि[7] कुटुम्ब परिवार ॥२६॥
सुख में सुमिरे नाहिं जो, राधावल्लभलाल।
तब कैसे सुख कहि सकत, चलत प्रान तिहिं काल ॥२७॥
हौं तो करि बिनती दियो, कंचन काँच बताइ।
इनमें जाकौ मन रुचै, सोई लेहु उठाइ ॥२८॥

सोरठा

तब पावै रस सार, सज्जन यह आवै हिये।

---

१ किसी प्रकार। २ मन लगाकर, प्रेम में पड़कर। ३ बहेलिया। ४ कैंची। ५ पुरीष, बिष्ठा। ६ एकांती। ७ कुटुम्बियों में आसक्ति और ममत्व न लाकर।

बात कहौं बिस्तार भजन-सनेही प्रेम की ॥२९॥

दोहा

यह रस तौ अति अमल है, रहै बिचारत नित्त।
कहत-सुनत 'ध्रुव' 'भजन-सत', दृढ़ता ह्वै हैं चित्त ॥३०॥

भजन कुण्डलिया

हंस-सुता-तट[1] बिहरिबौ, करि बृन्दावन-बास।
कुञ्ज-केलि मृदु मधुर रस-प्रेम विलास-उपास[2]।
प्रेम-बिलास-उपास रहै इकरस मन माहीं।
तिहिं सुख कों कहु कहौं, मोरि मति है अस नाहीं।
'हित ध्रुव', यह रस अति सरस, रसिकनि कियौ प्रसंस।
मुक्तनि छाँड़े चुगत नहिं, मानसरोवर हंस ॥१॥
बृन्दाबिपिन[3] निमित्त है, तिथि[4] बिधि मानै आनि।
भजन तहाँ कैसे रहे, खोयौ अपनो पानि[5] ॥
खोयौ अपनो पानि, मूढ़ कछु समुझत नाहीं।
चंद्रमनिहिं वलै गुहै काँच के मनियनि माहीं ॥
जमुना-पुलिन-निकुंज घन, अद्भुत है रस कौ सदन।
खेलत[6] लाड़िली लाल जहँ, ऐसो है बृन्दाबिपिन ॥२॥
बारबार तौ बनत नहिं यह संयोग अपूर।
मानुष-तन वृन्दाबिपिन, रसिकनि संग बिबिरूप ॥
रसिकनि संग बिबिरूप भजन सर्वोपरि आही।
मनु[7] दै 'ध्रुव' यह रंग[8] लेहु पल-पर अवगाही[9] ॥
जो छिन जात सो फिरत नहिं, करहु उपाय अपार।
सकल सयानप[10] छांड़ि भजु, दुर्लभ है यह बार ॥३॥

---

१ सूर्य-कन्या यमुना। २ उपास्य, इष्ट। ३ वृन्दावन-वास करना गौण है। ४ तिथि...आनि—एकादशी आदि तिथियों को जो प्रधान मानता है। ५ हाथ। ६ खेलते हैं। ७ मन लगाकर। ८ आनन्द। ९ डूबकर। १० चतुराई।

जीव-दशा

चौपाई

जीव-दसा कछु इक सुनु भाई। हरि-जस-अमरत तजि, बिष खाई॥
छिनभंगुर यह देह न जानी। उलटी[1] समुझि अमर हीं मानी॥
घर-घरनी[2] के रंग यों राच्यौ। छिन-छिन में नट[3] कपि ज्यौं नाच्यौ॥
बय गई बीति, जाति नहिं जानी। जिमि सावन-सरिता[4] को पानी॥
माया-सुख में यों लपटान्यौ। विषय-स्वादु ही सरबसु जान्यौ।
आलसमय जब आनि तुलानो[5]। तन-मन की सुधि तबै भुलानी॥१॥

भक्त-नामावली

दोहा

श्रीहित—हरिबंस नाम 'ध्रुव' कहत ही, बाढ़ै आनँद-बेलि।
रंगी उर जगमगै, नवल प्रेम-जुगुल-वर-केलि॥१॥
निगम ब्रह्म[6] परसत नहीं, सो रस सब तें दूरि।
कियौ प्रगट हरिबंसज, रसिकनि जीवन-मूरि॥२॥

स्वामीहरिदास—रसिक अनन्य हरिदासजू गायो नित्यविहार।
सेवा हूँ में दूर किय, बिधि-निषेध-जंजार[7]॥३॥
सघन निकुंजनि रहत दिन, बाढ़यो अधिक सनेह।
एक बिहारी-हेत लगि, छांड़ि दिये सुख देह॥४॥
रंग छत्रपति[8] काहु की, धरी न मन परवाहि।
रहे भींजि रस प्रेम में, लीन्हें कर करवाहि[9]॥५॥*

---

१ अविद्या, कुछ-का-कुछ मान कर; हेर-फेर में पड़कर। २ स्त्री। ३ कलंदर का बंदर। ४ बरसाती नदी, जो जरा-सा पानी बरसने पर उमड़ कर बह जाती है। ५ आ पहुँचा। ६ वेदों में वर्णन किया हुआ अव्यक्त ब्रह्म। ७ जंजाल। ८ बादशाह। ९ मिट्टी का कलेवा, टोंटीदार बर्तन।

* यह दोहा नाभाजी के इस पद्य का स्मरण दिलाता है: "नित नृपति द्वार ठाढ़े रहैं, दरसन आसा जासकी। अस आसधीर-उद्योतकर, रसिक-छाप हरिदास की।"

व्यास—बर किसोर दोउ लाड़िले, नवल प्रिया नव पीय।
प्रगट देखियत जगत में, रसिक व्यास के हीय॥६॥
कहनी[1] करनी करि गयो, एक व्यास इहि[2] काल।
लोक-वेद तजिकैं भजे, राधा-वल्लभलाल॥७॥
प्रेम-मगन नहिं गन्यौ कछु, बरनाबरन[3] बिचार।
सबनि मध्य पायौ[4] प्रगट, लै प्रसाद रस-सार॥८॥
मीराँ—लाज छाँड़ि गिरिधर भजी, करी न कछु कुल-कानि।
सोई मीरा जग-बिदित, प्रगट भक्ति की खानि॥९॥*
ललिता हूँ[5] लई बोलिकैं, तासो हो[6] अति हेत[7]।
आनँद सों निरखत फिरै, वृन्दाबन-रस खेत॥१०॥
नृत्यति नूपुर बाँधिकैं, गावति लै करतार।
बिमल होय भक्तनि मिली, तृनसम गनि संसार॥११॥
बन्धुनि विष ताकों दियो, करि बिचार चित आनि।
सो विष फिरि अमरत भयो, तब लागे पछतानि॥१२॥
अजहूँ सोचि-विचारिकै, गहि भक्तनि-पद-ओट[8]।
हरि कृपाल सब पाछिली, छमिहैं तेरी खोट॥१३॥

---

१ कहनी...गयो-जिसे पंडित और ज्ञानी केवल कहा करते हैं, वह सब व्यासजी प्रत्यक्ष करके दिखा गये। २ कलिकाल। ३ ऊँच-नीच। ४ खाया। ५ यहाँ 'ललित' से स्वामी हरिदासजी से तात्पर्य है। ६ था। ७ प्रेम। ८ शरण।

* नाभाजी के इस पद्य का स्मरण दिलाता है : "लोक-लाज-कुल-शृंखला तजि मीरा गिरिधर भजी।"

आनंदघन

छप्पय

दिल्लीस्वर नृप निमित एक धुरपद नहिं गायौ।
मैं निज प्यारी कहे सभा कों रीझि रिझायौ॥
कुपित होय नृप दिय निकासि बृन्दावन आये।
परम सुजान 'सुजान' छाप पद कवित्त बनाये॥
नादिरसाही ब्रज-रज मिले, किय न नैकु उच्चाट मन।
हरि-भक्ति-बेलि, सेंचन करी, घनआनँद आनंद-घन॥

—गोस्वामी राधाचरण

रसिकवर आनन्दघनजी जाति के कायस्थ थे। इनका जन्म संवत् १७४६ के लगभग हुआ था, और यह संवत् १९९६ में, नादिरशाही में, मारे गये। इनका वास्तविक नाम घनानन्द था, पर कविता यह 'आनन्दघन' नाम से किया करते थे। बादशाह मुहम्मद शाह के यह मीरमुंशी थे। कहते हैं, सुजान नाम की एक वेश्या पर इनका बेहद प्रेम था। यह सदा उसकी आज्ञा पर चला करते थे। एक दिन दरबार में कुछ चुगलखोरों ने बादशाह से कहा, 'हुजूर, मीरमुंशी साहब गाते बहुत अच्छा हैं।' बादशाह ने इन्हें गाने का हुक्म दिया। बहाना बनाकर इन्होंने हुक्म टाल दिया। लोगों ने बादशाह को और भी चढ़ाया। कहा—"हुजूर के कहने से यह न गायेंगे; सुजान अगर इनसे कहे, तो यह फौरन गाने लगेंगे।" ऐसा ही किया गया। तब घनानन्द जी बादशाह की तरफ पीठ और सुजान की तरफ मुँह करके गाने लगे। ऐसी समा बाँध दी, कि सारा दरबार मुग्ध हो गया। बादशाह गाने पर बो खुश खुश हुए। पर इनकी पीठ दिखाने की बेअदबी को बरदाश्त न कर सके। नाराज हो इन्हें शहर से बाहर निकाल दिया। चलते समय इन्होंने सुजान से अपने साथ चलने को कहा। उसने साफ इन्कार कर दिया। सुजान के विरह से पीड़ित मीरमुंशी साहब सीधे बृन्दावन चले गये।

सुजान के प्रति वैराग्य और प्रभु के प्रति अनुराग उत्पन्न हो गया। किंतु 'सुजान' नाम इन्हें इतना प्यारा था कि उसे ये आजीवन न भुला सके। वेश्या के बदले अब श्रीकृष्ण के लिए यह 'सुजान' शब्द का प्रयोग करने लगे। वृन्दावन में जाकर यह निम्बार्क-संप्रदाय में दीक्षित हो गये। वृन्दावन धाम की लगन इनकी इस रचना से कैसी अनन्य सुदृढ़ जान पड़ती है—

गुरुनि बतायौ, राधा-मोहन हूँ गायौ सदा,
सुखद सुहायौ बृन्दावन गाढ़े गहि रे।
अद्भुत अभूत महि-मंडल परे तें परे
जीवन कौ लाहु हा हा, क्यों न ताहि लहि रे।।
आनँद को घन छायौ रहत निरंतर ही,
सरस सुदेह सों पपीहा-पन बहि रे।
जमुना के तीर केलि-कोलाहल-भीर, ऐसी,
पावन पुलिन पै पतित, परि रहि रे।।

संवत् १७७६ में नादिरशाही के समय मथुरा में कुछ बदमाशों ने नादिरशाह के सिपाहियों से जाकर कह दिया—"वृन्दावन में फकीर के भेष में बादशाह का मीरमुंशी रहता है, उसके पास बड़े-बड़े कीमती जवाहरात हैं; उसे जाकर आप लोग क्यों नहीं लूटते?" सिपाहियों ने फक्कड़ आनन्दघन को जाकर घेर लिया। उन्होंने इनसे कहा—"ज़र ज़र ज़र" अर्थात् धन, धन, धन!

आनन्दघनजी ने जर को पलट कर तीन मुट्ठी 'रज' उन पर फेंक दी। उनके पास सिवा ब्रज-रज के और था ही क्या? मजाक समझ कर जालिम सिपाहियों ने उनका एक हाथ काट डाला। तंग करने पर भी ज़ब कुछ हाथ न आया, तब वहाँ से चल दिये। आनन्दघनजी ने अपने किथै पर अपने खून से मरते समय जो कवित्त लिखा था, वह यह कहा जाता है—

बहुत दिनानि की अवधि आसपास परे,
खरे अरबरनि भरे हैं उठि जान कों।

कहि-कहि आवत छबीली-मनभावन कों,
गहि-गहि राखति ही, दै-दै सनमान कों।।
झूठी बतियान की पत्यानि तें उदास ह्वै कैं,
अब ना घिरत 'घनआनँद' निदान कों।।
अधर लगे हैं आनि करिकै पयान प्रान,
चाहत चलन ये संदेसों लै सुजान कों।।

आनन्दघनजी ने 'कृपाकन्द-निबन्ध', 'रसकेलि-बल्ली', 'सुजान-सागर' और 'बानी' नाम के ग्रन्थ रचे। 'बानी' में श्री राधाकृष्ण के बिहार और अष्टयाम-संबंधी पदों का संग्रह है। 'बानी' में पद्य इनकी अन्य रचनाओं की अपेक्षा कुछ शिथिल हैं। यह सवैया छंद लिखने में जितने सफल हुए उतने और छंदों में नहीं। वियोग-शृंगार लिखने में तो उन्होंने कलम ही तोड़ दी। विरह को अंकित करने में अपने ढंग के यह एक कवि थे, इसमें तनिक भी अत्युक्ति नहीं। शुद्ध ब्रजभाषा लिखने में तो यह अद्वितीय माने जाते हैं। इतनी शुद्ध भाषा तो कदाचित् ही किसी कवि की देखने में आयेगी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र इनकी कविता को बहुत पसन्द करते थे। बाबू हरिश्चन्द्र कभी-कभी तो इनका अनुकरण करके सवैया लिखा करते थे। 'शिवसिंहसरोज' में, 'इनकी कविता सूर्य के समान भासमान है' लिखा है। इनकी कविता के परिचय में निम्नलिखित सवैये प्रसिद्ध हैं—

नेही महा, ब्रजभाषा-प्रवीन, और सुन्दरताई के भेद कों जानै।
आगे वियोग की रीति में कोविद, भावना-भेद, स्वरूप को ठानै।।
चाह के रंग में भींज्यो हियो, बिछुरे मिलें प्रीतम सांति न मानै।
भाषा प्रवीन, सुछंद सदा रहै, सो घनजू के कवित्त बखानै।।१।।
प्रेम सदा अति ऊंच लहै, सु कहै इह भांति की बात छकी।
सुनिकै सबके मन लालच दौरे, पै बौरे लखैं सब बुद्धि चकी।।
जग की कविताई के धोखे रहैं, ह्यां प्रबीननि की मति जाति जकी।
समझै कविता घन आनंद की, हिय आँखिन नेह की पीर तकी।।

बाबू अमीरसिंह जी ने स्वकीय हरिप्रकाश प्रेस से, स्वर्गीय जगन्नाथ दासजी 'रत्नाकर' की सहायता से, 'सुजान-सागर' नाम का ४८३ छंदों का एक संग्रह प्रकाशित किया था। रत्नाकरजी आनन्दघन जी की कविता पर अत्यन्त मुग्ध थे। उनका विचार था, कि एक सर्वांगसुन्दर संग्रह घनानन्द का प्रकाशित किया जाय। हर्ष की बात है कि इधर आनंदघन पर दो अच्छे ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं—एक तो शंभुप्रसाद बहुगुना द्वारा संपादित "घन-आनंद" और दूसरा पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का "घनानन्द-कवित्त" काशी-नागरी प्रचारिणी से। संवत् १९६५ में स्व० श्री काशी प्रसादजी जायसवाल द्वारा संपादित इनकी 'विरह-लीला' प्रकाशित हुई थी। किन्तु आनन्दघनजी की जीवनी के संबंध में किसी भी पुस्तक में कोई संतोषजनक वृत्त नहीं लिखा गया। हमें इनका यह थोड़ा-सा वृत्तांत तो, जो ऊपर लिखा गया है, श्रद्धेय पण्डित राधाचरण गोस्वामी द्वारा प्राप्त हुआ।

सुजान-सागर

सवैया

जा[1] हित मात कौ नाम जसोदा[2] सुबस कौ चन्द्रकला-कुलधारी।
सोभा-समूहमयी 'घनआनन्द', मूरति रंग अनंग जिवारी॥
जान[3] महा, सहजै रिझवार, उदार-विलास, सु रासबिहारी।
मेरो मनोरथ पुरवौ[4] तुम हीं मो मनोरथ पूरनकारी॥१॥
मेरोई जीव जो मारतु मोहिं तौ, प्यारे, कहा तुमसों कहनौ है।
आखिन हूँ यहि बानि[5] तजी, कछु ऐसोई भोगनि कौ लहनौ[6] है।
आस तिहारियै ही 'घनआनन्द' कैसैं उदास[7] हुये रहनी है।

---

१ जा...जसोदा—जिन श्रीकृष्ण के कारण नंद की रानी का नाम यशोदा अर्थात् कीर्ति फैलानेवाला हुआ। २ श्रीकृष्ण की मानी हुई माता। 'यशोदा' का अर्थ है यश देनेवाली। ३ प्यारा। ४ पूरा करो। ५ स्वभाव। ६ पाना। ७ निरपेक्ष।

जानिकै होत इतै पै अजान[1] जो, तो बिन पावक ही दहनौ है ॥२॥
इन बाट परी सुधि रावरे भूलनि, कैसैं उराहनौं दीजिए जू।
इक आस तिहारी सों जीजै[2] सदा, घन-चातक की गति लीजिए जू ॥
अब तो सब सीस चढ़ाय लइ, जू कछू मन भाई सु कीजिए जू।
'घनआनन्द', जीवन-प्रान सुजान, तिहारियै बातनि जीजिए[3] जू ॥३॥
जिन[4] आँखिन रूप-चिन्हारि भई, तिनकों नितही दहि[5] जागनि[6] है।
हित-पीर सों पूरति जो हियरो, फिर याहिं कहा, कहु लागनि[7] है ?
'घनआनन्द' प्यारे सुजान सुनौ, जियराहिं सदा दुख-दागनि[8] है।
सुख में मुख चंद बिना निरखै, नख तें सिख लौं बिख-पागनि है ॥४॥
जीव की बात जनाइए क्योंकरि, जान कहाय अजाननि आगौं[8]।
तोरनि मारिकै पीर न पावत, एक-सो मानत रोइबो-रागौं[9] ॥
ऐसी बनी 'घनआनन्द' आनि जू, आनन सूझत सों किन त्यागौं ॥
प्रान मरैंगे भरैंगे बिथा, पै अमोही[10] सों काहु को मोह न लागौं ॥५॥
जिनको नित नीकै[11] निहारति हीं, तिनकों अँखियाँ अब रोवति हैं ॥
पल पाँवड़े पाइनि[12] चाइनि[13] सों, अंसुवानि की धारनि धोवति हैं ॥
'घनआनन्द' जान सजीवनि को, सपने बिन पायेहू[14] खोवति हैं।
न खुलीं-मूँदि जानि परैं, दुख ये, कछु होइ जगैं, पर सोवति हैं ॥६॥
मों बिन जो तुम्हैं और रुची तौ रुचै, न तुम्हें बिन मोहिं, जियौ[15] जू।
सूल भयौ गुन यों जिहि आग की दीप सों बारि[16] वियोग दियौ जू ॥
काहि कहौं 'घनआनन्द' प्यारे, तौ हठ कौन पै आपु लियौ जू।
हाय ! सुजान सुने हीं कहाय क्यौं, मोह[17] जनाइकै द्रोह कियौ जू ॥७॥

---

१ अपरिचित। २ जीते हैं। ३ जीते हैं। ४ जिन...भई—जिन आँखों ने रूप से मित्रता कर ली है। ५ जलती हुई। ६ जागती हैं। ७ लगना है, प्रेम करना है। ८ आगे। ९ राग भी। १० निर्मोही, जिसे दूसरे के प्रेम का ध्यान न हो। ११ भली भाँति। १२ पैरों को। १३ प्रेमभाव से। १४ पाये ही। १५ जीना है। १६ जलाकर। १७ प्रेम।

परकाजहिं देह कों धारे फिरौ, 'परजन्य'[१] जथारथ[२] ह्वै दरसौ ॥
निधि-नीर सुधा के समान करौ, सबहीं बिधि सज्जनता सरसौ ॥
'घनआनन्द' जीवन-दायक हौ, कछु मेरियौ पीर हिये परसौ[३]।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुवानि कों लै बरसौ ॥८॥
धुनि पूरि रहै नित काननि में, अज कों उपराजिबोई[४]-सी करै ॥
मनमोहन गोहन जोहन के, अभिलाष समाजिबोई-सी करै।
'घनआनन्द' तीखियै[५], ताननिसों सर[६] से सुर साजिबोई-सी करै।
कत तें यह बैरिन बाँसुरिया, बिन बाजेई बाजिबोई-सी करै ॥९॥
पहिलै अपनाय सुजान सनेह सो, क्यों फिरि नेह कों तोरिए जू।
निरधार उधार दै धार मँझार, दई गहि बाँह न बोरिए जू ॥
'घनआनन्द' आपके चातक कों गुन बाँधि कै मोह न छोरिए जू।
रस प्याय कै ज्याय[७] बढ़ाय कै आस, बिसास में यों विष घोरिये जू ॥१०॥

कवित्त

एरे बीर, पौन, तेरो सबै ओर गौन[८] बारी,[९]
तोसों और कौन मनौं ढरकौंही बानि दै।
जगत के प्रान ओछे-बड़े तो समान,
'घनआनन्द' निधान सुखदानि दुखियानि दै ॥
जान[१०] उजियारे गुनभारे अंत मोहिं प्यारे,
अब ह्वै अमोही बैठे पीठि पहिचानि दै।
बिरह-बिथा की मूरि आँखिन में राखौं पूरि,
धूरि तिन पायन की हा हा नैंकु आनि दै ॥११॥
राति-द्योस कटक सजेही रहै, दहै दुख,
कहा कहौं, गति या बियोग बजमारे की।

---

१ मेघ; दूसरे के लिए । २ यथा नाम तथा गुणः । ३ जाना । ४ उत्पन्न करना । ५ तीक्ष्ण हो, ऊँचा स्वर । ६ शर, बाण । ७ जिलाकर । ८ गति, प्रवेश । ९ बलिहारी । १० प्यारे । ११ निर्मोही, निर्दय । १२ सेना ।

लियौ घेरि औचक[1] अकेली कै विचारो जीव,
कछू न बसाति[2] यों उपाय बलहारे[3] की ॥
जान प्यारे लागौ न गुहार[4] तौ जुहारि करि,
जूझिकै निकसि टेक गहै पनधारे[5] की।
खेत[6] धूरि चूर-चूर ह्वै मिलैगी, तब,
चलैगी कहानी 'घनआनन्द' तिहारे की ॥१२॥
इंदीबर-दलनि मिलाई सौनजुही[7] गुही,
मुही[8] माल हाल रूप गुन न परै गनै।
पीरी ये पिछौरी[9] छोर सीस पै उलटि राखैं,
केसर विचित्र अंग रंग भाव सों सनै ॥
मुरली में गोरी[10] धुनि टेरी 'आनन्दघन' ह्वै,
तेरे द्वार टहकनि ऊधम घने ठनै।
हा हा, सुजान! आजु दीजै प्रान-दान नैकु,
आवत गुपाल देखि लीजै बन तें बनै[11] हैं ॥१३॥
रसिक रँगीले भली भाँतिन छबीले,
'घनआनन्द' रसीले भरे महासुखसार हैं।
कृपा-घन-धाम[12] स्यामसुन्दर सुजान, मोद—
मूरति सनेही बिना बूझै रिझवार[13] हैं ॥
चाह-आलबाल[14] और अबाँह[15] के कलपतरु,
कीरति-मयंक, प्रेम-सागर अपार हैं।
नित हित[16] संगी मनमोहन त्रिभंगी मेरे,
प्राननि-अधार नंदनंदन उदार[17] हैं ॥१४॥

---

१ अचानक। २ वश। ३ निर्बल की। ४ पुकार। ५ प्रतिज्ञा करनेवाले की। ६ प्रेमरूपी रणक्षेत्र। ७ पुष्प विशेष। ८ लाल। ९ दुपट्टा। १० एक रागिनी जो संध्या समय गायी जाती है। ११ शृंगार किये हुए। १२ कृपा के भंडार। १३ निःस्वार्थ प्रसन्न हो जानेवाले हैं। १४ थाला। १५ अनाथ। १६ प्रेम। १७ कृपालु।

आँखिन कों जे सुख निहारें जमुना के होत,
सो सुख बखाने न बनत देखिबेई है।
गौर स्याम-रूप-आदरस है दरस जाकौ,
गुपुत-प्रकट भावना बिसेखिबेई है॥
जुग कूल सरस सलाँका[1] दीठि परत हीं,
अंजन सिंगार रूप अवरेखिबेई है।
आनन्द के घर माधुरी[2] की झर लागि[3] रहै,
सरल[4] तरंगिनी की गति लेखिबेई है[5]॥१५॥

सवैया

आपुहिं ते मन हेरि हँसे, तिरछे करि नैननि नेह के चाव में।
हाय दई! सु बिसारि दई सुधि, कैसि करौं,सो कहौं, कित[6] जाव में।
मीत सुजान अनीति कहा, यह ऐसी न चाहिए प्रीति के भाव में॥
मोहनि मूरति देखिबे कों, तरसावत हौ बसि एक ही गांव में॥१६॥
दृग फेरिए ना अनबोलिए सों, सर-से[7] ह्वै लगे कत दीजिए जू।
रसनायक[8], दायक ह्वै रस के, सुखदाई ह्वै दुःख न कीजिए जू॥
'घनआनन्द' प्यारे सुजान! सुनौ, बिनती मन मानिकै लीजिए जू।
बसिकै इक गाँव में एहो दई! चित्त ऐसो कठोर न कीजिए जू॥१७॥

दंडक

सदा कृपानिधान हो, कहा कहौ सुजान हो,
अमानि मान-दानि हौ, समान[9] काहि दीजिए।
रसाल सिंधु प्रीति के भरे-खरे[10] प्रतीति के
निकेत नीति-रीति के सुदृष्टि देखि जीजिए॥
ठगी[11] लगी तिहारियै, सुआप त्यों निहारिए,

---

१ सींक, लकीर। २ शोभा। ३ झड़ी, वर्षा। ४ चंचल। ५ देखने ही योग्य है। ६ मैं कहाँ जाऊँ? ७ शर अर्थात् बाण के समान। ८ आनंद-स्वरूप रसमूर्ति। ९ समता, उपमा। १० शुद्ध। ११ मोहिनी।

समीप ह्वै बिहारिए,[1] उमंग रंग भीजिए।
पयोद-मोद[2] छाइए, विनोद कों बढ़ाइए,
बिलंब छाँड़ि आइए, किधौं बुलाइ लीजिए[3] ।।१८।।

दोहा

सुख सुदेस को राज लहिं, भये अमर अवनीस।
कृपा कृपानिधि के सदा, छत्र[4] हमारे सीस ।।१९।।
मो-से अनपहिचानि कों, पहिचानै हरि कौन ?
कृपा काम मधि नैन ज्यों, त्यों पुकारि मधि मौन ।।२०।।
हरि तुमसों पहिचानि कौं, मोहिं लगाव[5] न लेस।
इहि उमंग फूल्यौं[6] रहौं बसौं कृपा के देस ।।२१।।

बिरह लीला*

सलोने स्याम प्यारे क्यों न आवो ? दरस प्यासी मरैं तिनकौं जिवावौ।
कहाँ हौ जू, कहाँ जू, कहाँ हो ? लगे यै प्रान तुमसों जहाँ हौ ।।
रहौ कि न प्रानप्यारे नैन आगे। तिहारे कारने दिन-रात जागे।
सजन[7] हित मानिकैं ऐसी न कीजै। भई हैं बावरी सुधि आय लीजै।
कहीं तब प्यार सों सुखदैन बातें। करौ अब दूर ये दुखदैन घातें।।
बुरे हौ जू, बुरे हौ जू, बुरे[8] हौ। अकेली कै हमें ऐसे दुरे[9] हौ ।।२२।।
लिखैं कैसे पियारे प्रेम-पाती ? लगै असुवन झरी द्वैटूक[10] छाती।।
पर्‌यौ है आनि कैं ऐसो अंदेसो। जरावैं जीव अरु कान न सँदेसो।।

---

१ बिहार कीजिए। २ आनंदरूपी मेघ। ३ शरण दीजिए। ४ राज-छत्र; रक्षा। ५ संबंध। ६ प्रसन्न रहता हूँ। ७ अपने; प्यारे। ८ निठुर हो। यहाँ 'बुरा' शब्द प्यार-भरा गाली में आया है। ९ छिप गए हो। १० दो टुकड़े।

*बिरह-लीला में कई स्थानों पर छंदोभंग दोष दिखाई देता है। संभव है, असल कविता की प्रतिलिपि करते समय असावधानता-वश छंदों में यह दोष आ गया हो। इसकी यदि दूसरी प्रति मिलती तो पाठ ठीक कर लिया जाता। किंतु भावोत्कृष्टता देखते हुए यह दोष ऐसा कुछ अधिक नहीं खटकता।

दसा है अटपटी पिया, आय देखौ। न देखौ तो परेखौ[1] में हौं परेखौ।
अनोखी पीर प्यारे कौन पावै? पुकारौं मौन कहिबे ना आवै॥२३॥
तिहारे मिलन की आसा न छूटै। लग्यो मन बावरो[2] तोरे न टूटै।
अजौं धुन बाँसुरी की कौन बोलै। छबीली छैल डोलन संग डोलै॥
सलौनी स्याम मूरति फिरै आगै। कटाछैं बान-सी उर आन लागैं॥
मुकुट की लटक हिय में आय हालै[3]। चितौनी बंग जिय में आय सालै[4]॥२४॥
हँसन में दसन दुति की होत कौंधै[5]। वियोगी नैन चेटक[6] चाय चौंधै।
वहै तब नैन तें अँसुवन-धारा। चलावै सीस पै बिरहा जू आरा।
इते पै जो न पाऊँ पीर प्यारे। रहै क्यों प्रान ये बिरही बिचारे।
जरावै नीर, तो फिर को सिरावै? अमी[7] मारै कहौ जू को जिवावै?॥२५॥
जु चंदा में झरैं दैया[8] अंगारे। चकोरन की कहौ गति कौन प्यारे।
तिहारे नाम पर हम प्रान वारे[9]। जहाँ हौं जू, तहाँ रहिए, सुखारे।
तुम्हैं निसि-द्यौस मनभावन[10] असीसैं। सजीवन हौ, करौ हम पै कसीसैं[11]।
लगौ जिन लाड़िले कों पौन ताती[12]। सुहाई हैं हमैं तुमकों सुहाती॥२६॥
सुरत कीजै, बिसारे क्यों बनैगी। बिरहिनी यों अवधि[14] कबवलौं गिनैगी।
किये[15] की लाज है ब्रजनाथ प्यारे। विराजो सीस पै जग के उजियारे[16]।
सदा सुख है हमें तुम साथ आछैं। लगी डोलै छबीले, छाँह पाछैं॥
तुम्हें देखैं, तुम्है भेटैं, भले हीं। जगैं सोवैं उठैं बैठें चले ही॥२७॥

---

१ परख लो। २ प्रेमोन्मत्त। ३ हिलतो रहे, झूलतो रहे। ४ चुभती रहे। ५ चमक। ६ जादू। ७ अमृत। ८ हे देव। ९ न्योछावर कर दिये। १० मनमोहन, प्रानप्यारे। ११ निर्दयता। १२ हवा। १३ गरम। १४ मिलने की घड़ी। १५ प्रेम करने की। १६ प्रकाश रूप।

नागरीदास

छप्पय

वल्लभ-पथहिं दृढ़ाइ, कृष्णगढ़ राजहिं छोड़्यो।
धन जन मान कुटुम्बिहि बाधक लखि मुख मोड़्यो।।
केवल अनुभव सिद्ध, गुप्त रस-रचित बखाने।
हिय संजोग-उच्छलित, और सपनेहु नहिं जाने।।
करि कुटी रमन-रेती बसत, संपति-भक्ति-कुबेर भे।
हरिप्रेम-माल-रस-जाल के नागरिदास सुमेर भे।।

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

नागरीदास के नाम एक भक्त कवि श्री वल्लभाचार्य के शिष्य आगरे के निवासी थे। इनकी कथा 'चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता' में आई है। दूसरे नागरीदास स्वामी हरिदासजी की शिष्य-परम्परा में हुए हैं। यह बिहारी-दास जी के कृपापात्र शिष्य थे। तीसरे नागरीदास स्वामी हितहरिवंश के संप्रदाय में तथा चौथे श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के संप्रदाय में हुए हैं। ध्रुव दास जी ने अपनी 'भक्तनामावली' में इनका उल्लेख किया है। भारतेन्दुजी ने भी इनके सम्बन्ध में लिखा है—

श्री बृन्दावन के सूर-ससि, उभय नागरीदास जन।

प्रस्तुत पाँचवें नागरीदास कृष्णगढ़ाधीश महाराज सावंतसिंह जी वल्लभकुल के शिष्य थे। इनका जन्म पौष कृष्ण १२ संवत् १७५६ में हुआ था। 'शिवसिंहसरोज' में इनका जन्म संवत् १६४८ लिखा है। यह सही नहीं है। आश्चर्य है कि, हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर ग्रियर्सन ने भी 'सरोज' पर विश्वास करके बिना इनका कविता-काल देखे ही इनका जन्म संवत् १६४७ मान लिया। पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या ने अपने

लेख 'ऐंटिक्विटी आफ दि पोएट नागरीदास' में इनका जन्म-संवत बहुत युक्ति-पूर्ण लिखा है।

इनके पिता का नाम महाराजा राजसिंह था। महाराजा सावंतसिंह बचपन से ही शूरवीर थे। तेरह वर्ष की अवस्था ही इन्होंने अकेले ही बूंदी के हाड़ा जैतसिंह को मारा था। उस समय राजधानी रूपनगर थी। महाराजा सावंतसिंह का विवाह संवत् १७७७ में भावनगर के राजा यशवंतसिंह की कन्या से हुआ। इनके चार संतति थीं, दो पुत्र और दो कन्याएँ।

संवत् १८०४ में यह दिल्ली के दरबार में गये। पिता के स्वर्गवास के बाद बादशाह अहमदशाह ने इन्हें कृष्णगढ़ का राजा बनाया। कृष्णगढ़ पहुँचने से पहले ही इनके भाई बहादुरसिंह राज्य पर अधिकार कर बैठे थे। इन्होंने बादशाह की सहायता से बहादुरसिंह को परास्त करना चाहा। किन्तु उधर जोधपुर-नरेश का हाथ था! जीत हो तो कैसे? बेचारे मन-मारे ब्रज की ओर चल दिये। वहाँ मरहठों से सन्धि कर ली और उनकी सहायता लेकर बहादुरसिंह को परास्त कर अपने राज्य पर पुनः अधिकार कर लिया। इन घरेलू लड़ाई-झगड़ों से इनका चित्त ऐसा ऊब गया कि राज्य इन्हें एक भार सा प्रतीत होने लगा। लिखते हैं—

जहाँ कलह तहँ सुख नहीं, कलह सुखन कौ सूल।
सबै कलह इक राज में, राजकलह कौ मूल॥
कहा भयौ नृपहूँ भये, ढोवत जग-बेगार।
लेत न सुख हरि-भक्ति कौ, सकल सुखन कौ सार॥
मैं अपने मन-मूढ़ तें, डरत रहत हौं हाय।
बृन्दाबन की ओर तें, मति कबहूँ फिरि जाय॥

ब्रज-वास के लिए आपकी कैसी उत्कंठा थी—

ब्रज में ह्वै-ह्वै कढ़त, दिन किते दिये लै खोय।
'अबकै-अबकै' कहत ही, वह 'अबकै' कब होय॥

वह 'अब' अब आ गया। तीर्थाटन करते हुए आपकी विरक्ति बहुत आगे बढ़ गयी। जहाँ-तहाँ सर्वत्र ब्रज-ही-ब्रज भासने लगा। राज-काज से जी एकदम ऊब गया। सब छोड़-छाड़कर वृन्दावन चले आये। हृदय में भगवद्-भक्ति का बीज तो पहले से ही पड़ा हुआ था, उर्वरा भूमि पाते ही वह अंकुरित, प्रफुल्लित और परिफलित हो उठा। वृन्दावन में पहुँचने का नागरीदासजी ने स्वयं निम्नलिखित छंदों में क्या ही हृदय-स्पर्शी वर्णन किया है—

सुनि व्योहारिक नाम मो, ठाढ़े दूरि उदास।
दौरि मिले भरि नैन सुनि, नाम 'नागरीदास'॥

अर्थात् जब साधु-संतों ने सुना कि कृष्णगढ़ाधीश महाराजा सावंतसिंह आये हैं, तब वे उदासीन भाव से अलग जाकर खड़े हो गये, किन्तु जब यह जाना कि यह तो नागरीदास जी हैं तब सब लोग दौड़-दौड़ कर इनसे प्रेम-पूर्वक गले मिलने लगे।

इक मिलत भुजनि भरि दौरि-दौरि। इक टेरि बुलावत औरि-औरि॥
कोउ चले आत सहजै सुभाय। पद गाय उठत मोहिं सुनाय॥
जे परे धूरि अधि मत्त चित्त। तेउ दौरि मिलत तजि रीति नित्त॥
अतिसय विरक्त जिनके सुभाय। जे गनत न राजा रंक राव॥
ते सिमिटि-सिमिटि फिर आय-आय। फिर छाँड़त पद पढ़वाय गाय॥

जहाँ इन पर और इनकी कविता पर लोग इतने मुग्ध होते थे, भला उस ब्रज-मण्डल को यह क्यों छोड़ने चले। सर्वस्व छोड़ दिया, पर ब्रजरज न छोड़ी, न छोड़ी—

सर्बस के सिर धूरि दै, सर्बस कै ब्रज-धूरि।

वृन्दावन और वृन्दावन-बिहारी पर आप कैसे प्रेमासक्त थे यह नीचे की घटना से भलीभाँति प्रकट हो जाता है। एक बार आप वृन्दावन के उस पार रात के समय पहुँचे, कोई नाव नहीं मिली। जायें तो कैसे? वृन्दावन का क्षण-वियोग भी न सहा गया। सबके समझाने-बुझाने पर भी यमुना में कूद पड़े और तैर कर उसी समय अपने प्यारे वृन्दावन-बिहारी के समीप जा पहुँचे। आपके ही शब्दों में—

देख्यौ श्री वृन्दाबिपिन पार। बिच बहति महा गंभीर धार।
नहिं नाव, नाहिं कछु और दाव। हे दई ! कहा कीजै उपाय।
रहे वार लगनि को लगै लाज। गये पारहिं पूरे सकल काज॥
प्रेम-पंथ कों पीठि दै, यह जीवौं न सुहाय।
मंगल दिन है आजु कौ, प्रिय-सनमुख जिय जाय॥
यह चित्त माहिं करिकैं बिचार। परे कूदि-कूदि जलमध्य धार॥
वार रहे, रहे वार ते, पार भये, भये पार।
दरसे बृन्दाबिपिन बिच, राधा-नन्दकुमार॥

श्री नागरीदासजी ब्रज में रहकर कैसे सन्तुष्ट और सुखी थे, यह बात आपके इस पद से प्रकट होती है :—

हमारी सबहीं बात सुधारी।
कृपाकरी श्रीकुंज-बिहारिनि अरू श्रीकुंज-बिहारी॥
राख्यौ अपने बृन्दाबन में जिहि कौ रूप-उज्यारी।
नित्य केलि आनन्द अखण्डित रसिक संग सुखकारी॥
कलह कलेस न व्यापै इहिंठां, ठौर बिस्व तें न्यारी।
'नागरिदासहिं' जनम जिवायौ, बलिहारी-बलिहारी॥

सफलजीवन भक्ताग्रगण्य महाराजा नागरीदास ब्रजवास करते हुए भाद्र शुक्ल ३ संवत् १८२१ को ६४ वर्ष ७ महीने की अवस्था में गोलोक-वासी हुए।

महात्मा नागरीदास का कविता-काल सं० १७८० से सं० १८१९ तक माना जाता है। इस ४० वर्ष के समय में इन्होंने सहस्रों पद लिख डाले। साहित्य की रसवंती कालिन्दी बहा दी। सुप्रख्यात प्रेमी कवि आनन्दघनजी आपके गहरे मित्र थे। कविता में अपना नाम 'नागरीदास', 'नागरी', 'नागर' और 'नागरिया' रखते थे। आपकी उपपत्नी बनीठनीजी भी 'रसिकबिहारी' की छाप से पद रचा करती थीं। बनीठनीजी नागरीदासजी के साथ अंत तक ब्रज में ही रहीं।

नागरीदासजी वल्लभ कुल के गोस्वामी श्री रणछोड़जी के शिष्य थे।

रणछोड़जी श्रीवल्लभाचार्य की पाँचवीं पीढ़ी में आते हैं। श्री आचार्य जी के पुत्र श्री गोसाईं विट्ठलनाथजी, तिनके श्री गिरिधरजी टीकत, तिनके श्री गोपीनाथजी और तिनके श्री रणछोड़जी थे। यह गद्दी कोटा में स्थित है। नागरीदासजी के सेव्य ठाकुर श्री कल्याणरायजी थे, पर बाहर साथ में श्री नृत्यगोपालजी का स्वरूप रखते थे। आज भी कृष्णगढ़ में श्री कल्याण-राय और श्री नृत्यगोपाल के श्रीविग्रह विराजमान हैं।

नागरीदासजी ने छोटे-बड़े कुल मिलाकर ७५ ग्रंथ रचे, जिनमें दो नहीं मिलते, शेष ७३ ग्रंथों का संग्रह ज्ञानसागर यंत्रालय के अध्यक्ष श्रीधर शिवलालजी ने 'नागर-समुच्चय' के नाम से प्रकाशित किया है। इसके तीन भाग कर दिये गये हैं—'वैराग्य-सागर', 'श्रृंगार-सागर' और 'पद-सागर।' समुच्चय में ६१ पद बनीठनीजी के भी सम्मिलित हैं। उन ७३ ग्रंथों के नाम ये हैं—

१. सिगार-सार; २. गोपी-प्रेम-प्रकाश (सं० १८००); ३. पद-प्रसंगमाला; ४. ब्रज-वैकुंठ-तुला (सं० १८०१); ५. ब्रजसार (सं० १७९९); ६. भोर-लीला; ७. प्रीतिरस-मंजरी; ८. बिहार-चंद्रिका (सं० १७८८); ९. भजनानन्दाष्टक; १०. जुगुलरस-माधुरी; ११. फूल-बिलास; १२. गोधन-आगमन; १३. दोहन-आनन्द; १४. लग्ना-ष्टक; १५. फाग-बिलास; १६. ग्रीष्म-बिहार; १७. पावस-पचीसी; १८. गोपी-बैन-बिलास; १९. रासरसलता; २०. नैनरूप-रस; २१. शीतसार; २२. इश्क चमन; २३. मजलिस-मंडन; २४. अरिलाष्टक; २५. सदा की मांझ; २६. वर्षा ऋतु की मांझ; २७. होरी की मांझ; २८. कृष्ण-जन्मोत्सव-कवित्त; २९. प्रिया-जन्मोत्सव-कवित्त; ३०. मांझी के कवित्त; ३१. रास के कवित्त; ३२. चाँदनी के कवित्त; ३३. दिवारी के कवित्त; ३४. गोवर्द्धन-धारन के कवित्त; ३५. होरी के कवित्त; ३६. फागगोकुलाष्टक; ३७. हिंडोरा के कवित्त; ३८. वर्षा के कवित्त; ३९. भक्ति-मग-दीपिका (सं० १८०२); ४०. तीर्थानंद (सं० १८१०); ४१. फाग-बिहार (सं० १८०८); ४२. बाल बिनोद (सं० १८०९);

४३. सुजानानंद (सं० १८१०); ४४. बन-विनोद (सं० १८०९); ४५. भक्तिसार (सं० १७९९); ४६. देह-दशा; ४७. वैराग्य-वल्ली; ४८. रसिक-रत्नावली (सं० १७८२); ४९. कवि-वैराग्य-वल्लरी (सं० १७९५); ५०. अरिल्ल पचीसी; ५१. छूटक-विधि; ५२. पारायण-विधि-प्रकाश (सं० १७९९); ५३. शिखनख; ५४. नखशिख; ५५. छूटक-कवित्त; ५६. चर-चरियाँ; ५७. रेखता; ५८. मनोरथ-मंजरी (सं० १७८०); ५९. राम-चरित्रमाला; ६०. पद-प्रबोधमाला; ६१. जुगुल-भक्तिविनोद (सं० १८०८); ६२. रसानुक्रम के दोहे; ६३. शरद की सांझ; ६४. साँझी-फूल-बीनन-संवाद; ६५. वसंत-वर्णन; ६६. रसानुक्रम के कवित्त; ६७. फाग-खेलन समेतानुक्रम कवित्त; ६८. निकुंज-विलास (सं० १७९४); ६९. गोविंद-परचई; ७०. बनजन-प्रशंसा; ७१. छूटक-दोहा; ७२. उत्सव-माला; ७३. पद मुक्तावली।

दो अप्राप्य ग्रंथों के नाम 'बैन-विलास' और 'गुप्तरस-प्रकाश' हैं। नागरीदासजी की सारी ही कविता श्रीराधाकृष्ण की भक्ति-रसमयी है। आपने उत्सवों का—विशेषकर होली का वर्णन बड़ा ही विशद और रोचक किया है। आपकी कविता हरिवंश और हरिदासी महात्माओं की बानियों से बहुत मिलती-जुलती है, यद्यपि थे आप वल्लभकुलावलम्बी। आपकी कविता की भाषा ब्रजभाषा और कहीं-कहीं उर्दू-फारसी-मिश्रित भी है। कविता में सर्वत्र विशुद्ध प्रेम की सरस झलक दिखायी देती है। नागरीदास सरीखे महाकवि हिन्दी-साहित्य में इने-गिने ही मिलेंगे। ब्रजभाषा के तो आप अभिमानस्वरूप हैं। 'नागर रस सागर' में से कुछ अनमोल रत्न नीचे दिये जाते हैं—

वैराग्य-सागर

कवित्त

लीला-रस आसव[1] स्रवन पान कीनें हरि—
ग्यानहिं गजक आन नाहिं चहियतु हैं।

---

१ मदिरा।

विधिना कुबेर इन्द्र आदि सब रंक दीसैं,[1]
ऐसे[2] मद छाये पै नमनि[3] गहियतु हैं॥
भावनाहिं भोग में मगन दिन-रैन रहैं,
ताके नैन ताके, नित छाके[4] रहियतु हैं।
और मतवारे[5] मतवारे नाहिं 'नागर' वै,
प्रेम-मतवारे मतवारे कहियतु हैं ॥१॥

सवैया

'नागर' वेद पुरान पढ़यो सब बादि[6] कै कीन्हीं कई मति पाँगुरी[7]।
गंग औ'र गोमती न्हात फिरयो अति सीत में प्रीत सों हाथ लै काँगुरी॥
गल्यका[8] न्हाय गोदावरी न्हायो सु त्यागि दी अन्न रखावत सागुरी[9]।
और हूँ न्हायो सु मैं न बदी[10], जु पै नेह[11]-नदी में न दी पग-आँगुरी ॥२॥

कवित्त

काहे कोरे[12] नाना मत सुनै तू पुरानन के,
तैंही कहा तेरी मूढ़ गूढ़ मति पंग की।
वेद के विवादनि को पावैगो न पार कहूँ,
छाँड़ि देहि आसा सब दान-न्हान गंग की॥
और सिद्ध सोधे[13] अब 'नागर' न सिद्ध कछू,
मानि लेहि मेरी कही बारता सुढंग[14] की।

---

१ दिखाई देते हैं। २ ऐसे...गहियतु हैं—भगवद्भक्ति रूपी मदिरा पान कर ऐंठ नहीं आती, बल्कि नम्रता आ जाती है। ३ नम्रता, शील। ४ छके हुए। ५ मतवाले, मदोन्मत, किसी मत या धर्म के मानने वाले। ६ व्यर्थ। ७ लँगड़ी; किंकर्त्तव्यविमूढ़। ८ नदी-विशेष। ९ साग, फल-फलहारी। १० मानी। ११ नेह नदी...आंगुरी—यदि प्रेमरूपी नदी में पैर की अंगुली नहीं डुबोई, अर्थात् यदि प्रेम के निकट नहीं गये। १२ व्यर्थ, कष्टसाध्य, रूखे-सूखे। १३ साधने से, खोजने से। १४ सुख।

जाहि ब्रज भोरे[1], कोरे मन को रँगाइ लै रे।
बृन्दाबन-रैन[2] रची गौर-स्याम-रंग[3] की ॥३॥

अडिल्ल

संग फिरत है काल, भ्रमत नित सीस पर।
यह तन अति छिनभंग, धुँवें को धौं लहर॥
यातें दुरलभ साँस[4] न वृथा गमाइए।
ब्रज-नागर नंदलाल सु निसिदिन गाइए॥४॥
चली जाति है आयु जगत-जंजाल में॥
कहत टेरिकैं घरी-घरी घरियाल[5] में॥
समै चूकिकैं काम न फिरि पछताइए।
ब्रज-नागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए॥५॥
सुत-पित-पति-तिय मोह महादुखमूल है।
जग-मृग-तृस्ना देखि रह्यौ क्यों भूल है?
स्वपन-राज-सुख पाय न मन ललचाइए।
ब्रज-नागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए॥६॥
कलह-कलपना, काम-कलेस निबारनौ।
परनिंदा परद्रोह न कबहुँ बिचारनौ॥
जग-प्रपंच[6]-चटसार[7] न चित्त पढ़ाइए।
ब्रज-नागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए॥७॥
अंतर कुटिल कठोर भरे अभिमान सों।
तिन के गृह नहिं रहैं संत सनमान सों।
उनकी संगति भूलि न कबहूँ जाइए।
ब्रज-नागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए॥८॥
कहूं न कबहूं चैन जगत दुखकूप है।

---

१ सबेरे; जल्दी। २ रँगने का बर्तन। ३ राधाकृष्ण की भक्ति। ४ व्यर्थ समय नष्ट नहीं करना चाहिए। ५ घंटा। ६ सांसारिक जंजाल रूपी। ७ पाठशाला।

हरि-भक्तन कौ संग सदा सुखरूप है॥
इनके ढिग आनंदित समैं बिताइए।
ब्रज-नागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए॥९॥
कृष्ण-भक्ति-परिपूरन जिनके अंग हैं।
दृगनि परम अनुराग जगमगै[1] रंग हैं॥
उन संतन के सेवत दसधा[2] पाइए।
ब्रज-नागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए॥१०॥
ब्रज-बृन्दाबन स्याम-पियारी भूमि हैं।
तहँ फल-फूलनि-भार रहे द्रुम झूमि हैं॥
भुव दंपति-पद-अंकनि लोट लुटाइए।
ब्रज-नागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए॥११॥
नंदीस्वर,[3] वरसानो[4], गोकुल गाँवरो।
बंसीबट संकेत[5] रमत तहँ साँवरो॥
गोवर्धन राधाकुंड[6] सु जमुना जाइए।
ब्रज-नागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए॥१२॥
नंद-जसोदा, को रति, श्रीवृषभान हैं।
इनतें बड़ो न कोऊ जग में आन हैं॥
गो-गोपी-गोपादिक - पद - रज ध्याइए।
ब्रज-नागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए॥१३॥

---

१ प्रकाशित हो रहा है। २ भक्ति के दस प्रकार, प्रायः भक्ति नौ प्रकार की मानी गयी है—अर्थात् श्रवणं कीर्तनं, विष्णोः स्मरणं पाद-सेवनम्। अर्चनम् वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्। 'नारद-भक्ति सूत्र' में दसवीं और ग्यारहवीं भक्ति का भी उल्लेख आया है, जिनके नाम 'प्रेमासक्ति' और 'परम विरहासक्ति' है। ३ ब्रज का एक पवित्र स्थान। ४ महाराज वृषभानु का गाँव, जो नंदगाँव के समीप ही है। ५ स्थान विशेष। ६ एक कुंड जो गोबर्द्धन के समीप है; श्रीहितहरिवंशजी प्रायः यहीं रहा करते थे।

बँधे उलूखल लाल[1] दमोदर हारिकैं।
बिस्व[2] दिखायो बदन वृक्ष दिय तारिकैं।।
लीला ललित अनेक पार कित पाइए।
ब्रज-नागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए।।१४।।
मेटि महोच्छव[3] इन्द्र कुपित कीन्हों महा।
जल बरसायो प्रलयकरन कहिए कहा।।
गिरि धरि करो सहाय सरन जिहि जाइए।।
ब्रज-नागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए।।१५।।
राधा-हित ब्रज तजत नहीं पल साँवरो।
नागर नित्य विहार करत मनभावरो[4]।।
राधा-ब्रज-मिश्रित जस रसनि रसाइए[5]।
ब्रज नागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए।।१६।।
ब्रज-रस-लीला सुनत न कबहुँ अघावनो।
ब्रजभक्तन, सत-संगति प्रान पगावनो।।
'नागरिया' ब्रजवास कृपा-फल पाइए।
ब्रज-नागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए।।१७।।

पद

हम ब्रज सुखी ब्रज के जीव।
प्रान तन मन, नैन सर्वसु, राधिका को पीव[6]।।

---

१ दामोदरलाल; श्रीकृष्ण का यह नाम उलूखल बंधन के बाद पड़ा। २ विश्व. . .बदन—एक बार श्रीकृष्ण ने बाल-भाव से कुछ मिट्टी खा ली। यशोदा ने डाँटकर मुँह से मिट्टी उगलने को कहा। श्रीकृष्ण ने ज्योंही मुँह खोला, यशोदा देखती क्या हैं कि इतने छोटे मुँह में सारा विश्व समाया हुआ है। इस विराट्दर्शन को नारायणीय लीला देखकर उनका सारा मोह भंग हो गया। ३ महोत्सव, इन्द्रपूजा। ४ मनचाहा, प्राण-प्यारा। ५ रसों का वर्णन कर या अनुभव कर आनन्द लूटना चाहिए। ६ प्यारा।

कहाँ आनंद मुक्ति में, यह कहाँ मृदु-मुसकान।
कहाँ ललित निकुंज-लीला, मूरलिका-कलगान॥
कहाँ है यह सरद-रजनी, जोन्हि[1] जगमग जोति।
कहाँ नूपुर-बीन-धुनि मिलि रास-मंडल होति॥
कहाँ पाँति कदंब की, झुकि रहीं जमुना-बीच।
कहाँ रंग-बिहार फागुन, मचत केसर-कीच॥
कहाँ लंगर[2] सखा मोहन, कहाँ उनकी हाँसि।
कहाँ गोरस छांछि[3] टैंटी[4], छाक रोटी रासि॥
कहाँ स्रवनन, कीरतन, जगमगनि दसधा रंग॥
कहाँ गद्गद रोमहर्षन, प्रेम पुलकित अंग॥
जहाँ एती वस्तु पैयत, बीच वृन्दाधाम।
हौंऽव[5] ऐसे ब्रज सुखद सों काहि रे, बेकाम॥
'दास नागर' चहत नहिं सुख, मुक्ति आदि अपार।
सुनहु ब्रज बसि श्रवन में ब्रजवासिनिन की गार[6]॥१८॥

हमारे मुरलीवारो स्याम।
विनु मुरली बनमाला चंद्रिका, नहिं पहिंचानत नाम॥
गोपरूप वृन्दावन-चारी, ब्रज-जन-पूरन-काम।
याही सों चित्त बढ़ौ नित, दिन-दिन पल छिन जाम॥
नंदीसुर, गोवर्द्धन, गोकुल बरसानों विस्राम।
'नागरिदास' द्वारिका मथुरा, इनसों कैसो काम॥१९॥*

---

१ चाँदनी। २ उत्पात करने वाले, छेड़खानी करने वाले। ३ मट्ठा। ४ करील का फल; इसका अचार रखा जाता है। ५ हौं अँब। ६ प्रेम भरी गालियाँ।

*नागरीदासजी ब्रजवासी श्रीकृष्ण के उपासक थे। उन्हें ब्रज के आगे मथुरा और द्वारका का राजैश्वर्य तुच्छ जान पड़ता है। इस पद में 'माधुर्य भावानन्यता' का बड़ा ही मनोरम वर्णन किया गया है।

चरचा करी कैसे जाय।
बात जानत कछुक हमसों, कहत-जिय थहराय।
कथा अकथ सनेह की, उर नाहिं आवत और।
बेद-सुमृति[1]-उपनिषद[2] कों, रहीं नाहिंन ठौर॥
मनहिं में है कहनि ताकी, सुनत[3] स्रोतानैन।
सोऽब[4] 'नागर' लोग बूझत, कहि न आवत बैन॥२०॥

कहाँ वे सुत नाती हय हाथी।
चले निसान बजाइ अकेले, तहँ कोउ संग न साथी॥
रहे दास-दासी मुख जोवत, कर मीड़ैं सब लोग।
काल गह्यौ तब सबहीं छांड़्यौ, धरे रहे सब भोग॥
जहाँ तहाँ निसिदिन विक्रम को भट्ट[5] कहत बिरदत्त[6]।
सो सब बिसरि गये एकै रत, 'राम नाम कहैं सत्त'॥
बैठन देत हुते नहिं माखी, चहुँ दिसि चँवर सचाल।
लिये हाथ में लट्ठा ताकौ, कूटत मित्र कपाल॥
सौंधे[7]-भीगो गात जारिकैं, करि आये बन ढेरी।
घर आये तें भूलि गये सब, धनि माया हरि तेरी॥
'नागरिदास' बिसारिए नाहीं, यह गति अति असुहाती।
काल-व्याल को कष्ट निवारन, भजि हरि जनम-सँगाती[8]॥२१॥

जो मेरे तन होते दोय।
मैं काहू तें कछु नहिं कहतो, मोतें कछु कहतो नहिं कोय॥
एक जुतन हरि-बिमुखनि के सँग रहतो देश-विदेश।
विविध भांति के जग-दुख-सुख जहँ, नहीं भक्ति-लवलेस॥
एक जुतन सतसंग-रँग रंगि, रहतो अति सुख-पूरि।

---

१ स्मृतिः धर्मशास्त्र-संबंधी ग्रंथ। २ अध्यात्मविद्या-संबंधी ग्रंथ। ३ जिसे नेत्र-रूपी श्रोता ही सुनते हैं; अर्थात् जो देखते ही बनता है, कहते नहीं। ४ सो अब। ५ भाट, बंदीजन। ६ यश। ७ सुगंध, इत्र। ८ सदा साथ रहनेवाला।

जनम सफल कर लेतो ब्रज बसि, जहँ ब्रज-जीवनमूरि ॥
द्वै तन विन द्वै काज न ह्वै हैं, आयुसु छिन-छिन छीजै[1]।
'नागरिदास' एक तन अब, कहा कहा करि लीजै ॥२२॥

दरपन[2] देखत देखत नाहीं।
बालापन फिरि प्रगट स्याम कच, बहुरि स्वेत होइ जाहीं।
तीन रूप या मुख के पलटे, नहिं अयानता[3] छूटी।
नियरे आवत मृत्यु न सूझत, आँखें हिय की फूटी ॥
कृष्ण-भक्ति-सुख लेन न अजहूँ, वृद्ध देह दुख-रासी।
'नागरिया' सोई नर निहचै, जीवत नरक-निवासी ॥२३॥

हरिजू अजुगत[4] जुगत करेंगे।
परवत ऊपरवहल[5] काँच की नीके लै निकरेंगे ॥
गहिरे जल पाषान नाव बिच, आछी भाँति तरेंगे।
मैन तुरंग[6] चढ़े पालक बिच, नाहीं पघरि[7] परेंगे।
याहू ते असमंजस हो किन, प्रभु, दृढ़ करि पकरेंगे।
'नागर' सब आधीन कृपा के, हम इन डर न डरेंगे ॥२४॥

दुहुँ भांतिन को मैं फल पायौ।
पाप किये तातें विमुखन संग, देस-देस[8] भटकायो ॥
तुच्छ कामना-हित कुसंग बसि, झूठे लोभ लुभायो।
कौन पुन्य अब वृन्दावन बरसाने सुबस[9] बसायो ॥

---

१ क्षीण होती चली जा रही है। सारांश यह कि एक शरीर से पूरे तौर पर एक ही काम हो सकता है। २ दरपन . . . नाहीं—दर्पण में मुंह देखता हुआ भी यह नहीं देखता कि बुढ़ापा और मौत पास आती जाती है। ३ अज्ञानता। ४ अयुक्त, असंभव। ५ काँच की गाड़ी जो पत्थर की ठोकर से टूट-फूट जाती है। ६ मोम का घोड़ा। ७ पिघलेंगे नहीं। ८ नागरीदास जी को बादशाह की ओर से क़ाबुल की लड़ाई में जाना पड़ा था। दूसरे गृह-कलह-वश इधर-उधर भागना पड़ा था, यही उल्लेख इस पद में किया गया है। ९ स्वतन्त्र, सुखपूर्वक।

आनँदनिधि ब्रज-अनन्य[1]-मंडली, उर लगाय अपनायो।
सुनिबेहूँ कों दुर्लभ सो सब, रस-बिलास दरसायो।।
स्यामा-स्याम 'दास-नागर' को, कियो मनोरथ भायो।।२५।।

हमारी तुमसों हरि, सुधरेगी।
बहुत जनम हम जनम बिगार्‌यो, अबहू बिगरि परेगी?
प्रीति-रीति पूरन नहिं, कैसे माया-व्याधि टरेगी।
'नागरिया' की सुधरेगी जो, अँखियां इतहिं ढरेंगी।।२६।।

हमारी सब ही बात सुधारी।
कृपा करो श्री कुंजबिहारिनि, अरु श्रीकुंजबिहारी।।
राख्यो अपने बृन्दाबन में, जिहि ठां[2] रूप-उजारी[3]।
नित्यकेलि-आनन्द अखंडित, रसिक संग सुखकारी।।
कलह-कलेस न ब्यापै इहि ठाँ, ठौर बिस्व[4] तें न्यारी।
'नागरिदासहिं' जनम जितायो, बलिहारी, बलिहारी।।२७।।*

ब्रज के लोग सब ठग महा।
आप ठग, ठग[5] के उपासक, अधिक कहिए कहा।।
कनक-बीज[6]-सी बचन-रचना, देत तनिक चखाय।
बावरो ह्वै रहत सो फिरि, धाम धन बिसराय।।
छाड़िकै[7] रज लुटत रज में, दीन दीसत अंग।
और जग-सुख-रंग उड़िकैं, चढ़त कारो-रंग[8]।।
भूमि ठग, द्रुम-देस ठग इत, ठगे स्याम सुजान।।
राखै सयानप सोऽब इनके, और कौन समान।।

---

१ अनन्य भक्तों की मंडली। २ स्थान। ३ दिव्य-स्वरूप का नित्य प्रकाश। ४ पाँच-भौतिक संसार से परे के (गोलोक)। ५ ठग के उपासक—भक्तों के मन को ठगनेवाले श्रीकृष्ण के उपासक। ६ सोने के ऐसे बीज ही मधुर और प्यारे। ८ छाड़िकैं . . . रज में—राजसी अहंकार छोड़कर ब्रज की धूल में लोटते हैं। ८ श्रीकृष्ण का रंग।

* आत्म-तुष्टि का यह बड़ा ही उत्तम पद है।

इहाँ आवत ही परत दृढ़ प्रेम की गर-पास[1]।
भूलि ह्यां कोउ आइयो मति कहत 'नागरिदास॥२८॥*

भक्ति बिन हैं सब लोग निखट्टू[2]।
आपस में लड़िबे-भिड़िबे कों, जैसे जंगी टट्टू[3]॥
नित उनकी मति भ्रमत रहति है, जैसे लोलुप लट्टू।
'नागरिया' जग में वे उछरत, जिहि बिधि नट के बट्टू[4]॥२९॥

बृन्दाबिपिन रसिक-रजधानी।
राजा रसिकबिहारी सुन्दर, सुन्दर रसिकबिहारिनि रानी॥
ललितादिक ढिग रसिक सहचरी, सुन्दर जुगुल-रूप[5]-मदपानी।
रसिक टहलनी[6] बृन्दादेवी, रचना रुचिर निकुंज सुहानी॥
जमुना रसिक, रसिकद्रुम-बेली, सोहैं रसिक-भूमि सुखदानी।
यहाँ रसिकचर[7] थिर 'नागरिया', रसिकहि रसिक सबै गुनगानी॥३०॥

किते दिन बिन बृन्दावन खोये।
योंहीं बृथा गये ते अवलौं, राजस-रंग समोये[8]॥
छाँड़ि पुलिन फूलनि की सेज्या सूल-सरनि सिर सोये।
भीजैं[9] रसिक अनन्य न दरसे, बिमुखनि के मुख जोये[10]॥
इकरस[11] ह्यां के सुख तजिकै, कबौं हँसे कबौं रोये।
कियो न अपनो[12] काज, पराये भार सीस पर ढोये॥
पायौ नहिं आनन्द-लेस मैं सबै देस टकटोये[13]।
'नागरिदास' बसे कुंजन में, जब सब बिधि सुखभोये[14]॥३१॥

---

१ फंदा। २ पुरुषार्थ-हीन। ३ लड़ाके घोड़े। ४ बटा, लोहे का गोला जिसे नट लोग उछाला करते हैं। ५ रूप रूपी मद्य पानेवाला। ६ दासी। ७ चैतन्य। ८ लीन। ९ भाव में सराबोर। १० देखे। ११ सदा एक-सा रहनेवाला; अखंड। १२ आत्म-सुधार। १३ खोज डाले। १४ भोगे।

*प्रेमपूर्ण-व्यंग्य का यह क्या ही सुन्दर पद है।

जो सुख लेत सदा ब्रजवासी।
सो सुख सपनेहुँ नहिं पावत, जे जन हैं बैकुंठ-निवासी॥
ह्यां घर-घर ह्वै रह्यो खिलौना, जगत कहत जाकों अबिनासी।
'नागरिदास', बिस्व तें न्यारी, लगि गई हाथ, लूट सुखरासी॥३२॥

ब्रजवासी तें हरि की सोभा।
बैनु अधर छवि भये त्रिभंगी, सो वा ब्रज की गोभा॥
ब्रज-बन-धातु विचित्रि मनोहर, गुंज-पुंज अति सोहैं।
ब्रजमोरनि कौ पंख सीस पर, ब्रज-जुवती-मन मोहैं॥
ब्रज-रज नीको लगति अलक पै, ब्रज-द्रुम फल उरमाल।
ब्रज-गउवन के पीछे आछैं आवत मद-गज[1]-चाल॥
बीच लाल ब्रजचंद सुहाये, चहूँ ओर ब्रज-गोप।
'नागरिया' परमेसुरहू की ब्रज तें वाढ़ी ओप[2]॥३३॥

ब्रज सम और कोउ नहिं धाम।
या ब्रज में परमेसुरहूँ के सुघरे सुन्दर नाम॥
कृष्णनाँव यह सुन्यो गर्ग[3] तें, कान्ह-कान्ह कहि बोलैं।
बाल-केलि-रस-मगन भये सब, आनन्द-सिन्धु-कलोलैं॥
जसुदानंदन, दामोदर, नवनीत[4]-प्रिय, दधिचोर।
चोर-चोर, चित-चोर, चिकनिया[5], चातुर नवलकिसोर॥
राधा-चंद-चकोर-साँवरो, गोकुलचन्द, दधिदानी[6]।
श्रीवृन्दाबन-चंद, चतुर चित, प्रेमरूप अभिमानी॥
राधारमन, सु राधाबल्लभ, राधाकांत रसाल।
बल्लभ-सुत[7], गोपीजन-बल्लभ गिरिवर-धर, छबि-जाल[8]॥
रासबिहारी, रसिकबिहारी, कुंजबिहारी, स्याम।

---

१ मस्त हाथी। २ तेज; शोभा। ३ यादव-वंशियों के कुलगुरु। ४ जिनको मक्खन प्यारा है। ५ छैला। ६ दही का दान मांगनेवाले ७ श्रीवल्लभाचार्य के पुत्र। ८ अत्यंत सुन्दर।

बिपिनबिहारी, बंकबिहारी[1], अटलबिहारऽभिराम[2] ॥
छैलबिहारी, लालबिहारी, बनवारी, रसकन्द[3] ।
गोपीनाथ, मदनमोहन, पुनि बंसीधर, गोविन्द ॥
ब्रजलोचन, ब्रजरमन, मनोहर, ब्रजउत्सव,[4] ब्रजनाथ ।
ब्रजजीवन, ब्रजबल्लभ सबके, ब्रजकिशोर सुभगाथ[5] ॥
ब्रजभूषण, ब्रजमोहन, सोहन,[6] ब्रजनायक ब्रजचंद ।
ब्रजनागर, ब्रजछैल, छबीले, ब्रजवर श्रीनँदनंद ॥
ब्रज-आनँद, ब्रजदूलह नितही, अति सुन्दर ब्रजलाल ।
ब्रज-गउवन के पाछै आछै,[7] सोहत ब्रजगोपाल ॥
ब्रज-संबंधी नाम लेत ये, ब्रज की लीला गावै ।
'नागरिदासहिं' मुरलीवारो, ब्रज को ठाकुर भावै ॥३४॥

मनोरथ मंजरी*

दोहा

मो नैनन की ठौर कौं, कब[8] लैहै वह रूँध ।
तीन-ताप-सीतलकरन, सघन तरुन[9] की धूंघ ॥३५॥
कब बृन्दाबन-धरनि में, चरन परैंगे जाय ।
लोटि धूरि धरि सीस पर, कछु[10] मुखहूँ में पाय ॥३६॥
पिक, केकी, कोकिल-कुहुक, बन्दर-बृन्द अपार ।
ऐसे तरु लखि निकट कब, मिलिहौं बाँह पसार ॥३७॥

---

१ बाँकेबिहारी । २ बिहार-अभिराम—सुन्दर बिहार करनेवाले । ३ आनंदकंद । ४ ब्रज को सुख देने वाले । ५ पवित्र है कथा जिनकी । ६ सुन्दर । ७ अच्छे, सुन्दर । ८ कब...रूँध—वह कब ढंक लेगी । ९ तरुन को घूंघ पेड़ों को अँधेरी छाया । १० कछु...पाय थोड़ी-सी मुंह में भी डालकर ।

*नागरीदास की सर्वप्रथम रचना यही है। इसका रचनाकाल सं० १७८० है।

कबै रसीली कुंज में, हौं करिहौं परबेस[१]।
लखि-लखि लताजु लहलही,[२] चित ह्वैगो आबेस[३]॥३८॥

प्रिय-परिकर के सुघरजन, बिरहा-प्रेम-निकेत[४]।
देखि कबै लपटायहौं, उनतें हिय करिहेत[५]॥३९॥

कछु मोहूँ में प्रेम लखि, तब औरन तें फाट।
कबै पुलिन[६] लै जाहिंगे, करन मानसी[७] ठाट॥४०॥

जमुना-तट निसि चाँदनी, सुभग पुलिन में जाय।
कब एकाकी[८] होयहौं, मौन बदन उर चाय[९]॥४१॥

जुगलरूप-आसव-छक्यो, परे रीझ के पान।
ऐसे संतन की कृपा, मोपै दंपति[१०] जान[११]॥४२॥

कुंडल-झलक कपोल पर, राजति नाना भाँति।
कब इन नैननि देखिहौं, बदन, चंद की कांति[१२]॥४३॥

दमक दसनि, ईषद[१३] हँसनि, उपमा समसर[१४] है न।
फलि परत किरननि-निकर, कब देखौं इन नैन॥४४॥

कब दुखदाई होयगो, मोको बिरह,[१५] अपार।
रोय-रोय उठ दौरिहौं, कहि-कहि, किन सुकुवाँर[१६]॥४५॥

ता दिन हीं तें छूटिहै; खान-पान अरु सैन।
छीन देह, जीरन बसन, फिरिहौं हिये न चैन॥४६॥

चरन छिदत काँटेन तें, स्रवत रुधिर, सुधि नाहिं।
पूँछत हौं फिरिहौं भटू[१७] खग, मृग, तरु बन माहिं॥४७॥

---

१ प्रवेश। २ हरो-भरो। ३ प्रेमानन्द। ४ प्रेम-स्वरूप। ५ प्रेम। ६ किनारा। ७ मानसो शृंगार; भगवान् की मानसी भावना। ८ अकेला, विरक्त। ९ चाह, प्रेम। १० श्रीराधाकृष्ण। ११ प्यारे। १२ कांति। १३ मंद-मंद। १४ बराबरो। १५ भगवद् विरह; विरहासक्ति सर्वोत्कृष्ट भक्ति है। १६ सुकुमार; श्रीराधाकृष्ण। १७ गोपीजन।

हेरत, टेरत डोलिहौं, कहि-कहि स्याम सुजान।
फिरत-गिरत बन सघन में, यौंही छूटिहैं प्रान॥४८॥
कबै मनोरथ सिद्ध ये, ह्वैहैं मेरे लाल।
सतसंगति तें दूर नहिं, जानै रसिक रसाल॥४९॥
परम मित्र[1] आग्या दई, मेरेहूँ हित बास।
नवल 'मनोरथ-मंजरी', करी[2] 'नागरीदास'॥५०॥
जो बाँचै सीखै सुनै, रीझि करै फिरि प्रस्न[3]।
सो सतसंगति कीजियौ, पहुँचै 'जय श्रीकृस्न'[4]॥५१॥

पद

नंद-सुत नित्यरस बाललीला - मगन,
उदधि आनन्द गोकुल कलोलैं।
गौर[5] अरु स्याम अभिराम भैया दोऊ,
ललित लरिकान लिय संग डोलैं॥
भवन प्रति भवन चलि चोरहीं दूध दधि,
रतन भूषन बदन तन उजेरैं।
खात, लपटात ढरिकात[6] फिरि हँसि भजत,
चकृत ह्वै भवन निज भलन हेरैं॥
कबहुँ गहि-गहि फिरत पूँछ बछियान की,
किंकिनी कनक कटि मधुर बाजैं॥
गोप-गोपिन मन दृगनि से खिलौना खिलत,[7]
मुख-कमल मुरि[8] हँसनि भ्राजैं॥

---

१ यहाँ परम मित्र से, जान पड़ता है, कविवर आनंदघनजी से आशय है। २ रची। ३ प्रश्न। ४ उसे मेरी 'जय श्रीकृष्ण' पहुँचे। वल्लभ-कुलावलंबी वैष्णव आपस में 'जय श्रीकृष्ण' कहकर दंडवत् प्रणाम करते हैं। ५ रोहिणी के पुत्र श्रीबलभद्रजी। ६ गिरा देते हैं। ७ प्रफुल्लित। ८ मुड़कर।

बदन दधि-छींट-छवि, धूरि-धूसरित अंग,
अबहिं तें मदन-गति पगनि पेलैं।
कंठ बघना[१] दिये पाय पैंजनि झनक,
दास 'नागर'-हिये - अँगन खेलैं ॥५२॥

शृंगार-सागर

दोहा

अरी, छिमा कर मुरलिया, परत तिहारे पाय।
और सुखी सुनि होत सब, महादुखी हम हाय ॥५३॥
कियो न, करिहै कौन नहिं, पिय सुहाग कौ राज।
अरी, बावरी बँसुरिया, मुख-लागी मति गाज ॥५४॥
तो कारन गृह-सुख तजे, सह्यौ जगत कौ घैर।
हमसों तोसों मुरलिया, कौन जनम कौ बैर ॥५५॥
ऐ अभिमानी मुरलिया, करी सुहागिनि स्याम।
अरी, चलाये सबनि पै, भले[२] चाम के दाम ॥५६॥
मुख मूँदे रहु मुरलिया, कहा करति उतपात।
तेरे हाँसी घर-बसी, औरन के घर जात[३] ॥५७॥
हरि चित लियो चुरायकैं, रह्यौं परत नहिं मौन।
तापर बंसी बाज मति, देह कटे पर लौन ॥५८॥
तूहूँ ब्रज की मुरलिया, हमहूँ ब्रज की नारि।
एक बास[४] की कान करि, पढ़ि-पढ़ि मंत्र न मारि ॥५९॥

---

१ बाघ के नख, जो सोने के ताबीज में मढ़ाकर बच्चों को पहनाये जाते हैं। कहते हैं, बघनहा के पहना देने से बच्चों को नजर नहीं लगती। २ झूठे सिक्के भी असल के भाव चला दिए। ३ दूसरों को घर और कुटुम्ब से हाथ धोना पड़ता है। ४ एक जगह पर रहने के नाते तू मर्यादा न तोड़, कुछ तो शील रख।

मति मारै सर तानिकै, नातो इतो विचारि।
तीन लोक सँग गाइए, बंसी अरु ब्रजनारि॥६०॥
सब कौं मन ले हाथ में, पकरि नचाई हाथ।
एक हाथ की मुरलिया, लगि पिय-अधरनि साथ॥६१॥ *
बंस-बंस में प्रगटि भई, सब जग करत प्रसंस।
बंसी हरि-मुख सों लगी, धन्य बंस को बंस॥६२॥
फूँकनि के चल तीर तन, लगे परतु नहिं चैनु।
अँग-अँग आप बिधाइकै, हमहूँ बेधनु बैनु॥६३॥
हा हा![1] अब रहि मौन गहि, मुरली करति अधीर।
मोसी[2] ह्वै जो तू सुनै, तब कछु पावै पीर॥६४॥
सबद सुनावत हमहिं तूँ, देत नहीं छिन चैनु।
अनबोली[3] रहु तनिक तौं, ऐ बकबादी बैनु[4]॥६५॥
थिर[5] कीन्हें चर, चर सुथिर, हरि-मुख मुरली बाजि।
खरब सुकीनो सबनि कों, महागरब सों गाजि॥६६॥

इश्क-चमन

दोहा

इश्क उसी[6] की झलक है, ज्यौं सूरज की धूप।
जहाँ इस्क तहँ आपु है, कादिर नादिर रूप॥६७॥

---

१ तेरी विनय करती है। २ मोसी...पीर-मेरी तरह, हे मुरली, एक क्षण के लिए भी यदि तू गोपी बनकर अपना घातक शब्द सुन ले, तो हमारी वेदना तेरी समझ में आ जाय। ३ मौन। ४ बाँसुरी। ५ थिर...सुथिर—जड़ को चैतन्य और चैतन्य को जड़ बना दिया, ऐसा तेरा प्रभाव है। यह भाव गोसाईं तुलसीदास जी की इस चौपाई से मिलता है—"जो न जनम जग होत भरत को। अचर सचर, चर अचर करत को।' ६ परमात्मा को।

* जो कहीं मुरली के दो हाथ होते, तो न जाने, वह क्या कर डालती!

कहूँ किया नहिं इस्क का, इस्तैमाल सँवार[1]।
सो साहिब[2] सों इस्क वह, करि क्या सकै गँवार॥६८॥
सब मजहब सब इल्म अरु, सबै ऐस के स्वाद।
अरे, इस्क के असर बिन, ये सब हीं बरबाद॥६९॥
आया इस्क-लपेट में, लागी चस्म-चपेट।
सोई[3] आया खलक में, और भरैं सब पेट॥७०॥
कोइ न पहुँचा वहाँ तक, आसिक नाम अनेक।
इस्क-चमन के बीच में, आया मजनूँ[4] एक॥७१॥
इस्क-चमन महबूब का, सँभल पाँउ धरि आव।
बीच राह[5] के बूड़ना, ऊबट[6] माहिं बचाव॥७२॥
इस्क-चमन महबूब का, जहाँ न जावै कोइ।
जावै सो जावै नहीं, जियै सु बौरा[7] होइ॥७३॥*
सीस काटिकैं भू धरैं, ऊपर रक्खै पाव।
इस्क-चमन के बीच में, ऐसा हो तो आव॥७४॥
अरे पियारे, क्या करौं, जाहि रहो है लाग।
क्योंकरि दिल-बारूद में, छिपै इस्क की आग॥७५॥

---

१ संभालकर; मन लगाकर। २ परमेश्वर। ३ सोई....में—उसी का संसार में जीना सफल है। ४ यह बहुत बड़ा प्रेमी था। कहते हैं, जब यह अपनी प्यारी लैला के विरह में मर गया, तब परमेश्वर ने धिक्कारते हुए इससे पूछा कि, अगर तू जितना प्रेम उस नाचीज लैला से करता था, उससे आधा भी मुझसे करता तो आज तू मुक्त हो न हो जाता? इस पर मजनूँ ने जवाब दिया, "अगर आपको अपने पुजाने की ही इच्छा थी तो, लैला का रूप धरकर मेरे पास क्यों न आ गए? मेरे लिए तो लैला ही परमेश्वर है।" ५ शास्त्रोक्त मार्ग। ६ मरे-मिटे प्रेमियों का मार्ग। ७ गूंगा।

*यह दोहा कबीरदासजी की साखियों में भी कुछ पाठ-भेद से पाया जाता है।

आतिस[1] लपटै राग की, पहुँचै दिल विच जाय।
दबी इस्क-बारूद की, भभकनि लागी लाय ॥७६॥

कवित्त

बृन्दाबन-कानन में भीर है बिमानन की,
देवबधू देखि-देखि भई हैं मंनचला[2]।
बंसी कल गान कै बितान धुनि वायु बँध्यो,
रमा लोक लोभित ह्वै भूली उर-अंचला॥
द्वै द्वै-बिच गोपिन के ललित त्रिभंगीलाल,
'नागरिया' पदन्यास[3] वजै छन-छंछला[4]।
रास-रंग-मंडल अखंड रस भेद-हाव,
संग ह्वै भ्रमत मानों मेघ-चक्र चंचला[5] ॥७७॥

दोहा

यह बृन्दाबन, यह समै, यह दम्पति की प्रीति।
'नागरिया' के हिय वसौ, नित-बिहार-रस-रीति॥७८॥

बिहार-चंद्रिका

रोला

उज्ज्वल पख की रैन, चैन उज्ज्वल रसदैनी[6]।
उदित भयौ उडुराज अरुनदुति मन-हर-लैनी॥
दहनमान पुर भये मिलन को मन हुलसावत।
छावत छपा अमंद चंद ज्यों-ज्यों नभ आवत।
जगमगात बन-जोत सोत[7] अमरत-धारा से।
नवद्रुम किसलय दलनि चारु चमकत तारा-से॥

---

१ आग। २ मन चंचल हो गया है जिनका। ३ नृत्य करते समय पैरों को रखना और उठाना। ४ नूपुर का शब्द विशेष। ५ बिजली; यहाँ गोपियों से आशय है। ६ दिव्यानंद देने वाली। ७ स्रोत।

स्वेत रजत की रैन, चैन चित मैन-उमहनी।
तैसिय मंद-सुगंध पौन दिनमनि-दुख-दहनी॥
अधिनायक गिरिराज, पदिक बृन्दाबन-भूषन।
फटिक-सिला मनि-सृंग, जगमगत दुति निर्दूषन॥
सिला-सिला प्रतिचंद चमकि, किरननि छबि छाई।
बिच-बिच अंब कदंब झंच, झुकि पाइन आई॥
ठौर-ठौर चहुँ फेर, ढेर फूलन के सोहत।
आवत सुखद सुगंध अंध-मद,[1] भँवर बिमोहत॥
विमल नीर निरझरत, कहूँ झरना सुखकरना।
महासुगंधित सहज वास, कुंकुम-मदहरना॥
ठौर-ठौर लखि ठौर रहत, मनमथ सो भारी।
बिहरत बिविध बिहार, तहाँ गिरि पर गिरिधारी॥७९॥

---

१ मदांध; मतवाले।

अलबेलीअलि

छप्पय

गुरु-गोबिंद में भेद-भाव नहिं कछुवै मान्यो।
भजन-कीरतन चारु सारु जीवन कौ जान्यो।।
सुघी, सुसील, सुसंत सहजरस-रास-रंगीलो।
निरमत्सर, निरद्वंद्व, कंद नवनेह-रसीलो।।
रचि 'समयप्रबन्ध-पदावली' लली-लाल गुन-गान कर।
श्री बंसीअलि कौ सिष्य श्रीअलबेलीअलि रसिक-वर।।

—वियोगी हरि

अलवेली अलिजी महात्मा बंसीअलिजी (वंशीधर) के कृपापात्र शिष्य थे। वंशीअलिजी प्रसिद्ध कृष्णचन्द्र श्रीनारायण मिश्र की वंश-परंपरा में हुए हैं। श्रीनारायण मिश्र के विषय में नाभाकृत भक्तमाल में यह छप्पय प्रसिद्ध है :

'भागवत भली बिधि कथन कों, धनि जननी एकै जन्यो इत्यादि।'

पूज्यपाद स्वर्गीय श्रीराधाचरण गोस्वामी श्री वंशीअलिजी के विषय में लिखते हैं : "वंशीअलिजी ने बरसाने में श्री ललिताजी की उपासना कर श्रीप्रियाजी का दर्शन पाया। इनका जन्म विक्रम की १८वीं शताब्दी के आदि में हुआ।" गोस्वामीजी ने, इनके सम्वन्ध में, अपनी 'नव भक्तमाल' में यह छप्पय भी लिखा है :

श्री बरसाने बास बरस द्वादस दृढ़ कीनों।
श्री ललिता-सँग आपु लाड़िली दरसन दीनों।।
रहस-केलि-माधुर्य मधुर पद लीला गाई।
प्रेम-पंथ अति गूढ़, तासु पदवी दरसाई।।
श्रीरासेस्वरी-कृपा-कुसल निच परिकर में अपनई।
श्रीबंसीअलि आचार्य श्री ललिता जिमि सहचरि भई।।

वंशीअलिजी के प्रधान शिष्य किशोरीअलिजी थे; इनका यह पद प्रसिद्ध है :

श्री बृन्दावन, बृन्दावन, बृन्दावन कहु रे।
बृन्दावन रज की तू सरन बेगि गहु रे।।

अलबेलीअलिजी के सम्बन्ध में विशेष कोई ऐतिहासिक वृत्त नहीं मिलता। इन्होंने अपने 'गुरुसंबंध' के विषय में––गुर-परम्परा में––केवल इतना ही लिखा है :

पुरुषार्थः शुद्धसख्यं तत्प्रख्यं सर्वमेव हि।
यत्प्रसादान्मया प्राप्तं सा वंश्यालिर्गतिर्मम।।

यह विष्णुस्वामि-संप्रदाय में हुए हैं। इन्होंने संस्कृत में गुरु-परंपरा का आद्यंत वर्णन किया है। अनुमान से इनका जन्म १८वीं शताब्दी के मध्य में माना जा सकता है।

अलबेलीअलिजी का 'समय-प्रबन्ध-पदावली' नाम का एक ग्रंथ संवत् १९५८ में स्वर्गीय जगन्नाथदास जी 'रत्नाकर' द्वारा प्रकाशित हुआ था। इसमें इनके विषय में एक भी पंक्ति नहीं लिखी है। विनोद में भी इनका नामोल्लेख नहीं किया गया है। यह भाषा के सुकवि होने के अतिरिक्त संस्कृत के भी अच्छे पंडित थे। इनका लिखा 'श्रीस्त्रोत' एक सुन्दर काव्य-ग्रंथ है। उदाहरणार्थ, उसमें से नीचे दो श्लोक लिखे जाते हैं :

श्रीराधिकां ललितया सहितां प्रसन्नां,
या लालयत्यतिसुभाषितचारुहासैः।
निःश्रेयसे समभवन्नतियामराणाम्,
सा वंशिकास्फुरतु मे हृदि सुन्दरास्या।।
कमलिनी मलिनी मलिनी कृता,
भुवि न ते विनते विनते स यः।
विशमलं शमलं शमलंकरीं,
भवतु मेवतु मेवतु मेदिनीम्।।

'समय प्रबन्ध-पदावली' में 'अष्टयाम' विषयक ३१३ भावपूर्ण पद हैं। आदि में श्रीबंशअलि-सम्बन्धी सुन्दर 'मंगल' भी है। जान पड़ता है कि गान-विद्या में भी यह परम दक्ष थे। इनके सभी पद संगीत-संगत हैं। कुछ पद नीचे उद्धृत किए जाते हैं—

सूहो

जय जय श्रीबन्सीअलि, जे अनुगत[1] भय।
भर्म भूलि जग-द्वन्द्व, तिमिर हिय के गये॥
प्रेम-सुधारस-सिंधु-मगन मन मीन-से।
निरभय, निरअभिमान, सबन सों दीन-से॥
दीन-से रहैं सतजन सों, रूप में नैना जके[2]।
फिरत झूमत प्रेम-विह्वल मनों भादिक-मद-छके॥
वसि सुबृन्दाबिपिन संतत सुख सुमन भाये लये।
जय जय 'श्रीबंसीअलि' जे अनुगत भये॥१॥
जय जय 'श्रीबंसीअलि' आनँदकंदना।
रसिक-चकोरन हेतु सुप्रगट्यो चंदना[3]॥
बरसत आनँदसिंधु अतिहिं सुखदाइनो।
हियो-नैन मन-पुंज - कुमुद-बिगसाइनो[4]॥
कुमुद बिगसत मोद दिन-दिन किरिन कृपा पसारहीं।
द्वंद्व कलिमल मिटत तम सब जोन्ह[5] हम संचारहीं॥
झलकै सुबैनन माधुरी बिबि रसिकमनि बर राजहीं।
जाके सुहृदय प्रकास है यह कलपतरु बड़ साजहीं॥२॥
जय जय 'श्रीबंसीअलि' आनँद-रूपिनी।
दीनन सदा सहाई सुखद सरूपिनी॥

---

१ अनुगामी; शिष्य। २ स्तंभित; टक लगाये। ३ चंद्रमा। ४ प्रफुल्लित कर देनेवाला। ५ चाँदनी, प्रकाश।

परमप्रेम, गुन, रूप अमित कवि को कहै?
मीन दीन जललीन सु क्यों अंतहिं लहै॥
लहै अंत[1] न कोटि कलपन सारदा मूकू[2] रहै।
जीवन कृपन[3] की का चलै, बिनु तव कृपा जो कछु कहै॥
चरन-रति जो देहु स्वामिनि, जन्म कौ फल पाइए।
'श्रीवंसीअलि' अलबेलि जीवन सुजस तुम्हरो गाइए॥३॥

पद

श्री बंसीअलि प्रान हमारे।
हृदय-कमल-संपुट करि राखूं, अँखियन के बर तारे॥
चरन सरोज सुगति मति मेरी, निरधन धन अनुसारे।
अलबेली, अलिगन मधुकर ह्वै, पीवत रस सुखसारे[4]॥४॥
श्रीबंसीअलि की बलि जाऊँ।
जाकी चरन-सरन-किरपा तें, वृन्दाबन-धन पाऊँ॥
नवनागरि-अलिकुल-चूड़ामनि, रहसि-रहसि[5] दुलराऊँ।
अलबेली, अलि हिय कौ गहिनो, प्रेम-जराइ[6] जराऊँ[7]॥५॥

समय-प्रबन्ध

मंगल

भोरहिं उठि अलिरूप बिचारूँ।
अद्भुत नवल किसोर माधुरी, रूप अनूप निहारूँ॥
करि अस्नान उबटि अँग अंगनि, नाना भाँति सिंगारूँ।
भूषन बसन प्रसादी[8] स्वामिनी, पुलकि-पुलकि उर धारूँ॥
सदा रहूँ ललिताढिक संगी, प्रेम-भरी अनुहारूँ।
अलबेली, श्रीबंसीअलि बलि, महल-टहल[9] अनुसारूँ॥१॥

---

१ पार। २ मूक, मौन। ३ असमर्थ। ४ सुखों का सार; चिदानंद। ५ प्रसन्न हो-होकर। ६ जड़ाव। ७ जड़वाऊँ। ८ अर्पित किया हुआ पदार्थ। ९ सेवा।

भैरव

गुंजन मधुपन, सुनत अली री।
उमगी मनों प्रेम की सरिता, रूप के सिंधु चली री॥
बिहँसत बदन हँसत बिगसत-सी, जनु अनुराग-कली री।
रूप अनूप लखें 'अलबेली' आई वारि भली री॥२॥

भैरव

लीन्हें कर बीन ललित, लाड़िली जगावैं।
प्रेम पुलकि अंग-अंग, दरस सरस अति उमंग;
मधुर-मधुर तान लगी; कान सों सुनावैं॥
झीने पट बदन जोन; कोटि चंद मंद होत,
भूषन द्युति अति उदोत[1] उड़गन चमकावैं।
आरस-रस भरे नयन, छाई मनु मयन-मयन;
रैन की उनींद[2] पलक, झपकि-झपकि जावैं॥
'अलबेली अलि' उरसि लाल, लगी मनों रूपमाल;
मंद-मंद हास बदन, बासि[3] में दुरावैं॥३॥

ललित

लता तू अनोखे ख्याल पर्‍यो है।
अतिही नींदर[4] नैन उनींदे, आरस[5]-रंग भर्‍यो है।
अति आसक्ति[6] भर्‍यो, नहिं जानत, पुहुप प्रभाव कर्‍यो है।
'अलिबेली अलि' तृपित न मानत, किहिं रस-रंग ढर्‍यो है॥४॥

पंचम

बने दोउ रसिक रस-रास मंडल सरस,
सरद की रैन सुखदैन माई।

---

१ उदय; प्रकाश। २ निद्रित। ३ वस्त्र। ४ नींद। ५ आलस्य। ६ अनुराग से भरा हुआ।

परम पावन पुलिन सरस स्वच्छ स्थलनि,
मदन-मद-दवनि[1] ससि-जोन्ह छाई।।
बनी अति चारु जरतारि सारी सुभग,
किरनि चौकोर मुख लहलहाई।
नीलपट, पीत लहरात अंगनि मिथुन[2],
तड़ित घन नील उद्दोतिताई[3]।
लेत ओवर सुघर तालगति तान की,
जगमगत पीक मुख अरुनिमाई।।
ताल मिरदंग लिय संग सजनी खरीं[4],
मुरलि मोहन मधुर सुर वजाई।
देहिं पग थाप[5] आलाप सुर रँगभरीं,
भूषननि अंग छनकनि मिलाई।।
अलक अंगुष्ठ तरजनि गहे पलटि पग,
जात मुसक्यात सुन्दर सुहाई।
परी रसभीर[6] दृग धोर नाहिंन धरें,
निरखि 'अलबेलिअलि', छबि-छटाई।।५।।

छंद चालो

मुरली धुनि बन बाजै। मनो मैन दल साजै।
मनों मैन दल साजि अंग-अंग नौसत[7] सरस बनाये।।
उमगि चलीं अलिकुल सरिता-सी स्रवननि सुनि सचुपाये।
आइ उमँगि चहुँ ओर खरीं मिलि, मंडल अति छबि छाजै।।
कर कंकन किंकिनि पग नूपुर, मुरली धुनि वन बाजै।
खेलत रास रसीले। दम्पति छैल छबीले।।

---

१ दमन करनेवाली। २ संयुक्त। ३ प्रकाश। ४ खड़ी हैं। ५ ताल। ६ आनंद का समूह। अत्यधिक आनंद। ७ नौ और सात; सोलह शृंगार।

दंपति रंग रँगी सँग सजनीं महि-मंडल पर डोलैं।
बीच-बीच नव नागरि सुन्दरि तत्ता थेइ-थेइ बोलैं।।
भूषन बसन बने अंग-अंगनि, फहरत पट चटकीले।
करत बिलास हास-रस बरसत, खेलत रास रसीले।।
लिए बीन कल गावैं। पिय मोहनहिं रिझावैं।।
पिय मोहन दच्छिन दिसि सजनी, बाम भाग कर जोरैं।
ठुमकि चलनि, डोलनि पदगति की, ताननि मान जु तोरैं।।
ग्रीवा ढुरनि[1], मुरनि[2] कल कटि की, भृकुटी नैन नचावैं।
सुन्दरि सरस मधुर पिकबैनीं लिए बीन कल गावैं।।
गोरी[3] राग जमायौ। सब बन घन में छायौ।।
सब बन घन पूरति अति आनंद मोहिं सकल सहेली।।
उडुपति थकित चकित उडुमंगल,[4] प्रेम बिबस द्रुमबेली।।
पद पटकत लटकत अँग-अँग प्रिय, रतिपति प्रकट नचायौ।
गावत सनमुख स्याम मनोहर, गोरी राग जमायौ।।६।।

सोरठ

देखु सखी, इनको नव नेह।
उमड़ि[5] ढेर[6] घन रूप के मानों, बरसत रस को मेह।।
खान-पान बसनन कल भूषन, भूले सब सुधि देह।
'अलबेली' नहिं जानति निसिदिन, परे प्रेम के गेह।।७।।

---

१ हिलना। २ मोड़। ३ एक रागिनी जो प्रायः संध्या समय गाई जाती है। ४ तारा-मंडल। ५ उमड़कर। ६ गिर रहे हैं। ७ इन प्रेमियों के लेखे न दिन है न रात, सदा एकरस आनन्द-ही-आनन्द है। श्री हितहरिवंशजी ने कहा है—"चंद्र घटै सूरज घटै, घटै त्रिगुन विस्तार। पै दृढ़ हितहरिवंश को, घटै न नित्य बिहार!"

परज

बृन्दावन बसि यह सुख लीजै।
सात[1] समय की टहल महल बिनु, इकछिन जान न दीजै ।।
परमप्रेम-रस-रास-रसिक जे, तिनही को सँग कीजै।
निविड़[2] निकुंज विहार चारु अति, सुरस-सुधा दिन पीजै[3]।
और भजन साधन में मिथ्या,[4] कबहूँ काल न छीजै[5] ।।
दिन दुलराइ लड़ाइ दुहुन को, 'अलबेली' अलि जीजै[6] ।।८।।

लीनों बृन्दावन बसि लाह्यो[7]।
सेवा-टहल महल की निसि-दिन, यह जिय नेम निबाह्यो।
अद्भुत प्रेमबिहार चारु रस, रसिकनि बिनु किनु चाह्यो।
'अलिबेली' अलि सफल कियो सब, जिन यह रस अवगाह्यो ।।९।।

ऐसैं काल बितावौं निसिदिन
भोर साँझि लगि, साँझि भोर लौं, लाड़ लड़ाय दोऊ जन ।।
छिन बिच्छेप[8] न होइ टहल में, कीजे यह अद्भुत पन[9]।
सब रस को रस-सार बिहार,सुबीन्यौ हँस[10] रसिक गन ।।
विविध भाँति के और भजन जे, लौंन बिना ज्यों बिंजन।
श्रीराधा-पद-कमल-कृपा बिनु, को पावै रस कौ कन ?
श्रीबृन्दाबन-बास रासि रस, समय[11] प्रबन्ध परमधन।
'अलिबेली' श्रीबंसीअलि बलि, यह मानों मेरे मन ।।१०।।

---

१ विष्णु-संप्रदाय अथवा वल्लभकुल के अनुसार भगवान् को सात समय की सेवा पूजा—मंगला, ग्वाल, शृंगार, राजभोग, उत्थापन, आरती और शयन। २ सघन। ३ नित्य। ४ वृथा। ५ नष्ट करे। ६ जीवन बिताना चाहिए। ७ लाभ। ८ अन्तर। ९ प्रतिज्ञा। १० विवेक से चुन लिया। ११ अष्टयाम के अनुसार श्री राधावल्लभ की सेवा।

चाचा हितबृन्दावनदास

छप्पय

श्रीहरिबंस प्रसंस प्रेम-पथ, जो हिय ध्यायो।
रसिक रसायन जानि मानि, सोइ प्रगट लखायो ॥
अनुभव अकथ उदार, पार कोऊ नहिं पायो।
देवन-दुरलभ वस्तु, सु दोऊ हाथ लुटायो ॥
श्री राधावल्लभ लाड़िली, लाल सुनत मन में प्रबोधि।
'चाचा बृन्दावनदास' के चार लच्छ पद चारों पयोधि ॥

—गोस्वामी तुलसीदास

हितबृन्दावनदासजी गौड़ ब्राह्मण थे। इनका निवास-स्थान पुष्कर क्षेत्र था। इनका जन्म संवत् १७६५ में हुआ था। श्रीराधावल्लभीय गोस्वामी हितरूपजी इनके गुरु थे। तत्कालीन गोसाईंजी के पिता के गुरुभ्राता होने के कारण, गोसाईंजी की देखादेखी लोग इन्हें 'चाचाजी' कहने लगे, और 'चाचाजी' नाम से यह प्रसिद्ध हो गये।

महाराज नागरीदास के भाई बहादुर सिंह इनके आश्रय-दाता थे। राज-कुल में पारस्परिक कलह के रहने के कारण चाचाजी विरक्त होकर वृन्दाबन चले गये, और आजीवन वहीं रहे।

चाचाजी का कविता-काल संवत् १७९५ से प्रारम्भ होता है। कहा जाता है इन्होंने लगभग चार लाख पद लिखकर ब्रज-साहित्य-रत्नाकर को आकण्ठ भर दिया। यह बात नहीं कि इनकी रचना साधारण-सी है। उनमें यत्र-तत्र भाव-वैचित्र्य, भाषा-शैली और काव्य-प्रौढ़ता आदि गुण खासी अच्छी मात्रा में दिखाई देते हैं। इन्होंने ब्रजवासी कृष्ण का गुण-गान किया है, द्वारकावासी यदु-राज का नहीं। 'नख-शिख', 'अष्टयाम', 'समय-प्रबन्ध', 'छद्म' आदि अनेक अपूर्व लीलाओं का चाचाजी ने बड़ा

विशद वर्णन किया है। छद्म-लीलाओं का वर्णन चाचाजी का अनुपम है। वैराग्य और सिद्धान्त के अनेक पद भी अनूठे हैं। इनकी बानी अभी तक कहीं से भी प्रकाशित नहीं हुई है। कुछ फुटकर पद 'राग-रत्नाकर' आदि संग्रह-ग्रन्थों में ही छपे हैं। चारों लाख पद तो मिलते नहीं, किन्तु सुना है कि प्रायः एक लाख पद प्राप्य हैं। इनके पदों की एक प्रतिलिपि छतरपुर राज्य के पुस्तकालय में भी थी।

प्राप्य ग्रंथों अथवा संग्रह-ग्रन्थों के नाम ये हैं:—१. श्री ब्रज-प्रेमानन्द सागर; २. हिंडोरा; ३. छद्म-लीला; ४. चौबीस लीला; ५.श्रीकृष्ण गिरिपूजन-मंगल; ६. श्रीकृष्ण-मंगल; ७. रास-रस; ८. अष्टयाम; ९. समय-प्रबन्ध (१९); १०. भक्त-प्रार्थनावली; ११. श्रीहितरूप-चरितावली। समुद्र में से दो-चार बूँदों के रूप में चाचाजी के कुछ अनमोल पद नीचे उद्धृत किये जाते हैं।

बीणाबारी लीला

खेमटा

प्रीतम, तुम मो दृगनि बसत हौ।
कहा भरोसे ह्वै पूछत हौ, कै चतुराई करि जु हँसत हौ ?
लीजै परखि स्वरूप आपनो, पुतरिन में जु लसत हौ।
वृन्दावन हितरूप, रसिक तुम, कुंज लड़ावत हिय हुलसत हौ ॥१॥*

कान्हरा

यह छबि बाढ़ी री रजनी, खेलत रास रसिकमनी माई।
कानन वर सौरभ की महकनि, तैसिय सरद-जुन्हाई॥

---

*यह पद उत्तम रचना का नमूना कहा जा सकता है। इसमें अवश्य कुछ ऐसा है, जो आँखों के आगे भाव का सजीव चित्र खींचकर खड़ा कर देता है।

पुलिन प्रकास मध्य मनि-मंडल तहँ राजत हरि-राधा।
प्रतिबिंबित तन दुरनिन्मुरनि[1] में तव छवि बढ़त आगाधा।।
गौर-स्याम छबि-सदन वदन पर फबि रहे स्रम-कन ऐसे।
नील कनक-अंबुज अंतर धरे, ओपि जलज-मनि जैसे।।
झलकत हार, चलत[2] कल कुंडल, मुख मयंक-ज्यौं सोहैं।
वारों सरद निसा ससि केतिक, नैन कटाच्छनि मोहैं।।
थइ-थेइ[3] बचन बदति[4] पिय प्यारी, प्रगटति नृत्य नई गति।
बृन्दावन हित, तान-गान-रस, अलि हित रूप कुसल अति।।२।।

हौं बलि जाऊँ, मुख सुख-रास।
जहाँ त्रिभुवन-रूप सोभा, रीझि कियो निवास।।
प्रतिबिंब तरल कपोल कमनी[5] जुग तरौना कान।
सुधा-सागर मध्य बैठे, मनों रबि जुग न्हान[6]।।
छबि-भरे नवकंज-दल से, नेह-पूरित[7] नैन।
पूतरी मधु मधुप-छौना, बैठि भूले गैन[8]।।
कुटिल भृकुटि अनूप सोभा, कहा कहौ बिसेख।
मनहुँ ससि पर स्याम बदरी[9] जुगल किंचित रेख।।
लसतभाल बिलास ऊपर, तिलक नगनि जराय।
मनहु चढ़ै बिमान ग्रहगन, ससिहिं भेंटत जाय।।
मंद मुसुकनि, दसन दमकनि, दामिनी दुति हरी।
'बृन्दावन हित' रूप स्वामिनी[10] कौन बिधि रचि करी।।३।।

सोभा केहिं बिधि बरनि सुनाऊँ।
इक रसना, सोउ लोचन-हीनी,[11] कहौ पार क्यों पाऊँ।।
अंग-अंग लावन्य-माधुरी, बुधि-बल किती बताऊँ!

---

१ छिपने और मुड़ने में। २ हिलते-डुलते हैं। ३ नृत्य-संबंधी गति का शब्द विशेष। ४ बोलती हैं। ५ कमनीय, सुन्दर। ६ नहाने के लिए। ७ रंगीले। ८ गमन। ९ बादल का छोटा-सा टुकड़ा। १० राधिका जी से तात्पर्य है। ११ रहित, हीन।

अतुलित सुनति कहि गये क्यों, दृग पल रजि धरि जू उचाऊँ ।।
नव वय-संधि[1] दुहुनि नित उलहत, जब देखो तब औरे।
यहि कौतुक मेरी सुनि सजनी, चित न रहत इक ठौरे ।।
लोक न सुनी दृगन नहिं देखी, ऐसी रूप निकाई[2]।
मेरी तेरी कहा चली, खग-मृग-मति प्रेम बिकाई ।।
कबहूँ गौर स्याम तन[3] कबहूँ लोचन प्यासे धावैं।
कह घटि जात सिंधु को, पंछी जो चोंचन भरि लावैं ।।
सुन्दरता की हद मुरलीधर, वेहद छबि श्रीराधा।
गावैं बपु अनंत धरि सारद, तऊँ न पूजै साधा[4] ।।
न्याइ काम करवट ह्वै निकसत, पिय अरु रूप गुमानी।
'बृन्दावन हितरूप' कियौं बस, सो कानन को रानी ।।४।।

पद

भजन भावना होय न परसी, प्रेम नहीं उर कपटी।
कुआँ[5] पर्यौ आकाश उड़त खग, ताकों करत जु झपटी ।।
रसिक कहावैं, कोई जिनके जुगल[6] मिलन चोंपटी[7]।
'बृन्दावन हितरूप' कहाँ लगि, बरनौं सृष्टि अटपटी ।।५।।
देखा-देखी रसिक न ह्वै है रस-मारग है बंगा[8]।
कहा सिंह की सरवर करिहैं, गीदर फिरै जु रंका[9]?
असहन[10] निंदा करत पराई, कबौं न मानी संका।
'बृन्दावन हितरूप', रसिक जिन, दिय अनन्य-पथ डंका ।।६।।

---

१ पोगंड ओर किशोरावस्था का मेल। वयःसंधि पर बिहारी ने क्या ही मार्के का दोहा लिखा है : 'छूटो न सिसुता की झलक; झलक्यो जोबन अंग। दीपति देह दुहूंन मिलि, म्नों ताफता रंग।' २ शोभा। ३ तरफ। ४ इच्छा। ५ कुआँ. . .उड़त—असमर्थ होते हुए भी अपने को बड़ा पुरुषार्थी मान रहा है। ६ श्रीराधाकृष्ण। ७ अत्यन्त विरहासक्ति। ८ बांका; टेढ़ा; कठिन। ९ बेचारा। १० असहाय। चाचाजी के यह पद्य (१३-१४ संख्या) अनन्या-सिद्धांत-प्रतिपादक है।

भगवत रसिक

छप्पय

श्रीस्वामी हरिदास, रसिक-नृप को जो मारग।
ताहि धारि निज कुंज-केलि करि भौ भव-पारग।।
जग-वैभव मुख मोरि, कियौ करुवा सों नातौ।
स्यामा-स्याम लड़ाइ फिरै, व्रजवीथिनिमातौ।।

विरचै अनन्य निस्चय-रहस, अष्टयाम पद सामयिक।
श्रीललितमोहिनीदास के कृपापात्र भगवतरसिक।।

—वियोगी हरि

श्री भगवतरसिक जी* का जन्म-संवत् अनुमानतः १७९५ सिद्ध होता है। टट्टी-संस्थान के मुख्याचार्यों में श्रीस्वामी ललितकिशोरजी के शिष्य श्रीस्वामी ललितमोहिनीदासजी के कृपापात्र भगवतरसिकजी थे। सहचरिशरणजी ने स्वरचित 'आचार्योत्सव-सूचना' में इन महात्माओं के अवतार और अंतर्धान काल इस प्रकार दिये हैं :

ललितकिसोरी ललित प्रगट पट अगहन बदि आठैं दिन।
सत्रह सौ तैंतीस मनोहर ताहि न भूलौं इक छिन।।
अंतरध्यान पौष बदि छठि कों रसिकन के उर दाहू।
वर्ष अठारह सौ तेईसा हर्ष हर्‍यौ सब काहू।।

---

* 'मिश्रबन्धु विनोद' में भ्रमवश भगवतरसिकजी को स्वामी हरिदास जी का शिष्य लिख दिया गया है।

ललितमोहिनी प्रभा सोहिनी आस्विन सुदि दसमी कौं।
कियौ प्रकास सरद जनु चंद्रम बरसायौ सुअमी कौं॥
संवत सत्रह सौं सु असी कौ, अति प्रमोद कौ दानी।
सरन माघ बदि इकदसमी कौं, सबही ने यह जानी॥
फागुन बदि नवमी कौं प्रमुदित, रंगमहल कौं गमने।
बरस अठारह सौ अट्ठावन, निरखत राधारमने॥

टट्टी-संस्थान के अष्टाचार्यों में सबसे अंतिम यही ललितमोहिनीदासजी थे। भगवतरसिकजी ने गद्दी का अधिकार नहीं लिया। अहर्निशि भगवद्-भजन में ही मस्त रहे। भगवतरसिकजी ने वैराग्य और शृंगार दोनों का ही मनोहारी वर्णन किया है। इनकी सिद्धांती कुंडलियाँ तो अपूर्व हैं। इनकी कविता में निष्पक्षपात, सच्चा त्याग, प्रत्यक्षानुभूति और अनन्यता आदि गुण अच्छी मात्रा में दृष्टि आते हैं। इनका "अनन्य-निश्चयात्मक" ग्रन्थ लखनऊ-निवासी लाला केदारनाथजी वैश्य ने छपवाकर वितरण किया था।

थोड़े-से पद्यों को हम आपकी बानी में से लेकर नीचे देते हैं :

छप्पय

सब कालन कौ काल लोकपालन कौ पालै।
आपुन सदा स्वतंत्र, नियंता बुद्धि बिसालै॥
उपजावै सब विस्व रमैं, फिर ताके माहीं॥
देखत भूलि[1] करै, परै भूलन में नाहीं॥
षट् ऐश्वर्य समर्थ हरि, सो भगवत असरन-सरन।
तन मन जन की वेदना[2], हरहु मोद-मंगल करन॥१॥

---

१. भ्रमात्मक ज्ञान अविद्या। २ कष्ट।

कुंजन नें उठि प्रात गांग जमुना में धोवै।
निधिबन[1] करि दंडौत बिहारी[2] कौ मुख जोवै।।
करै भावना बैठि स्वच्छ थक रहित उपाधा[3]।
घर-घर लेइ प्रसाद लगै जब भोजन-साधा[4]।।
संग करै, 'भगवत-रसिक' कर करुवा गूदरि गरें[5]।
बृन्दावन बिहरत फिरै जुगुलरूप नैननि भरे।।२।।

कुंडलिया

साँचे श्रीराधारमन, झूठो सब संसार।
बाजीगर[6] कौ पेखनौ, मिटत न लागै बार।।
मिटत न लागै बार, भूति की संपति जैसें।
मिहरी[7] नाता पूत धुवाँ को धौरह[8] तैसें।।
'भगवत' ते नर अधम लोभ-बस घर-घर नाचै।
झूठें गढ़ै सुनार, मोम के बाँलै साँचै[9]।।३।।
नित्य-बिहारी की कला प्रथम पुरुष[10] अवतार।
तासु अंस माया भई, जाकौ सकल पसार।।
जाकौ सकल[11] पसार, महत्तत्तु उपज्यौ जातें।
अहंकार उत्पत्ति भई, श्रुति कहै जु तातें।।
अहंकार त्रैरूप[12] भयो, सिव, बिधि असुरारी[13]।
भगवत सब कौ तत्त्व-बीज श्रीनित्यबिहारी।।४।।
आचारज ललिता[14] सखी रसिक हमारी छाप।।
नित्यकिसोर-उपासना, जुगुल-मंत्र को जाप।।

---

१ एक कुंज का नाम, जहाँ बैठकर स्वामी हरिदासजी प्रायः हरि-भजन किया करते थे। २ बांकेबिहारीजी से तात्पर्य है; स्वामी हरिदासजी की अर्च्य श्रीकृष्णमूर्त्ति। ३ उपाधि। ४ इच्छा। ५ गले में। ६ जादूगर। ७ स्त्री। ८ घुरहरा। ९ गहने ढालने का साँचा। १० शेषशायी नारायण। ११ महत्तत्त्व। १२ सत्त्व, रज और तम। १३ विष्णु। १४ ललिता से यहाँ स्वामी हरिदासजी से तात्पर्य है।

जुगुल-मंत्र को जाप वेद रसिकन की बानी।
श्रीवृन्दाबन, धाम, इष्ट स्यामा महरानी।।
प्रेम-देवता मिले विना, सिधि होइ न कारज।
भगवत, सब सुखदानि, प्रकट भे रसिकाचारज[१]।।५।।
नहिं हिंदू, नहिं तुरक हम, नहिं जैनी, अँगरेज।
सुमन सँवारत रहत नित, कुंज-बिहारी-सेज।
कुंज-बिहारी-सेज, छाँड़ि, मग दच्छिन[२] डेरो[३]।
रहैं बिलोकति केलि, नाम 'भगवत अलि' मेरो।।
श्रीललिता सखि पाय कृपा, सेवत सुख स्यामहिं।
नहिं काहूँ सों द्रोह, मोह काहू सों है नहिं।।६।।
जैसे मिले कुधातु के, गै कंचनै दाग।
दूरि करै सब कालिमा, जबही मिलै सुहाग[४]।।
जबहीं मिलै सुहाग, रीति ललिता की जानो।
ज्यौं जल खाड़ समाइ, सिरै करवट[५] उतरानो।।
'भगवतरसिक' अनन्य महल में राजन ऐसें।
ज्यों दृग अंजन बसै, बरौनी बाहिर तैसें।।७।।
चसमा नित्य बिहार को, दियो बिहारिनि[६] मोहिं।
भई प्रीति-परतीति, उर, अंतर लीनों जोहिं[७]।।
अंतर लीनों जोहिं, निरंतर निज धन पायौ।
नारद सुक सनकादि, 'नेति' निगमागम गायौ।।
'भगवत' यह रस-जोति प्रगट, परिपूरन ससमा[८]।
प्रेम[९]-पियूष न स्रवै, भाव-रूपी बिनु चसमा।।८।।

---

१ रसिकों के आचार्य स्वामी हरिदासजी। २ वैदिक मार्ग। ३ वाम मार्ग, तांत्रिक मार्ग। ४ सुहागा; आग में सोने के साथ सुहागा डाल देने से सोने का सब मैल कट कर दूर हो जाता है। ५ कूड़ा। ६ श्रीराधिकाजी। ७ देख लिया। ८ चन्द्रमा। ९ प्रेम. . .स्रवै—बिना भाव के प्रेमरूपी अमृत स्रवित नहीं होता।

देखे हाट-बजार सब जहँ-तहँ पोति[1] बिकाय।
लिये जवाहिर जौहरी, बिनु गाहक फिरि जाय॥
बिनु गाहक फिरि जाय, बलाहक[2] ऊसर बरसै।
छप्पन भोग बनाय कहा बनचर के परसै॥
ऐसेहि कर्मठ[3] लोग, धर्म-रत बरत बिसेखे।
'भगवतरसिक' अनन्य, स्वाद-भेदी[4] कहु देखे॥९॥
अनुभव बिनु जग आँधरो, वस्तु न दीखै कोइ।
मुकुट दिखाये होत कह, आनन जात न जोइ॥
आनन जात न जोइ, अरथ बानी को कहिबो॥
सुने न होइ प्रतीति, बिना देखै उर दहिबो॥
बहु बिधि मरदन करैं, नहीं चैतन्य होइ शव।
'भगवत' रस की बात कहा, जानै बिनु अनुभव॥१०॥
काहू दई न लई कोउ, विद्यमान दरसाय।
ज्यों मनियारौ-उरग[5] मनि, लै आवै लै जाय॥
लै आवै लै जाय, वस्तु रसिकन की ऐसें।
निसिदिन सेवत रहें कृपन निज संपति जैसें॥
'भगवतरसिक' सुकेलि, स्याम-स्यामा अवगाहू।
रह्यो दृगनि भरिपूर, भेद जान्यौ नहिं काहू॥११॥
'भगवतरसिक' अनन्य मति, गौर स्याम रँगरात।
अमरकोस[6] से धूम लों, मृगमद,[7] छाँड़ि न जात॥
मृगमद छाँड़ि न जात, गही ज्यों हारिल[8] लकरी।
चुम्बक लोह न तजै, दारु पावक जिमि पकरी॥

---

१ काँच के छोटे-छोटे दाने। २ मेघ। ३ हृदयहीन; कोरे कर्मकांडी। ४ रसरहस्य के ज्ञाता। ५ मणिवाला साँप। ६ अमरबेल। ७ कस्तूरी। ८ एक चिड़िया। प्रवाद है कि हारिल कभी भूमि नहीं छूती; जब बैठती है तब एक लकड़ी पर ही, जिसे वह सदा अपने साथ रखती है।

गुन बयारि तनु लगै, डिगै नहिं मनसा नग[1] वत[2]।
संतत स्यामा स्याम, धाम कीनों उर भगवत ॥१२॥
चलनी में गैया दुहैं, दोष दई को देहिं।
हरि-गुरु-कह्यो न मानहीं, कियौ आपनो लेहिं।
कियो आपनौ लेहिं, नहीं यह ईश्वर-इच्छा।
देस-काल-प्रारब्ध-देव कोउ करइ न रच्छा॥
मूरख मरकट[3] मूठ, कीर हठि तजै न नलिनी।
कहि 'भगवत' कह करै भाग भौंड़े[4] को चलनी[5]॥१३॥
अनहोनी नहिं होइ कछु, होनी मिटै न कोय।
देखौ सीता दसरथै, अति समरथ तहँ दोय॥
अति समरथ तहँ दोय, राम भरता, वसिष्ठ गुरु।
जदुबंसिन कौ नास भयौ, देखत परमेसुर॥
पारीछत[6] उर ब्याल, मृतक पहिरायौ मौनी[7]।
'भगवत' इच्छा जानि, नहीं यामें अनहोनी॥१४॥
जात-जात में जात सब, सब ही जाति कुजाति।
रसिक अनन्य अजात की, कहो कौन-सी जाति॥
कहौ कौन-सी जाति, सजाती मिलै सुजानै।
विमुख बिजाती देह-खेह[8] की जाति बखानै।
निज स्वरूप नहिं लखैं, विवादी वात-बात में।
'भगवत' भगत न तेइ, जगत सब जात-जात में॥१५॥

---

१ पहाड़। २ समान। ३ बंदर। ५ मूर्ख; अभागा। ५ आटा छानने की चलनी; धार्मिक आचार। ६ अभिमन्यु के पुत्र महाराजा परीक्षित। ७ एक ध्यानावस्थित मुनि; जिन्हें परीक्षित ने मरा हुआ साँप पहना दिया था। इस पर मुनि-पुत्र ने राजा को यह शाप दे दिया कि वह सातवें दिन साँप के काटने से मर जायेगा। शुकदेवजी के मुखारविन्द से श्रीमद्भागवत सुनते-सुनते सातवें दिन ब्रह्मशाप-वश राजा परमधाम को सिधार गए। ८ पाँचभौतिक शरीर।

पैसा पापी साधु कों परसि लगावै पाप।
बिमुख करै गुरु इष्ट[1] तें, उपजावैं संताप॥
उपजावै संताप, ग्यान वैराग्य, बिगारै।
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, मत्सर श्रृंगारै[2]॥
सब द्रोहिन में सिरे,[3] भगत द्रोही नहिं ऐसा।
'भगवतरसिक' अनन्य, ूल जिन परसौ पैसा॥१६॥
आवै जो सो चून कों, जहँ जइए तहँ चून।
दियो चून चसमा चखनि, भगति-भाव भो नून[4]॥
भगति-भाव भो नून, साधु को रूप न सूझै।
रहे मान मद बूड़ि, और की औरै बूझै॥
हरि गुरु साधु विहाय, आपनी प्रभुता गावै।
'भगवत' स्यामा-स्याम, कह्यौ उर कैसे आवै॥१७॥
गेही[5] संग्रह परिहरै, संग्रह करै विरक्त।
हरि-गुरु-द्रोही जानिए, आज्ञा ते बितिरिक्त[6]॥
आज्ञा तें वितिरिक्त, होय जमदूत हवालैं।
अष्टाबिसति निरय,[7] अधोमुख करि तहँ घालैं।
'भगवतरसिक' अनन्य, भजौ तुम स्याम सनेही।
संग दुहुँन कौ तजो, वृत्ति[8] बिनु बिरत[9] रु[10] गेही॥१८॥
जाकों जैसी लखि परी, तैसो गावै सोय।
बोथी भगवत मिलन की, निहचय एक न होय॥
निहचय एक न होय, कहैं सब पृथक् हमारी।
स्रुति स्मृति भागौत, साखि गीतादिक भारी॥
भूपति सत्रनि समान, लखै निज परजा जाकों।
जाकौ जैसो भाव, सु भासै तैसो ताकों॥१९॥

---

१ परमेश्वर। २ परिपुष्ट करता है। ३ प्रथम शिरोमणि। ४ न्यून, कम। ५ गृहस्थो। ६ हीन। ७ रौरव कुंभीपाकादिपुराणोक्त नरक। ८ नियत स्वकर्म। ९ विरक्त। १० अरु।

हाथी देख्यो आँधरनि, निज मन के अनुमान।
कान पूँछ पग पीठि महि, करयौ सबनि परमान।।

करयौ सबनि परमान, बिटौरा[1] रूप पेटतर।
झगरैं संत महंत, निगम-आगम पुरान बर।
'भगवतरसिक' अनन्य, दृष्टि-बर[2] कीजै साथी।
नेज देख्यो गुन रूप, अंग हिय में हरि हाथी।।२०।।

चेला काहू के नहीं, गुरु काहू के नाहिं।।
सखी लड़ैती लाल की, रहैं महल के माहिं।।

रहैं महल के माहिं टहल सब करैं निरंतर।
दंपति अति अकुलाहिं, पलक कहुँ परै जु अंतर।।
'भगवत' भगवत कहैं, करैं नहिं हम बिन केला[3]।
तातें हम परिहरे देह-मानी[4] गुन चेला।।२१।।

नहीं द्वैत,[5] अद्वैत[6] हरि, नहीं बिसिष्टाद्वैत[7]।
बँधे नहीं मत-वाद में, ईस्वर इच्छा द्वैत।।

ईस्वर इच्छा द्वैत, करैं सबही कौ पोषन।
आप रहैं निरलेप, भगत सों मानैं तोषन[8]।।
'भगवतरसिक' अनन्य संग डोलैं गलबाहीं।
करैं मनोरथ-सिद्धि, उचित अनुचित कछु नाहीं।।२२।।

---

१ ढेर। २ अनन्य निश्चयात्मक दिव्य दृष्टि। ३ केलि; नित्य विहार। ४ शरीर को ही आत्मा माननेवाले; अविद्याग्रस्त। ५ श्रीमाध्व-संप्रदाय का सिद्धान्त जिसमें जीव और ब्रह्म पृथक्-पृथक् माने गए हैं। ६ श्रीशांकर-सिद्धांत, जिसमें केवल ब्रह्मसत्ता स्वीकार की गयी है। ७ श्रीरामानुजीय सिद्धांत, जिसमें प्रकृति एवं जीव-विशिष्ट अद्वैत ब्रह्म की सत्ता सिद्ध की गयी है। ८ प्रसन्नता।

माँछी, माछर, माँगने[1], मूसे, बादर, चोर।
काँटि, दीमक, जीव कों जागा[2] दस दुख घोर॥
जागा दस दुख घोर, बास क्यों कीजै बन में।
असन-बसन बिनु मिले, रहै नहिं धीरज मन में॥
'भगवतरसिक' अनन्य-मिलन दुस्तर-श्रुति साछी[3]।
बिहरत स्यामा-स्याम, जहाँ नहिं माछर-माँछी॥२३॥

कौवा धोये हंस नहिं, होइ न बछरा स्वान।
रासभ[4] तें हय होइ नहिं, जो धोवै भगवान॥
जो धोवै भगवान, साखि देखौ दुरजोधन।
हरि आये बनि दूत गये फिरि, भयो न बोधन[5]॥
'भगवतरसिक' अनन्य होय नहिं बाँभन नौवा।
गुन-सुभाउ नहिं मिटै, हंस-संगति करि कौवा॥२४॥

काटै कूकर बावरौ, जाकों लागै भूत।
करै अमल[6] तहँ आपनो, दाबि परायो पूत॥
दाबि परायो पूत, प्रेम की यह गति जानौ।
जिय[7] तें ईश्वर होय, साखि ब्रजबधू[8] बखानौ॥
'भगवतरसिक' अनन्य होय, अदभुत रस चाटै।
स्यामा-स्याम-बिहार नित्य, तिहिं काम न काटै॥२५॥

साँचो नहिं निज धर्म कोउ, कासों करिए प्रीति।
व्यभिचारी[9] सब देखिए, आवति नहिं परतीति॥

---

१ भिखारी २ जगह। ३ साक्षी। ४ गदहा। ५ ज्ञान। ६ शासन; नशा। ७ जीव। ८ गोपिकाएँ; जीव से ब्रह्म-रूप होकर 'कृष्णोऽहं' कहने लगी थीं। ९ मनमुखी; अनेकमार्गी।

आवति नहिं परतीति, दीजिए काकों निज धन।
मन-माफिक नहिं मिले, खोजि देखे बसती-बन॥
'भगवतरसिक' अनन्य संग की सहै न आँचौ[1]।
कूकर हाड़ चबाय, सिंह मारै गज साँचौ॥२६॥
घर-घर में गुरु बैद सब, बिन गुरु बैद न कोय।
औषधि मंत्र बतावहीं, सीघ्र सिद्ध यह होय॥
सीघ्र सिद्ध यह होय, बहुत भाँतिन अजमायौ।
कह्यौ हमारो करौ, लेहु सुख मन कौ भायौ।
रोगी वर गुरु हीन करै, कहु काकों परिहर।
निहचै 'भगवत' करैं एक, नहिं डोलै घर-घर॥२७॥

पद

परम पावन करुवा[2] कौ पानी।
जाके पियत हृदय में आवत, मोहन-राधारानी॥
अनुभव प्रगट होत क्रीड़ा की, मोद विनोद कहानी।
'भगवतरसिक' निकुंज महल की, टहल मिलै मनमानी॥२८॥

लखी जिन लाल की मुसक्यान।
तिनहिं बिसरी बेद-बिधि, जप, जोग, संयम, ध्यान॥
नेम, ब्रत, आचार, पूजा-पाठ, गीता-ग्यान।
'रसिक भगवत' दृग[3] दई असि[4], ऐंचिकै मुख-म्यान॥२९॥

भक्त-नामावली

पद

हमसों इन साधुन सों पंगति[5]॥
जिनकौ नाम लेत दुख छूटत, सुख लूटत तनु संगति॥

---

१ आग। २ टट्टी-सम्प्रदाय के महात्मा बरतन के नाते केवल एक करुवा रखते थे। ३ दृग...म्यान—मुख-रूपी म्यान से मुसक्यान-रूपी तलवार खींच कर आँख को कत्ल कर दिया। ४ तलवार। ५ पंक्ति, जाति-बिरादरी।

मुख्य महंत काम-रति, गनपति, अज, महेस, नारायन[1]।
सुर, नर, असुर, सुमुनि, पंछी, पसु, जे हरि-भगति-परायन ॥
बाल्मीकि, नारद, अगस्त, सुक, ब्यास, सूत, कुल-हीना[2]।
सबरी, स्वपच, बसिष्ठ, बिदुर, बिदुरानी[3], प्रेम-प्रबीना ॥
गोपी, गोप, द्रौपदी, कुंती, आदि पंडवा ऊधौ[4]।
बिस्नुस्वामि[5], निंबारक, माधौ, रामानुज मग सूधौ ॥
लालाचारज धनुरदास, कूरेस भावरस-भीजै।
ग्यानदेव गुरु, सिष्य तिलोचन, पटतर कौं किहि दीजै ?
पदमावती-चरन कौ चारन[6], कवि जयदेव जसीलौ।
चिंतामनि चित रूप लखायौ, बिल्वमंगलहिं रसीलौ ॥
केसव भट्ट, श्रीभट्ट, नारायन भट्ट, गदाधर भट्टा।
बिट्ठलनाथ, बल्लभाचारज, ब्रज के गूजर जट्टा[7] ॥
नित्यानन्द, अद्वैत, महाप्रभु, सची[8] सुवन चैतन्या।
भट्टगुपाल, रघुनाथ गुसाईं, मधू गुसाईं धन्या ॥
रूप, सनातन, भजि बृन्दाबन तजि दारा सुत संपति।
व्यासदास, हरिबंस गुसाईं, दिन दुलराईं दंपति ॥
श्रीस्वामी हरिदास हमारे, बिपुल[9], बिहारनि-दासी।
नागरि, नवल माधुरी, बल्लभ नित्यबिहार-उपासी ॥
तानसेन, अकबर, करमेती, मीरा, करमाबाई।
रतनावती, मीर, माधौ, रसखानि, रीति रस गाई ॥
अग्रदास, नाभादि सखी ये सबै राम-सीता की।

---

१ शेषशायी नारायण; श्रीकृष्णोपासकों के मतानुसार नारायण नित्यविहारी के अंशमात्र हैं। २ शूद्र। ३ भक्तवर विदुर की सती स्त्री। ४ श्रीकृष्ण के अनन्य सखा उद्धव। ५ बिस्नुस्वामि . . . रामानुज—क्रमशः शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत, द्वैत और विशिष्टाद्वैत वैष्णव सिद्धान्तों के प्रवर्त्तक। ६ भाट, यश वर्णन करनेवाला। ७ जाट। ८ श्रीचैतन्य महाप्रभु की माता। ९ विट्ठलविपुल।

सूर, मदनमोहन, नरसी अलि तसकर[1] नवनीता की ।।
माधौदास, गुसाईं तुलसी, कृष्णदास, परमानँद ।
बिस्नुपुरी, श्रीधर, मधुसूदन, पीपा, गुरु रामानँद ।।
अलि भगवान, मुरारि रसिक, स्यामानँद, रंका बंका ।
रामदास, चोघर, निष्किचन[2] भक्त अनन्य निसंका ।।
लाखा, अंगद भक्त, महाजन गोविंद, नंद-प्रबोधा[3]।
दास मुरारि, प्रेमनिधि, बीठलदास मथुरिया योधा[4] ।।
लालमती, सीता, प्रभुता, झाली, गोपाली बाई ।
सुत विष दियो पूजि सिलपिल्ले भक्ति रसीली पाई ।।
पृथ्वीराज, खैमाल, चतुरभुज राम-रसिक रस-रासा ।
आसकरन, मधुकर जैमल नृप, हरीदास, जनदासा ।।
सैना, घना, कबीरा, नाभा, कूबा, सदन कसाई ।
बारमुखी[5], रैदास सभा में, सही न स्याम सहाई ।।
चित्रकेतु, प्रह्लाद, बिभीषन, बलि गृह बाजै[6] बावन ।
जामवंत, हनुमंत, गीध, गुह, किये राम जे पावन ।।
प्रीति, प्रतीति, प्रसाद साधु सो इन्हें इष्ट गुरु जानौं ।
तजि ऐश्वर्य, मृजाद[7] बेद की तिनके हाथ बिकानौं ।।
भूत, भविष्य लोक चौदह में भये होयँ हरि प्यारे ।
तिन-तिन सों ब्यौहार हमारो, अभिमानिन तें न्यारे[8] ।।
'भगवतरसिक' रसिक-परिकर करि, सादर भोजन पावैं ।
ऊँचो कुल आचार अनादर, देखि ध्यान नहिं आवैं ।।३०।।*

---

१ माखनचोर, श्रीकृष्ण । २ परमत्यागी । ३ स्वामी प्रबोधानन्द । ४ भक्त-वीर । ५ पिंगला नाम की वेश्या । ६ प्रसिद्ध है । ७ मर्यादा । ८ विरक्त ।

*इस पद में आए हुये भक्तों की कथा नाभा-कृत भक्तमाल, उत्तरार्द्ध भक्तमाल तथा नवभक्तमाल, में लिखी है । यहाँ पर यदि प्रत्येक भक्त की कथा लिखी जाय तो एक पोथा बन जायगा । अतएव स्थल-संकीर्णतावश हम इनकी प्रासंगिक कथा देने में असमर्थ हैं ।

सारंग

बेषधारी[1] हरि के उर सालैं[2]।
परमारथ स्वपनें नहिं जानैं, पैसन ही कों लालैं॥
कबहुँक बकता ह्वै बनि बैठें, कथा भागवत गावैं।
अर्थ-अनर्थ कछू नहिं भासैं, पैसन ही कों धावैं॥
कबहुँक हरि मंदिर कों सेवैं, करैं निरन्तर बासा।
भाव-भगति को लेस न जानैं, पैसन ही की आसा॥
नाचैं-गावैं, चित्र बनावैं, करैं काव्य चटकीली[3]।
साँच बिना हरि हाथ न आवै, सब रहनी है ढीली[4]॥
बिन बिबेक, बैराग भगति बिनु, सत्य न एको मानौ।
'भगवत' बिमुख कपट चतुराई, सो पाखंडै जानौ॥३१॥

पद

इतने गुन जामें सो संत।
श्री भागवत मध्य जस गावत, श्री मुख कमलाकंत[5]॥
हरि कौ भजन, साधु की सेवा, सर्वभूत पर दाया।
हिंसा लोभ दंभ छल त्यागैं, विष-सम देखैं माया[6]।
सहनसील, आसय उदार अति, धीरज-सहित बिबेकी।
सत्य बचन सब कों सुखदायक, गहि अनन्य-ब्रत एकी॥
इन्द्री जित अभिमान न जाके, करै जगत कों पावन।
'भगवतरसिक' तासु की संगति, तीनहुँ ताप-नसावन॥३२॥

पद

हमारो वृन्दाबन उर और।
माया काल तहाँ नहिं ब्यापै, जहाँ रसिक सिरमौर॥

---

१ कपटमय साधु-भेष धारण किए हुए। २ कष्ट पहुँचाता हैं। ३ लुभावनी। ४ व्यर्थ। ५ लक्ष्मीनाथ विष्णु भगवान्। ६ काम कांचन।

छूटि जाति सत-असत-बासना, मन की दौरादौर[1]।
'भगवतरसिक' बतायो, श्रीगुरु,[2] अमल अलौकिक ठौर ॥३३॥

काफी

बलि जैहौं श्री रसिकाचारज[3]।
नित बिहार उद्धार कियो जिन, मथिकै हृदय-सिंधु बर बारज ॥
भ्रम, तम, स्रम, [4]सब हरे हमारे, कर गहि सकल सँभारे कारज।
'भगवतरसिक' प्रसंसित कीन्हैं, स्यामास्याम सहायक आरज[5] ॥३४॥

गौरी

नमो नमो बृन्दाबन-चंद।
नित्य अनंत अनादि एकरस, पिय-प्यारी बिहरत स्वच्छन्द ॥
सत्त[6] चित्त[7]-आनंद[8]-रूपमय, खग, मृग, द्रुमबेली बर बृन्द।
'भगवतरसिक' निरंतर सेवत, मधुप भये पीवत मकरन्द[9] ॥३५॥

अरिल्ल

दुख-सुख भुगतै देह, नहीं कछु संक है।
निन्दा-स्तुति करौ राव क्या रंक है ॥
परमारथ ब्यौहार बनौ कै[10] ना बनौ।
अंजन ह्वै मन नैन 'रसिकभगवत' सनौ[11] ॥३६॥

तोड़ी

तुव[12] मुख कमल नैन अलि मेरे।
पलक न[13] लगत पलक[14] बिनु देखे, अरबरात[15] अति फिरत न फेरे ॥

---

१ चंचलता। २ श्रीललितमोहिनीदासजी से तात्पर्य है। ३ रसिकों के आद्याचार्य श्रीस्वामी हरिदासजी। ४ संशय। ५ आर्य। ६ अस्ति भाव। ७ चैतन्य। ८ त्रिकालाबाधित, एकरस, अखंड आनन्द। ९ पराग। १० अथवा। ११ लीन रहो। १२ तुव...मेरे—तेरे मुख रूपी कमल का पराग पान करने के लिए मेरे नेत्र भ्रमररूप हैं। १३ आँखों की पलक। १४ एक पल। १५ फड़फड़ाते हैं।

पान करत मकरन्द-रूप-रस, भूलि नहीं फिर इत-उत हेरे।
'भगवतरसिक' भये मतवारे, घूमत रहत छके मद तेरे॥३७॥

सोड़ो

तुव मुख चंद चकोर ये नैना।
अति आरत अनुरागी, लंपट,[1] भूलि गई गति, पलहुँ लगै ना॥
अरबरात मिलिवे को निसिदिन, मिलेइ[2] रहत मनु कबहुँ मिलै ना॥
'भगवतरसिक' रसिक की बातैं, रसिक बिना कोउ समुझि सकै ना॥३८॥

दोहा

काया कुंज निकुंज मन, नैन द्वार अभिराम।
'भगवत' हृदय-सरोज सुख, बिलसत स्यामा-स्याम॥३९॥
जप तप तीरथ दान व्रत, जोग जग्य आचार।
'भगवत' भक्ति अनन्य बिनु, जीव भ्रमत संसार॥४०॥
बेदनि[3] खोवैं बैद सो, गुरु गोबिन्द-मिलाप।
भूख भजै भोजन सोई, 'भगवत' और खिलाप[4]॥४१॥
'भगवत' जन[5] स्वाधीन नहिं, पराधीन जिमि चंग[6]।
गुन[7] दीने आकास में, गुन लीने अँग-संग॥४२॥
'भगवत' जन चकरी कियो, सुरत[8] समाई डोर।
खेलत निसिदिन लाड़िली[9], कबहुँ न डारति तोर॥४३॥
ग्राम-सिंह भूखो बिपिन, देखि सिंह को रूप।

---

१ लोभी। २ मिलेइ...मिलै ना—दिन रात रहते तो सामने ही हैं, किन्तु प्रेम की तृप्ति न होने के कारण सदा यही शंका बनी रहती है कि अभी मिले हैं या नहीं। ३ वेदना; कष्ट। ४ खिलाफ, विरुद्ध। ५ जीव। ६ पतंग। ७ गुण, डोरी। ८ ध्यान, लव। ९ श्रीराधिकाजी।

सुनि-सुनि भूखैं गलिन में, सबै स्वान बेकूप[1] ॥४४॥
नहिं निरगुन[2] सरगुन नहीं, नहिं नेरे, नहिं दूरि।
'भगवतरसिक' अनन्य कौ, अद्भुत जीवन मूरि ॥४५॥
तुष्टि पुष्टि तासों रहै, जरा न ब्यापै रोग।
बाल-अवस्था, जुवा पुनि, तिनकों करै न भोग ॥४६॥
जनम-मरन माया नहीं, जहँ निसि-दिवस न होइ।
सत-चित-आनँद एकरस, रूप अनुपम दोइ ॥४७॥
निसिबासर, तिथि मास, रितु, जे जग के त्योहार।
ते सब देखौ भाव[3] में, छांड़ि जगत ब्योहार ॥४८॥
छके जुगुल-छबि-बारुनी, डसे[4] प्रेमवर-ब्याल।
नेम न परसै गारुड़ी,[5] देख दुहुँन कौ ख्याल[6] ॥४९॥
नवरस[7] नित्य-बिहार में, नागर[8] जानत नित्त।
'भगबतरसिक' अनन्य वर, सेवा मन बुधि चित्त ॥५०॥

ईसन

जय जय रसिक रवनी-रवन[9]।
रूप-गुन-लावन्य-प्रभुता, प्रेमपूरन भवन ॥
बिपति जन की भानिबे[10] कों, तुम बिना कहु कवन ?
हरहु मन की मलिनता, ब्यापै न माया-पवन ॥
विषयरस इन्द्री अजीरन, अति करावहु बवन।
खोलिए हिय के नयन, दरसै सुखद बन अव न ॥
चतुर चिंतामनि दयानिधि, दुसह दारिद-दवन।

---

१ बेवकूफ। २ सगुण। ३ त्रिकालाबाधित, नित्य, अखंड एकरस भगवत् प्रेम। ४ काटे गए, घायल किए गए। ५ मंत्र-बल से साँप का विष दूर करनेवाला। ६ दशा, लीला। ७ साहित्यिक नवरस; यथा—शृंगार, हास्य, करुण, वीर, रौद्र, भयानक, अद्भुत, वीभत्स और शांत। ८ रस-प्रवीण। ९ रमणी-रमण, श्रीराधावल्लभ। १० काटने के लिए।

मेटिये 'भगवत' व्यथा, हँसि भेंटिए तज मवन[१] ॥५१॥

चर्चरी

कुंजबिहारी एक आस, और सकल तजि दुरास,
असन बसन तें उदास[२], बाँके ब्रतधारी[३]।
ग्यान-दया-गुन-निधान, रसिक-मुकुट-मनि-प्रधान,
राग भोग समय जान, तोषत[४] पिय-प्यारी ॥
तिमिर-हरन कों दिनेस, ताप-हरन को निसेस,[५]
पाप-दहन, पावकेस, गुरुता मुखचारी[६]।
निधिबन-आसीन[७] नित्त, बर बिहार सरस वित्त,
जय जय हरिदास, रसिक 'भगवत' बलिहारी ॥५२॥

पद

यह दिव्य प्रसाद प्रिया प्रिय कौ।
दरसत ही मन मोद बढ़ावत, परसत पाप हरत हिय कौ।
पावन परम प्रेम उपजावत, भुलवत[८] भाव पुरुष तिय कौ ॥
'भगवतरसिक' भावतो[९] भूषन, तिहिं छन होत जुगुल जिय कौ ॥५३॥

---

१ मौन-व्रत। २ बेपरवाह। ३ प्रेम का महाकठिन व्रत धारण करनेवाले। ४ तोषत....प्यारी—श्रीराधाकृष्ण को प्रसन्न करते हैं। ५ चंद्रमा। ६ ब्रह्मा। ७ विराजमान। ८ भुलवत...तिय कौ—स्त्री पुरुष का दैहिक भेदभाव भुला देता है। ९ प्यारा।

हठी

छप्पय

राधा-चरन-सरोज-मधुप रस-सरस-उपासी।
भावुक-भक्ति-विभोर मोर, घनस्याम-बिलासी।
ब्रजरज पै तिहुँलोक-विभव, तृन लों तजि दीन्हों।
परमप्रेम दरसाय बिमल जीवन-फल लीन्हों॥
श्रीहित-कुल कौ अवलंब लै, 'राधा सत' बिरच्यौ जु इक।
दृढ़व्रत अनन्य हठ कै भयौ, हठी हठी साँचो रसिक॥

वियोगी हरि

हठीजी ने 'राधा-सुधा-शतक' संवत् १८३७ में समाप्त किया, जैसा कि उन्होंने इस दोहे में लिखा है :

ऋषि सुदेव बसु ससि सहित, निरमल मधु कों पाय।
माधव तृतिया भ्रगु निरखि, रच्यौ ग्रंथ सुखदाय॥

कुछ लोगों का अनुमान है कि हठी जी श्रीहितहरिवंशजी के शिष्य थे, परन्तु रचना-काल देखने पर यह सिद्ध नहीं होता। हित कुल के शिष्य यह अवश्य थे, किन्तु इनके गुरु कौन थे, यह अभी तक अज्ञात ही है। इन्होंने 'राधा-सुधा-शतक' में अपने गुरुदेव का नाम-स्मरण भी नहीं किया।

इनका रचा केवल एक 'राधा सुधा शतक' मिलता है। इसमें ११ दोहे, और सवैये तथा कवित्त १०३ हैं। हठीजी, भगवद्भक्त होने के अतिरिक्त ऊँचे साहित्य मर्मज्ञ भी थे। इन्होंने उपमाओं, उत्प्रेक्षाओं और अनुप्रासों के सुन्दर प्रयोग किये हैं। राधिकाजी को प्राधान्य मानते हुए इन्होंने अन्य सब देवी-देवताओं को नीचा दिखाया है। जान पड़ता है इनको राज दरबारों तथा अन्तःपुरों का अच्छा अनुभव था। 'शतक' में कई पद्य ऐसे

मिलते हैं, जिनमें इन्होंने राजसी ठाटबाट का पूरा चित्र उतार दिया है। इनके कतिपय सरस पद्य नीचे दिए जाते हैं—

श्री राधा-सुधा-शतक

दोहा

श्रीवृषभानु-कुमारि के, पग बंदौं कर जोर।
जे निसिबासर उर धरैं, ब्रज बसि नंद-किसोर॥१॥
कीरति[1] कीरति[2] कुँवरि की, कहि-कहि थके गनेस।
दस सत मुख बरनन करत, पार न पावत सेस॥२॥
अज सिव सिद्ध सुरेस मुख, जपत रहत निसि जाम।
बाधा जन की हरत है, राधा राधा नाम॥३॥
राधा राधा जे कहैं, ते न परैं भव-फंद।
जासु कन्ध पर कमलकर, धरे रहत ब्रजचंद॥४॥
राधा राधा कहत हैं, जे नर आठौं जाम।
ते भवसिंधु उलंघि कैं, बसत सदा ब्रजधाम॥५॥

कवित्त

काहू कों सरन संभु गिरिजा गनेस सेस,
काहू कों सरन है कुबेर-ऐसे धोरी[3] कौ।
काहू कों सरन मच्छ, कच्छ, बलराम, राम,
काहू कों सरन गोरी साँवरी-सी जोरी कौ॥
काहू कों सरन बोध, बामन, बराह, ब्यास,
एही निराधार सदा रहै मति मोरी कौ।
आनँदकरन बिधि-बंदित[4] चरन एक,
'हठी' कों सरन वृषभानु की किसोरी कौ॥६॥

---

१ कीर्ति, यश। २ राधिका जी की माता का नाम। ३ धनी। ४ आदि सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा से वंदनीय।

कलपलता के किधौं पल्लव नवीन दोऊ,
हरन मंजुता[1] के कंजता के बनिता के हैं।
पावन पतित गुन गावैं मुनि ताके छबि,
छलै सविता[2] के जनता के गुरुता के हैं।।
नवो निधिता के सिद्धता के आदि-आलै[3] 'हठी',
तीनों लोक ताके प्रभुता के, प्रभु ताके हैं।
कटैं पाप ताके,[4] बढ़ैं पुन्य के पताके, जिन,
ऐसे पद ताके[5] वृषभानु की सुता के हैं।।७।।

कोमल बिमल मञ्जु कंज-से अरुन सोहैं,
लच्छन[6] समेत सुभ सुद्ध कंदनी के हैं।
हरी के मनालय[7] निरालय निकारन के,
भक्ति-बरदायक बखानैं छंद नीके हैं।।
ध्यावत सुरेस संभु सेस औ गनेस, खुले,
भाग अवनी के जहाँ[8] मंद परैं नीके हैं।
कटैं जन फंदनीय द्वंदनीय हरि-हर,
बंदनीय चरन वृषभानु नंदिनी के हैं।।८।।

कोऊ उमाराज,[9] रमाराज, जमाराज[10] कोऊ,
कोऊ रामचंद सुखकंद नाम नाधे मैं।
कोऊ ध्यावैं गनपति, फनपति, सुरपति कोऊ,
कोऊ देव ध्याय फल लेत पल आधे मैं।।

---

१ कोमलता। २ सूर्य। ३ आदिस्थान, मूलाधार। ४ उसके। ५ देखे; सेये। ६ चिह्न। २४ चिह्न दक्षिण चरण में और २४ वाम चरण में माने गए हैं; भक्तिमार्ग के अनुसार श्रीचरण-चिह्नों के ध्यान से अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है। ७ मन के बसने का स्थान। ८ जहाँ...परैं—जिस पर धीरे-धीरे मंदगति से चरण रखे जाते हैं। ९ शिवजी। १० यमराज।

'हठी' को अधार निरधार[1] की अधार तू ही,
जप तप जोग जग्य कछुवै न साधे मैं।
कटै कोटि बाधें[2] मुनि[3] धरत समाधे, ऐसे,
राधे, पद रावरे सदा ही अवराधे[4] मैं ॥९॥
कोऊ धन धाम, कोऊ चाहै अभिराम, कोऊ,
साहिबी सुरेस भाँति लाख लहियतु[5] हैं।
कोऊ गजराज, महाराज, सुखराज कोऊ,
तीरथ बरत[6] नेम अंग दहियतु[7] हैं॥
ऐसो चित चाहै, चरचा है दुनिया की 'हठी',
चाहै हदै एक तौन ठीक ठहियतु हैं।
जन-रखवारी की सु प्रभु-प्रानप्यारी की,
सुकीरति-दुलारी की नजर[8] चहियतु हैं ॥१०॥
कंजन-महल-चौक, चाँदनी बिछौना तामें,
जरी की बितान[9], तान[10]-भान[11]-जोति मंद की।
लालन की मालै, लाल सारी कोरदार अंग,
ओठन की लाली जिमि लाली जीवबंद[12] की॥
रंभा[13]-सी रमा-सी जहाँ दासी मैंनका-सी 'हठी',
ठाढ़ी कर जोरें, तेऊ छीनैं जोति चंद की।
गावै बेद बानी,[14] चौंर ढारति भवानी[15] राधे,
बैठी सुखदानी महारानी नँद-नन्द की ॥११॥

---

१ निराधार, असहाय। २ बाधाएँ। ३ मुनि... समाधे—मुनि लोग समाधि-अवस्था में जिन (चरणों) का ध्यान धरते हैं। ४ मैंने आराधना की है। ५ प्राप्त करता है। ६ व्रत। ७ कठोर हठयोग द्वारा शरीर को जलाते हैं। ८ कृपादृष्टि। ९ चंदोवा। १० तनाव। ११ भानु। १२ जपा पुष्प। १३ अप्सराएँ। १४ सरस्वती। १५ पार्वती।

चंदन लिपायो चौक, चाँदनी[१] चंदोवे तामें,
चाँदनो बिछौना फैली लहर सुगंद[२] को।
चाँदनो की साज नीकी चंद-सम चमकन,
चार्‌यो ओर चंदमुखी चंद-जोति मंद की॥
चाँदनो-सो चार चारु चाँदनी-सी फैली 'ठुठी',
चाँदनी-सी-हाँसी, कै मिठाई सुधा-कन्द[३] की।
चंदन की चौकी बैठी चंदन लगाय भाल,
चंद-से वदन राधे रानी ब्रजचंद की॥१२॥
चामीकर[४] चौकी पर चंपक-बरन 'ठुठी',
अंग चमंकै[५] चारु चंचलैं चलावतीं।
तारा-सी तरंगना-सी अतर लगावै रति,
मुकुर दिखावै बिजै बीजन डुलावतीं॥
कमला करनि जोरै, बिमला[६] सुतून[७] तोरै,
नवला[८] लैं मरजी[९] कों अरजी सुनावतीं।
सुरन की रानी, सुरपालन की रानी,
दिगपालन की रानी द्वार[१०] मुजरा न पावतीं॥१३॥
फटिकसिलान के महल महारानी बैठी,
सुरन की रानी जुरि आई मन-भावतीं।
कोऊ जलदानी[११] पानदानी पीकदानी लिए,
कोऊ कर बीनै लै सुहाये गीत गावतीं॥

---

१ सफेद मलमल का चंदोवा। २ सुगन्ध। ३ अमृत के समान कंद; अमृत का रंग श्वेत माना गया है--"अमी हलाहल मद भरे, सेत स्याम रतनार।" ४ सोना। ५ चमक-दमक। ६ सरस्वती। ७ तिनका तोड़-तोड़कर। ८ नववधू ९ आज्ञा लेकर। १० द्वार...पवतीं-प्रणाम करने का भी साहस नहीं होता, द्वार पर खड़ी-खड़ी प्रतीक्षा किया करती हैं। ११ गड़ुवा।

कोऊ चौंर ढारैं चारु चाँदनी-से चौजबारे,
'हठी' लै सुगंधन सी अलकैं बनावतीं॥
मोतिन के मनिन के पन्नन[1] के प्रवालन के,
लालन के, हीरन के हार पहिनावतीं॥१४॥

चंद की कला सी, नवला-सी सखी संगवारी,
रंभा, रमा, उमा, 'हठी' उपमा कों को रही?
कीरति-किसोरी वृषभानु की दुलारी राधा,
आली, वनमाली कौ सहज चित्त चोरही॥
भौंन तें निकसि प्यारी पाय धारे बाहिर लौं
लाली तरवान की उमड़ि इक और ही।

बगर-बगर[2] अरु डगर-डगर बर,
जगर-मगर[2] चारयों ओर दुति हो रही॥१५॥

हीन हौं, अधीन हौं, तिहारो ब्रज-साहिबनी[3]!
हिय में मलीन करुना की कोर ढरिए।
भारी भवसागर में बोरत बचायौ मोहि,
काम क्रोध लोभ मोह लागे सब अरिए[4]।
बुरो-भलो, जैसो-तैसो, तेरे द्वार परयौ हौं तौ,
मेरे गुन-औगुन तूं मन में न धरिए।
कीरति-किसोरी, वृषभानु की दुहाई[5] तोहिं,
लच्छ-लच्छ[6] भाँति सों 'हठी' को पच्छ[7] करिए॥१६॥

---

१ हरे रंग का एक रत्न। २ घर-घर। ३ ब्रज-स्वामिनी। ४ शत्रु। ५ सौगंध। ६ लाख। ७ पक्ष, तरफदारी।

जन-दुख-हरनी, धरनी-पति ध्यावैं तोहिं,
तेरी जग करनी[१] बिधि बरनी[२] बड़े थान[३] की।
चिंता कैसो घेरा मन ढेरा[४]-सो भ्रमत फिरै,
हृदै नहिं डेरा[५], सुधि खान की न पान की।
ध्यावत बनैं न मोहिं, तेरोई कहावत हौं,
'हठी' तै कृपा की कोर राखि दया-दान की।
औगुननि-भरो हौं कहत करजोर अब,
मेरो पच्छ करि तू किसोरी वृषभानु की॥१७॥

ध्यावत महेसहू गनेसहू धनेसहू[६],
दिनेसहूं, फनेस[७] त्यों मुनेस[८] मन मानी हैं।
तीनों लोक जपत, त्रिताप की हरनहारी,
नवो निद्धि, सिद्धि, मुक्ति भई दरवानी[९] हैं।
कीरति-दुलारी सेवैं चरन बिहारी धन्य,
जाको कित्त[१०] नित्त बिधि बेदन बखानी हैं।
साधा[११] काज पल में, अराधा[१२] छिन आधा 'हठी'
बाधा हरिबे को एक राधा महारानी हैं॥१८॥

गिरि कीजै गोधन[१३], मयूर कुंजन को मोहिं,
पसु कीजै महाराज नन्द के बगर को[१४]।

---

१ करणी, लीला। २ बरणी, वर्णन की ? ३ स्थान। ४ चक्कर, नकली। ५ शांति। ६ कुबेर। ७ शेषनाग। ८ शुद्ध शब्द 'मुनीश' है, यहाँ महेश, गनेश आदि का अनुप्रास मिलाने के लिए कवि ने शब्द को विकृत कर 'मुनेस' कर दिया है। ९ द्वार पर खड़ी रहने वाली नौकरानी। १० कीर्ति। ११ पूरा कर दिया। १२ आराधना की। १३ गोवर्द्धन। १४ गोशाला।

नर कौन ? तौन, जौन 'राधे-राधे' नाम रटै,
तट कीजै बर कूल कालिंदी कगर[1] कौ ॥
इतने पै जोई कछु कीजिए कुँवर कान्ह,
राखिए न आन फेर 'हठी' के झगर कौ।
गोपी-पद-पंकज-राग कीजै महाराज !
तृन कीजै रावरेई गोकुलनगर कौ ॥१९॥

सवैया

मोरपखा, गर गुंज[2] की माल, किये नव भेष बड़ी छबि छाई।
पीतपटी दुपटी कटि में, लपटी लकुटी 'हठी' मो मन भाई ॥
छूटी लटैं, डुलैं कुण्डल कान, बजै मुरली-धुनि मंद सुहाई।
कोटिन काम गुलाम भये, जब कान्ह ह्वै भानु[3]-लली बनि आई ॥२०॥

नवनीत गुलाब तें कोमल हैं, 'हठी' कंज की मंजुलता इनमें।
गुललाला[4] गुलाल प्रबाल जपा छबि, ऐसी न देखी ललाइन[5] में ॥
मुनि-मानस-मन्दिर मध्य बसैं, बस होत हैं सूधे सुभाइन में।
रहु रे मन, तूं चित-चाइन सों, वृषभानु-कुमारि के पाइन में ॥२१॥

चंद-सो आनन, कंजन-सो तन, हौं लखिकैं बिनमोल बिकानी।
औ अरविन्द सो आँखिन कों 'हठी', देखत मेरियै[6] आँखि सिरानी[7] ॥
राजति है मनमोहन के सँग, वारौं मैं कोटि रमा, रति बानी[8]।
जीवनमूरि सबै ब्रज को, ठकुरानी[9] हमारी है राधिका रानी ॥२२॥

---

१ कगार, किनारा । २ गुञ्जा, घुंघुची । ३ वृषभानु । ४ लाल रंग का एक फूल । ५ लाली में, अरुणिमा में । ६ मेरी भी । ७ ठंडी हुई, प्रसन्नता हुई । ८ सरस्वती । ९ स्वामिनी ।

जाकी कृपा सुक[1] ग्यानी भये, अतिदानी औ ध्यानी भये त्रिपुरारी।
जाकी कृपा बिधि वेद रचे, भये व्यास पुरानन के अधिकारी॥
जाकी कृपा तें त्रिलोकी-धनी, सु कहावत श्री ब्रजचंद-बिहारी।
लोक-घटा[2] तें 'हठी' कों बचाउ, कृपा करि श्रीबृषभानु-दुलारी॥२३॥

---

१ व्यासजी के बाल परमहंस पुत्र शुकदेव। २ सांसारिक प्रपंच।

सहचरिशरण

छप्पय

कुंज-केलि-माधुर्य-सिंधु, पूरन अवगाह्यो।
गादी कौ अधिकार संतव्रत अगम निबाह्यो॥
'मंजावलि' रचि सरस रहसि-पद्धति विस्तारी।
भई न है, नहिं ह्वै है रचना अस रसवारी॥
जन-रसिक-मंडली-आभरन, सेये श्रीस्यामा-चरण।
पट शिष्य राधिकादास कों, प्रेमपुन्ज सहचरिसरण॥

—वियोगी हरि

सहचरिशरणजी का असली नाम सखीशरणजी[1] था। यह टट्टी-संस्थान की परम्परा[2] में महंत राधिकादासजी के उत्तराधिकारी थे। सहचरिशरण जी का जन्म-काल, अनुमानतः वि० १९वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जा सकता है। इन्होंने 'गुरु-प्रणालिका' तथा 'आचार्योत्सव-सूचना' में टट्टी-

---

१ आश्चर्य है कि 'मिश्रबन्धु विनोद' प्रथम संस्करण, (पृष्ठ ७८३) में गुरु-प्रणालिका और मंजावली के रचयिता सखीशरणजी अयोध्या के महंत मान लिए गए हैं; सखीशरण और सहचरिशरण एक ही व्यक्ति थे, और यह वृन्दावन के टट्टी-संस्थान के महंत थे।

२ टट्टी संस्थान की गुरु परंपरा इस प्रकार है।

१ श्रीस्वामी हरिदासजी; २ श्री विट्ठलविपुलजी; ३ श्रीविहारिनिदेवजी; ४ श्रीसरसदेवजी; ५ श्रीनरहरिदेवजी; ६ श्रीरसिकदेवजी; ७ श्रीललितकिशोरीजी (इन्होंने टट्टी संस्थान बनवाया); ८ श्रीललित मोहिनीजी; ९ श्रीचतुरदासजी (श्रीभगवद्रसिकजी इनके गुरु-भाई थे); १० श्रीठाकुरदासजी; ११ श्रीराधिकादासजी; १२ श्री सखीशरणजी (सहचरिशरण); १३ श्री राधाप्रसादजी; १४ श्री भगवानदासजी।

संस्थान के महंतों और महात्माओं का समय-निरूपण किया है। किन्तु समय-निरूपण केवल श्रीस्वामी हरिदासजी से लेकर श्री ललितमोहनीजी तक का ही किया गया। उन्होंने ललितमोहनीजी के बाद के महंतों का कुछ भी वर्णन नहीं किया; कदाचित् अष्टाचार्यों के साथ ही टट्टी-संस्थान का वास्तविक जीवन समाप्त कर दिया है, और बात भी ऐसी ही है।

सहचरिशरणजी ने फुटकर पदों के अतिरिक्त दो स्वतंत्र ग्रन्थों की भी रचना की—'ललित-प्रकाश' और 'सरसमंजावली'। 'ललित-प्रकाश' में टट्टी-संस्थान का सिद्धांत, श्रीस्वामी हरिदासजी का चरित, गुरु-प्रणालिका आचार्योत्सव आदि विषयों का विविध छंदों में वर्णन किया गया है। 'सरसमंजावली' में १४० मंज या मांझ हैं। बीच में कहीं-कहीं पर अड़िल्ल छंद भी हैं। इसकी रचना उच्चकोटि की है। काव्य-चमत्कार के साथ ही इसमें प्रेम-माधुरी और रस-वारुणी की एक निराली ही छटा और मादकता छलकती है। इसकी भाषा भी अनूठे ढंग की है। ब्रजभाषा, खड़ी बोली पंजाबी और फारसी का उसमें बड़ा मधुर मिश्रण हुआ है। कोई-कोई छंद 'तीर', 'तलवार' और 'तमंचा' का काम कर जाता है।

सहचरिशरण जी की सुधारस-मयी रुचिर रचना की कुछ बानगी नीचे दी जाती है—

सरस-मंजावली

अड़िल्ल

स्याम कठोर न होहु, हमारी बार कों।
नैक दया उर ल्याय, उदय करि प्यार कों॥
'सहचरि सरन' अनाथ, अकेलो जानिकैं।
कियो चहत खल ख्वार[1] बचाओ आनिकैं॥१॥

---

१ बरबाद, नष्ट।

स्याम सुवेद[1] कौ सार है।
आशिक-तिलक इश्क करतार है॥
आनँद-कंद तीन गुन[2] तें परें।
प्रीति-प्रतीति रसिक तासों करें॥२॥

मंज

कहि-कहि बचन, विहँसि, माथे पर कर को कबै धरोगे?
करुनाकर चितचोर कहावत, चित को, कबै हरोगे?
हरषि हमारी आँखिन में सुख, सुषमा[3] कबै भरोगे?
'सहचरिसरन' रसिक आशिक मोहि, मोहन कबै करोगे? ॥३॥
सरल सुभाव, सील संतोषी, जीव-दया चित-चारी।
काम-क्रोध-लोभादि विदा[4] करि, समुझि-बूझि अवतारी॥
ग्यान-भक्ति-वैराग विमलता, दसधा[5] पर अनुसारी।
'सहचरिसरन' राखि उर-सदगुन, जिमि सुवास फुरवारी॥४॥
धीरज-धर्म-विवेक-छमाजुत भजन-यजन,[6] दुखहारी।
तजि अनीति मन सेइ संत जन, मानि दीनता भारी॥
मीठे बचन बोल सुभ साँचे, कै चुप आनंदकारी।
कीरति-बिजय-विभूति मिलै, श्रीहरि-गुरु-कृपा अपारी॥५॥
पाहि-पाहि[7], उर अंतरजामी, हरन अमंगल ही[8] के।
'सहचरिसरन' विनय सुनि कीजै, बारिधि कृपा अमी के॥
दुस्तर दुसह दुखद अबिचारू, विफल होहिं खल जी के।
जिमि[9] सिसुपाल कुचाली- ज्यों के परे[10] मनोरथ फीके॥६॥

---

१ सुवेद्य, भली-भाँति जानने योग्य। २ सत्त्व, रज और तम। ३ आनन्दमय सौन्दर्य। ४ दूर कर दे। ५ भक्ति के दश प्रकार। ६ यज्ञ करना। ७ रक्षा करो, रक्षा करो। ८ हृदय के। ९ चेदि का राजा, जो श्रीकृष्ण का फुफेरा भाई था। १० परे...फीके—शिशुपाल की सारी दुरिच्छाएँ व्यर्थ गईं; रुक्मिणी का पाणि-ग्रहण न कर सका, श्रीकृष्ण और

छितिपति[१] लेत मोल पसु-पच्छिन, इहि बिधि कबै लहौगे ?
रवि-दुहिता[२] सुरसरित-भूमि जिमि, रस उर कबै बहौगे ?
पकरत भृंग कीट कों जैसे, तैसे कबै गहौगे ?
'सहचरिसरन' मराल मानसर,[३] मन इमि कबै रहौगे ? ॥७॥
निरदय हृदय न होहु मनोहर, सदय[४] रहौ मन-भावन !
नवल मोहिलौ[५] मोहि तजौ जिन तोहि सौंह प्रिय पावन ॥
रसिक 'सहचरिसरन' स्यामघन, रस[६]-बरसावन सावन।
दरस देहु बर बदन-चंद्रमा, चख-चकोर बिलसावन[७] ॥८॥
उर में घाव, रूप सों सैंकै, हित[८] की सेज बिछावै ?
दृग-डोरे सुइयाँ बर-बरुनी टाँके ठीक-लगावै ॥
मधु सचिक्कन[९] अंग-अंग छबि, हलुवा सरस खवावै।
स्याम तबीब[१०] इलाज करै जब, तब घायल[११] सचु[१२] पावै ॥९॥*
गज-मोतिन की मंजुल माला, सीस जरकसी[१३] चीरा।
चंद्र चारु बारौं पुनि तापर, कलित कलंगी हीरा ॥
नगवर[१४]-जड़े कड़े कर सुन्दर खड़े फेंट पट पीरा।
'सहचरिसरन' लियो बिन मोलन, मृदुबोलन मुख बीरा[१५] ॥१०॥

उनके भक्त पांडवों का बाल भी बाँका न कर सका, जगद्विजयी भी न हो सका। यह सब न होकर हुआ यह कि अंत में भगवान् कृष्ण के चक्र सुदर्शन द्वारा मारा गया।

१ राजा। २ सूर्य-पुत्री यमुना। ३ एक निर्मल झील, जो तिब्बत में है। कहते हैं, यहाँ राजहंस पाये जाते हैं। ४ दयालु। ५ मोही, प्रेमी। ६ रस..सावन—आनन्द की वर्षा करने के लिए सावन मास के समान। ७ प्रसन्न करनेवाले। ८ प्रेम। ९ स्निग्ध; स्नेहपूर्ण। १० हकीम। ११ प्रेम का घायल। १२ आराम। १३ रेशमी वस्त्र, जिस पर जरतारी का काम होता है। १४ श्रेष्ठ रत्न। १५ तांबूल का बीड़ा।

*यह मंज मीरा के पद की भाष्यस्वरूप कही जा सकती है :
'मीरा की तब पीर मिटैगी, जब बैद सँवलिया होय।'

जरीदार पगरी[1] उदार उर, मुक्तमाल थहरित[2] है।
जरद[3] लपेटा फेंट[4] कटि सों, गुरु गर्वीली गति है।।
'सहचरिसरन' मयंक-वदन की मदन-मोहिनी अति है।
छवि-सागर की छवि को बरनै, कवि की क्या कुदरति[5] है।।११।।
कटि किंकिनि, सिर मोर मुकुट वर, उर बनमाल परी है।
करि मुसिक्यान चकाचौंधा चित, चितवनि रंग-भरी[6] है।।
'सहचरिसरन' सुविस्व-विमोहिनि, मुरली अधर धरी है।
ललित-त्रिभंगी सजल मेघ तनु, मूरति मंजु खरी[7] है।।१२।।
मलयज-तिलक ललाट पटल, पट अटल सनेह सटक सो।
मदन-विजय जनु करत पुरट मय, कटि किंकिनी कटक सो।।
'सहचरिसरन' तरनि-तनया-तट, नटवर, मुकुट-लटक सो।
चित चुरली मुरली-धुनि गावत, आवत चटक-मटक सी।।१३।।
अव तकरार[8] करौ मति यारो, लगो लगन चित चंगी।।
जीवन-प्रान जुगल जोरी के, जगत जाहिरा[9] अंगी।।
मतलब नहीं फरिश्तों से[10] हम, इश्क-दिलाँ-दे[11] संगी।
'सहचरिसरन' रसिक सुलतां[12] बर, मिहरबान रस रंगी।।१४।।
मय अमलादि पिया न पिया, सुख प्रेम-पियूष पिया रे।
नाम अनेक लिया न लिया, रति स्यामा-स्याम लिया रे।।
आन सुदान दिया न दिया, बर आनँद हुलसि दिया रे।
जप जग्यादि किया न किया, हिय पर-उपकार किया रे।।१५।।*

---

१ पगड़ी। २ हिलती। ३ पीला। ४ कमर में लपेटने का वस्त्र। ५ मजाल, शक्ति। ६ मतवाली। ७ खड़ी है। ८ लड़ाई-झगड़ा। ९ पक्ष वाले शरणागत। १० देवदूतों से, सिद्ध पुरुषों से। ११ प्रेमियों के। १२ बादशाहों में श्रेष्ठ।

*इस मंज के तीसरे और चौथे चरण मार्के के हैं। दूसरों को 'आनन्द देना' यही सर्वोत्तम दान है तथा 'परोपकार करना' यही सर्वोत्तम यश है।

अड़िल्ल

फूल विमल हरिदास रसिक रसमूल है।
आलि सरन, अलि-सरन कृपा अनुकूल है।।
पान करत उर भरत प्रेम, स्वच्छंद कौं।
बंस प्रसंसित सुलभ दुलभ[1], मति मंद कौं।।१६।।

यह मंजावलि मंजु वर, इस्क सिलीमुख[2]-ग्राम।
रसिकन हृदय प्रवेश करि, राजत अति अभिराम।।१७।।

ललित-प्रकाश

गुरु-प्रणालिका

रोला

आसधीर[3] गंभीर बिप्र सारस्वत स्तुतिपर[4]।
जनम अलीगढ़ मध्य मधुर बानी प्रमोदकर।।
गुरु अनुकूल अतूल[5] कूल बन निधिबन माहीं।
सत्तर लों तनु राखि साखि[6] जस की मिति नाहीं।।१८।।
श्रीस्वामी हरिदास रसिक-सिरमौर अनीहा[7]।
द्विज सनाढ्य सिरताज सुजसु कहि सकत न जीहा[8]।।
गुरु-अनुकंपा मिल्यौ ललित निधिवन[9] तमाल के।
सत्तरलों[10] तरु[11] बैठि गनै, गुन प्रिया-लाल के।।१९।।

---

१ दुर्लभ। २ बाण। ३ यह महाराज निंबार्क संप्रदाय में महात्मा हरिदेवजी के शिष्य थे। श्री स्वामी हरिदासजी के गुरु यही आसधीरजी थे। भक्तमाल में लिखा है : 'अस आसधारि उद्योतकर रसिक छाप हरिदास की।' ४ श्रोत्रिय, वैदिक धर्मानुयायी। ५ अनुपम। ६ साक्षी। ७ निष्काम। ८ जीभ। ९ वृन्दावन में एक कुञ्ज का नाम। १० सत्तर वर्ष तक। ११ पेड़ के नीचे बैठकर।

बीठल[1]-विपुल सनाढ्य आढ्य[2] धन-धरम पताका।
श्रीगुरु अनुग[3] अनन्य अनूपम जनु ससि राका॥
बिपिन सु निधिबन सघन जहाँ जाको मन अटक्यो।
ब्यासी[4] की गनि आयु, उदासी[5] ह्वै चित्त झटक्यो॥२०॥
सुमन बिहारिनदास[6] सूर सूरज द्विज धरमी।
जन्म मधुपुरी[7] लीन्ह, कीन्ह अति ही निज नरमी[8]॥
द्वै कम इक सत बरस, आयु आनँद में बीती।
गायौ नित्य-बिहार, सार निगमागम नीती॥२१॥
श्रीगुरु अंत प्रसन्न धन्य, बनवास विसेखी।
उनसठि सुठि जेहि आयु, स्याम स्यामा दुति[9] देखी॥
सरसदेव रति-सरस[10], गौड़कुल कल जनु भृंगी।
गुरु करुना बनवास बहत्तर, आयु असंगी[11]॥२२॥
गुरु पीछे छत्तीस बरस, बनराज[12] विराजै।
काम-केलि-कौतूह[13], गाय, अनँद नित साजै॥
नरहरिदेव सनाढ्य, गुढ़ा[14] को प्रथम बसेरो[15]।
पुनि आरन्य अनादि, अनूपम आनँद हेरो॥२३॥
'रसिकदेव' रसमीन सनावढ़ पीन[16] प्रेम सों।
जनम बुन्देलाखंड बिपिन, पुनि भजन नेम सों॥
कीन्हैं शिष्य अनेक, एक-ते-एक अमायकों।
तिन बिच मिथुन प्रसिद्ध-सिद्ध सुनि सब बिधि लायक॥२४॥

---

१ इन्हें विट्ठलविपुल भी कहते हैं। यह स्वामी हरिदासजी के मामा थे। पीछे स्वामीजी के शरणापन्न होकर उनके उत्तराधिकारी हुए। २ संपन्न। ३ अनुगामी। ४ (८२)। ५ विरक्त। ६ इन्हें विहारिनिदेवजी भी कहते हैं। ७ मथुरा। ८ माधुर्ययुक्त। ९ छवि। १० प्रेम में प्रवीण। ११ विरक्त। १२ वनराज से तात्पर्य यहाँ 'निधिवन' से है। १३ लीला। १४ यह स्थान बुन्देलखंड में है। १५ निवासस्थान। १६ परिपुष्ट, दृढ़। १७ माया से निर्लिप्त। १८ दो; इनके प्रधान शिष्य दो थे—श्री ललित-किशोरीजी और श्री पीताम्बरदेवजी।

'ललितकिसोरी', छकित[१] ललित माथुर द्विजराजू।
भये प्रगट अति कांति, साखि सज्जन सिरताजू।।
रीझि दियौ गुरु जाहि अगद[२] वृन्दावन पद कौं।
नव ऊपर धरि सुन्न रहे, गहिकै सद-हद[३] कौं।।२५।।
ललितमोहिनीदास,[४] व्यासकुल,[५] कौ अवतंसा।
जनम ओड़छे माँहि, नाहिं कलि की रति अंसा[६]।।
हृदयजनित निर्वेद, सदय गुरु-कृपा घनेरी।
बन-मकरंद-प्रमत्त आयु अठहत्तर हेरी[७]।।२६।।

---

१ मस्त। २ व्याधि रहित। ३ मर्यादा स्वरूप स्थान, वृन्दावन। ४ श्री स्वामी हरिदासजी से श्रीललितमोहिनीदासजी तक टट्टी-संस्थान के ये ही मुख्य अष्टाचार्य हैं। ५ श्री हरिराम व्यासजी। ६ लेशमात्र। ७ बिताई।

गुणमंजरीदास

छप्पय

जुगल-प्रेम-सर्वस्व, भजन-भावन-गत अहनिस।
ब्रज-वासिन कों करन सरन भक्तन कों सब दिस॥
राधारमन लड़ाय, रहत ताही रँगराते।
श्रीभागौत-सुरूप, इष्टग्रंथन-रसमाते॥
पद-रचना पावन किये, देस-देस भव-भंजरी।
श्रीगल्लूजी गुणमंजरीदास, अपर गुणमंजरी॥

—गोस्वामी राधाचरण

गुणमंजरीदासजी का असली नाम श्रीगोस्वामी गल्लूजी था। इनका जन्म ज्येष्ठ ८ संवत् १८८४ को वृन्दावन में हुआ। यह राधारमणी गोस्वामी श्रीरमणदयालुजी के पुत्र थे। इनकी माता का नाम श्रीसखीदेवी था। गोस्वामी रमणदयालुजी अधिकतर फर्रुखाबाद में रहते थे। संवत् १९०१ में गोस्वामीजी गल्लूजी का विवाह फर्रुखाबाद के जगन्नाथ पुरोहित की कन्या के साथ हुआ। कुछ दिनों बाद सखीदेवी का स्वर्गवास हो गया। लोगों के आग्रह से बृन्दावन के जगन्नाथ मिश्र की कन्या सूर्यदेवी के साथ

इनका दूसरा विवाह हुआ। इन्हीं के गर्भ से फाल्गुन कृष्ण ५ संवत् १९१५ में हमारे साहित्य-पथ-प्रदर्शक भारतेंदु-सखा स्वर्गीय श्रीराधाचरण गोस्वामी का जन्म हुआ।

संवत् १९३२ में श्रीगल्लूजी महाराज ने बृन्दावन में श्रीषड्भज महाप्रभुजी का मंदिर स्थापित किया। अब तक आप प्रायः बाहर ही रहा करते थे, कभी काशी, कभी फर्रुखाबाद, कभी लखनऊ। संवत् १९३७ से आप बराबर बृन्दावन-वास करने लगे। श्रीराधारमणजी की सेवा-अर्चा करते हुए ६३ वर्ष की अवस्था में मार्गशीर्ष कृष्ण, १ सं० १९४७ को आप गोलोक धाम पधार गये।

श्रीगल्लूजी महाराज का स्वभाव बड़ा सरल, निष्कपट और मधुर था। क्रोध तो लेशमात्र भी नहीं था। भगवच्चरणारविन्दों में अनन्य निष्ठा थी। ब्रजभाषा के तो अनन्य भक्त थे। फारसी शब्द न बोलने का बड़ा कड़ा नियम बना रखा था। एक दिन साहजी साहब (श्री ललितकिशोरी) से बन्दूक चलाने का वर्णन इस प्रकार किया—'लोह-नलिका में स्यामचूर्ण प्रवेश करिकैं अग्नि जो दीनों, तो भड़ाम शब्द भयौ। श्रीमद्भागवत पर आपकी विशेष भक्ति थी। आपने जितना धनोपार्जन किया, सब भगवद्-सेवा में लगा दिया। पदों में आप अपना नाम गुण-मंजरी रखते थे। आपने 'श्रीयुगल छद्म', 'रहस्य-पद' तथा 'पदावशेष' और फुटकर पदों की रचना की है। पद सब पुरानी परिपाटी के हैं। इनके पदों में रूपक और उपमाओं की अच्छी छटा है। कुछ मधुर सुन्दर पद उद्धृत किये जाते हैं—

मलार

देखो आली, गौर[1]-मेघ-उल्लास।
श्रीअद्वैत[2]-पवन पुरवाई करुना-बिजुरि[3]-विलास॥
अंतर स्याम घटा प्रगटत हैं, अरुनांवर परगास[4]।
नाम-धुनी[5] गरजत प्रेमामृत, बरसत है रसरास॥
कबहुं परत बैवर्न्य इन्द्रधनु, धुरवा अश्रु-निकास।
उपजत है रोमांच-सस्य[6] बहु, निरखत पूरै आस॥
पोषक चातक-रसिक-भक्तजन हरत है बिरह-हुतास।
नव-अनुराग-नदी उमगी है, करम-धरम-तट-नास॥
देत बहाय त्रास-लज्जा-तृन, कपट-संक, नहिं पास।
श्रीवृन्दावन-प्रेमसिंधु मिलि, 'गुनमंजरि' सुखवास॥१॥*

मलार

हमारे घन स्यामाजू कौ नाम।
जाकौं रटत निरंतर मोहन, नंदनदन घनस्याम॥
प्रतिदिन नव-नव महामाधुरी, बरसति आठों जाम।
'गुनमंजरि' नवकुंज मिलावै, श्रीवृन्दावन-धाम॥२॥

---

१ महाप्रभु; श्रीचैतन्यदेव। २ अद्वैतप्रभु, यह माध्व संप्रदाय के भारी उद्भट आचार्य थे। इनका जन्म-स्थान नदिया शांतिपुर माना जाता है। "नवभक्तमाल" में इनके विषय का यह छप्पय प्रसिद्ध है; "पेखि प्रबल पाखंड खंड करिबे मति कीनीं। गंगोदक तुलसी मिश्रितहरि-चरननदीनो॥ सघनलित हुंकार सार अवतार धरायो। प्रेमानंद-समुद्र सर्व दिग-विदिग बहायौ। अद्वैत भये अद्वैत हरि, भक्ति प्रचारी परात्पर। कलिकाल प्रलय प्रगटी प्रथम रुद्रमूर्ति शांतीनगर।" ३ बिजली। ४ प्रकाश। ५ 'हरे कृष्ण हरे राम' आदि की ध्वनि। ६ धान्य।

*इस पद में महाप्रभु श्री चैतन्यदेव का पावस के साथ बहुत ही सुन्दर सांगरूपक बांधा गया है।

बसंत

प्यारी चरनन में नव-बसंत। दस नख ससि-किरननि नित लसंत[१]।
अरुनित अंगुरी हैं नव-प्रवाल। बिछुवा घुंघरू मुकुलित[२] रसाल[३]॥
मेहँदी-दुति केसू[४] कौ प्रकास। जावक नव-बेली कर बिलास।
छिप बोलत स्यामल गुनि सुरूप। कोकिल कुहकति है अति अनूप॥
दामन-लामन[५] मलया समीर। सुरभित चहुँदिसि मिलि हरत धीर।
केसर उर की प्रिय लगी आय। गुनगुन[६] गुनमंजरी मधुप धाय॥३॥*

होली

पिय-प्यारी खेलत होरी।
श्री बृन्दावन-कुंज-भवन में, श्रीजमुनाजी-ओरी[७]।
नँदनन्दन-रसिकेस रसीले, श्रीवृषभानु-किसोरी॥
भरें हिय भाव कमोरी[८]॥
तरल कटाच्छ, मंजु पिचकारी, छूटत तन-मन बोरी[९]।
लगत है नयो-नयो री॥
हँसन-अबीर[१०] हीर[११] दुति सुंदर, उजलत[१२] परम उजोरी।
गौर-स्याम-छबि मिलिकैं चोवा, अंग-अंग चरची[१३] री॥
सुगंधन चित्तनि चोरी॥
गोल कपोल-कुमकुमा दोऊ, धारत हैं मुख सों री।
कंकन ताल किंकिनी ढप रव, बाजत हैं सुर सों री॥
मधुर वंसी धुनि थोरी॥

---

१ शोभित होते हैं। २ बौरे हुए। ३ आम। ४ टेसू, पलाश। ५ हिलना, लटकना। ६ भौंरों का गुञ्जार। ७ तरफ। ८ रंग भरने का पात्र। ९ डूब गए। १० प्रेमरूपी गुलाल; प्रेम का रंग साहित्य में लाल माना गया है। ११ हीरे की चमक। १२ प्रकाशमय। १३ लगा दिया।

*इस पद में श्री राधिका जी के साथ बसंत का रूपक बड़ा सुन्दर और सांगोपांग बांधा गया है।

श्रीललितादिक सखी-सहेली, यह आनन्द लहो री।
'गुनमंजरि' राधा-माधव पर, वारति है तृन तोरी॥
सिरावति[1] नैन हियो री॥४॥

---

१ शीतल करती है।

नारायणस्वामी

छप्पय

अच्छर अरथ अनूप, अलंकारनि सु अलंकृत।
भाव हृदय गंभीर, अनप्रासनि गुन गुंफित॥
राग नवीन-नवीन प्रवीनन को मन मोहै॥
नृत्य करत, गति भरत, रास-मंडल अति सोहै॥
करि देस-विदेस प्रचार श्रीबृन्दावन बिश्राम।
श्रीनारायण स्वामी नवल पद-रचना ललित ललाम॥

—गोस्वामी राधाचरण

नारायणस्वामीजी का जन्म संवत् १८८५ वा ८६ के लगभग रावलपिंडी (पंजाब) जिले में हुआ था। यह सारस्वत ब्राह्मण थे। संवत् १९०० में बृन्दावन आकर इन्होंने लाल बाबू के मन्दिर में दफ्तर की नौकरी कर ली। दिन में नौकरी बजाते और रात में रास-बिलास और सत्संग में लगे रहते थे। उस समय यह गृहस्थ थे, पर साथ में स्त्री-पुत्र नहीं रखते थे।

सबसे पहले इन्होंने भगवत्-सम्बन्धी गजलों की एक पुस्तक छपवाई। रेखता और पद भी कभी-कभी रचा करते थे। श्रीमती महारानी टिकरी के मंदिर में जो मंडली रास करती थी, उसके द्वारा यह अपने पदों का अभिनय कराते थे। प्रेम-रंग कुछ ऐसा चढ़ गया, कि नौकरी छोड़कर संन्यास ले लिया। इधर आपके पदों की ओर रसिक प्रेमियों का आकर्षण दिन-दिन बढ़ने लगा। स्वामी जी अद्वैतवादी संन्यासी नहीं थे। इन्होंने दंड आदि धारण नहीं किया। प्रायः आप केशी घाट पर खपटिया बाबा के घेरे में यमुना-तट पर रमा करते थे।

स्वामी जी का स्वभाव बड़ा सरल और दयालु था। आप कभी धातु-स्पर्श नहीं करते थे। कामिनी-कांचन से सदा बचा करते थे। स्वामीजी की ख्याति धीरे-धीरे बढ़ती ही गई। रुपया ढेरों में भेंट आया करता, जिसे इनके बगुला-भगत चट कर जाते थे। इन गुन्डों के मारे स्वामी जी बृन्दावन छोड़कर कुसुमसरोवर पर रहने लगे।

स्वामी जी बृन्दावन की पवित्र भूमि पर शौच नहीं जाते थे। वर्षा में तो भतरौंड की ओर और गर्मी-जाड़े में यमुना पार निबटने जाते थे। ध्यान-धारणा तो इनकी आदर्श थी। प्रेम-सिंधु में डूबकर आँसुओं का तार बाँध देते थे।

वैसे तो स्वामीजी के सैकड़ों शिष्य थे, पर पट्टशिष्य अमृतसर के ठाकुर महानचन्द्रजी और जालंधर के लाला बसंतरायजी थे। श्री पंडित दीनदयाल जी व्याख्यान-वाचस्पति भी आपके अंतरंग मित्रों में से थे।

फाल्गुन कृष्ण ११ संवत् १९५७ में श्रीगोबर्द्धन के समीप कुसुम-सरोवर पर श्री उद्धवजी के मन्दिर में श्री स्वामी जी का देहावसान हुआ। ठाकुर महानचंद्रजी ने वहाँ पर एक समाधि बनवा दी।

स्वामी जी ने सहस्रों भक्तिरस-पूरित पद-भजन रचे। संवत् १९४० में प्रथम बार लाला गनेशीलाल लोहावाले ने स्वामीजी के पदों का एक संग्रह 'ब्रज-बिहार' के नाम से छपवाकर मुफ्त बांटा था। इसके कई संस्करण बाद को हुए। 'भारतेंदु' पत्र के संपादक श्रीराधाचरणजी गोस्वामी ने 'ब्रज-बिहार' के प्रथम संस्करण की समालोचना इन शब्दों में की थी :—

"ब्रज-बिहार परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीयुत महानुभाव श्रीनारायण स्वामीजी की वाणी है। स्वामीजी महाराज इस समय बृन्दावन में महात्माओं की श्रेणी में अग्रगण्य हैं। आपने जो-कुछ समय-समय पर लीलारस अनुभव किया है, वही पदों के द्वारा रसिक लोगों की तृप्ति के लिए पुस्तक पयोद के द्वारा बरसाया है। ये पद कुछ हमारी प्रशंसा के आश्रित नहीं। इनमें कुछ ऐसा चमत्कार है, कि सैकड़ों पुस्तकें लिखकर और हजारों पुस्तकें छापकर भारतवर्ष के इस ओर से उस ओर तक प्रसिद्ध हुई, पर

प्रेमीजनों की तृष्णा उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है। इससे अधिक, रासधारियों की मंडलियों में तो इनका राज्य है। जब तक ये पद नहीं गाये जाते, दार्शनिक चित्र लिखित ही नहीं होते। फिर इन पदों का भाव विलक्षण, राग सद्यः मनोहर और अक्षर तो जादू के बाण हैं। कैसा ही कुटिल कल्मषी क्यों न हो, एक बार तो मोहित हो ही जाता है। इसी से आज स्वामी जी की वाणी प्राणी-मात्र को प्यारी लगती है। इसी वाणी के बेधे अनेक अनुरागी घरबार छोड़कर ब्रजमंडल में घूमते-फिरते हैं।"

अब आपकी रचना पर हमें कहने-सुनने की आवश्यकता नहीं। स्वामी जी ने पंजाबी भाषा-भाषी होते हुए भी ब्रजभाषा की जो अनन्य उपासना की वह स्तुत्य है। आपके कुछ पद नीचे उद्धृत किये जाते हैं।*

कवित्त

चाहै तूं योग करि भृकुटी-मध्य ध्यान धरि,
　　चाहै नामरूप मिथ्या जानिकैं[1] निहारिलै।
निर्गुन, निर्भय, निराकार ज्योति व्याप रही,
　　ऐसो तत्त्वज्ञान निज मन में तूं धारिलै।
'नारायण' आपने को आपु हीं बखान करि,
　　मोतें[2] वह भिन्न नहीं या विधि पुकारिलै।

---

१ दोनों भौंहों के बीच में सुषुम्ना नाड़ी होती है। इसी नाड़ी की साधना द्वारा योगियों को आत्म-ज्योति का दर्शन मिलता है। २ मौतें... नहीं जीव और ब्रह्म एक ही है। 'अथायमात्मा' ब्रह्म आदि वाक्यों से सिद्ध अद्वैतवाद के इसी आशय का एक श्लोक भी प्रसिद्ध है। "यावन्निरंजनमजं पुरुषं जरन्तं संचिंतयामि निखिले जगति स्फुरंतम्। तावद् बलात् हंत हृदन्तरे मे गोपस्य कोऽपि शिशुरंजनपुञ्जमंजुः।"

*श्री नारायण स्वामी की, यह संक्षिप्त जीवनी हमने श्रीमान् पंडित राधाचरण गोस्वामी लिखित उस लेख के आधार पर लिखी है, जो उन्होंने द्वादश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के लिए लिखा था।

जौलौं तोहि नंद कौ कुमार नाहि दृष्टि पर्‌यौ,
तब लौं तू भलै बैठि ब्रह्म कों बिचारिलै ॥१॥

जैजैवंती

आजु सखी प्रीतम जो पाऊँ, तौं अपने बड़भाग मनाऊँ ॥
साँवरि मूरति नैन बिसाला, चंदबदन, गर मूतियन-माला।
रूप मनोहर चाल मराला, सुंदरता पर बलि बलि जाऊँ ॥
जो प्यारे इन गलियन आवैं, मो बिरहिन कों दरस दिखावैं।
बैठि निकट मृदु बचन सुनावैं, मैं उनको हँसि कंठ लगाऊँ ॥
'नारायण' जीवन गिरिधारी, कब लेंगे सुधि आय हमारी।
जब मोसों कहैंगे प्यारी, तब मैं फूली अँग न समाऊँ ॥२॥

कान्हरो

नँद-नँदन के ऐसे नैन।
अति छबि-भरे नाग के छौना, डरति डसैं करि सैन[1] ॥
इन सम साबर[2] मंत्र न होई, जादू जंत्र-तंत्र नहिं कोई।
एक दृष्टि में मन हरि लेवैं, करि देवैं बेचैन ॥
चितवन में घायल करि डारैं, इनपै कोटि बान लै वारैं।
अति पैने तिरछे हिय कसकैं, स्वाँस न देवैं लैन ॥
चंचल चपल मनोहर कारे, खंजन-मीन लजावनहारे।
'नारायण' सुन्दर मतवारे, अनियारे दुखदैन ॥३॥

झंझोटी

साँवरे, क्यों मोसों रिसि मानी।
तेरे काज घर बार त्यागिकैं गलियन फिरति दिवानी ॥

---

१ इशारा। २ वाममार्गोक्त अंट-संट अक्षरों के मन्त्र, जिनका सद्यः प्रभाव देखा जाता है। "बार बार बंदौ हर-गिरजा! सबार मंत्र-जाल जिन्ह सिरजा।" तुलसीदास।

श्रीनारायणस्वामी कान्ताभाव की उपासना के संन्यासी थे। इनका अंतरंग नाम 'नवलसखी' था।

लोक-लाज कुलरीति प्रीति जग, इनहूँ को दियो पानी[1]।
'नारायण' अवतौं हँसि चितवौ, एरे रूप गुमानी ॥४॥

आसावरी

सखि, मेरे मन की को जानै।
कासों कहौं, सुनै जो चित दै, हित की बात बखानै।
ऐसो को हैं अंतरजामी, तुरत पीर पहिचानै।
'नारायण' जो बीत रही है, कब कोई सच मानै ॥५॥

सोरठ

मनमोहन जाकी दृष्टि परत, ताकी गति होत है और-और।
न सुहात भवन, तन-असन-वसन, बनहीं कों धावत दौर-दौर।
नहिं धरत धीर, हिय बिरह-पीर, व्याकुल है भटकत ठौर-ठौर।
कब अँसुवन भरि 'नारायण' मन, झाँकत डोलत है पौर-पौर[2] ॥६॥

सोरठ

जाहि लगन लगी घनस्याम की।
धरत कहूँ पग परत है कितहूँ, भूलि जाय सुधि धाम की ॥
छबि निहार नहिं सार[3] कछु, धरि पल निसिदिन जाम की।
जित मुंह तितैहीं धावैं, सुरति न छाया घाम की ॥
अस्तुति निंदा करौ भलैही, मेंड़[4] तजी कुल-ग्राम की।
'नारायण' बौरी भई डोलै, रही न काहू काम की ॥७॥

खमाच

प्रीतम, तूं मोहि प्रान तें प्यारो।
जो तोहिं देखि हियो सुख पावत, सो बड़ भागिनवारो[5]?
तूं जीवन-धन, सरबस तूं ही, तुहीं दृगन कौ तारो।

---

१ तिलांजलि दे दी, बिलकुल छोड़ दिया। २ झांकता...पौर—द्वार-द्वार पर देखता हुआ घूमा करता है। ३ मजा, आनन्द। ४ मर्यादा। ५ भाग्यवान्।

जो तोकों पलभर न निहारूँ, दीखत जग अँधियारो॥
मोद बढ़ावन के कारन हम, मानिनि रूपहिं धारो।
'नारायण' हम दोउ एक हैं, फूल[1] सुगंध न न्यारो॥८॥

काफी

या साँवरे सो मैं प्रीति लगाई।
कुल-कलंक तें नाहिं डरौंगी, अब तौ करौं अपनी मनभाई॥
बीच बाजार पुकार कहौं, मैं चाहे करौ तुम कोटि बुराई।
लाज-मजाद[2] मिली औरन कों, मृदु मुसुकानि[3] मेरे बँट[4] आई॥
बिन देखे मनमोहन को मुख, मोहिं लगत त्रिभुवन दुखदाई।
'नारायण' तिनकों सब फीको, जिन चाखी यह रूप-मिठाई॥९॥

बिहाग

बेदरदी,[5] तोहिं दरद न आवै।
चितवन में चित बस करि मेरो, अब काहे कों आँख चुरावै[6]॥
कब सों परी द्वार पै तेरे, बिन देखे जियरा घबरावै।
'नारायण' महबूब साँवरे, घायल करि फिर गैल[7] बतावै॥१०॥

नयनो रे, चितचोर बतावौ।
तुमहीं रहत भवन रखवारे, बाँके बीर कहावौ॥
तुम्हरे बीच[8], गयो मन मेरो, चाहे सोहैं खावौ।
अब क्यों रोवत हौ दईमारे, कहुँ तौ थाह लगावौ॥
घर के भेदी बैठि द्वार पै, दिन में घर लुटवावौ।
'नारायण' मोहिं वस्तु न चहिए, लेनेहार[9] दिखावौ॥११॥

---

१ फूल····न्यारो—जैसे फूल सुगंध पृथक्-पृथक् नहीं हैं, उसी प्रकार, प्यारे, तुम और हम एक ही हैं। २ मर्यादा। ३ मुस्कान। ४ बाँट, हिस्सा। ५ दूसरे के कष्ट का अनुभव न करने वाला, निर्दय। ६ छिपाता फिरता है। ७ सामने से हटा रहा है, दगाबाजी कर रहा है। ८ तुम्हारे ही भेद में। ९ अर्थात् वही चितचोर।

लावनी

रूपरसिक मोहन मनोज मन-हरन सकल गुन-गरबीले।
छैलछबीले, चपल लोचन-चकोर चित-चटकीले[१]॥
रतन-जटित सिर मुकुट लटक रहि, सिमट स्याम लट[२] घुंघरारी।
बालबिहारी, कन्हैयालाल चतुर तेरी बलिहारी॥
लोलक[३] मोती काम कपोलनि झलक बनी निर्मल प्यारी।
जोति उज्यारी, हमैं हरबार[४] दरस दै गिरिधारी॥
बिज्जु-घटासी दंत छटा मुख देखि सरद-ससि सरमीले।
छैलछबीले, चपल लोचन-चकोर चित-चटकीले॥
अँगुली झीन जरीपट कछनी, स्यामल गात सुहात भले।
चाल निराली, चरन कोमल पंकज के पात भले।
पग-नूपुर-झनकार, परम उत्तम जसुमति के तात भले।
संग सखन के, निकट जमुन-तट गोबछरान चरात[५] भले॥
ब्रजजुवतिन के प्रेम-भोग में घर-घर माखन-गटकीले[६]।
छैलछबीले, चपल लोचन-चकोर चित चटकीले॥
गावैं वागविलास,[७] चरित हरि सरद-रैन रसरास करैं।
मुनिजन मोहैं, कृष्ण कंसादिक-खल-दल नास करैं॥
गिरिधारी महाराज सदा श्रीब्रज बृन्दावन-वास करैं।
हरि-चरित्र को, स्रवन सुनि-सुनि करि मन अभिलाष करैं॥

---

१ रँगीले। २ अलक। ३ बुलाक। ४ बार-बार। ५ प्यारा। इस शब्द को हिन्दी कवियों ने छोटे-बड़े सभी के साथ प्रयुक्त किया है। ६ खानेवाले। ७ वाक्य-विलास, बतरस।

हाथ जोरकैं करै बीनती 'नारायण' दिल-दरदीले[1]।
छैलछबीले, चपल लोचन-चकोर चित-चटकीले ॥१२॥

बिहाग

कर मन, नंदनंदन कौं ध्यान।
यहि अवसर तोहि फिरि न मिलैगो, मेरो कह्यौ अब मान ॥
घूंघरवारी अलकैं मुख पै, कुंडल झलकत कान।
'नारायण' अलसाने नैना, झूमत रूप-निधान ॥१३॥

भैरव

आजु सखी, प्रातकाल, दृग मीड़त जगे लाल,
रूप के बिसाल सिंधु गुनन के जहाज।
कुंडल सों उरझि माल, मुख पै अलकन कौ जाल,
भई मैं निहाल[2] निरखि सोभा की समाज[3] ॥
आलस-बस झुकत ग्रीव, कबहुँ अँगड़ाइ लेत,
उपमा[4] सम देत मोहिं आवत है लाज।
'नारायण' जसुमति ढिग हौं तो गई बात कहन,
यामें भये री, एक पंथ दोऊ काज ॥१४॥

नट

देखु सखी, नव छैलछबीलौ, प्रात समै इततें को आवै ?
कमल समान बड़े दृग जाके, स्याम, सलौनो मृदु मुसुकावै ॥
जाकी सुन्दरता जग बरनत, मुख-सोभा लखि चंद लजावै ॥
'नारायण' यह किधौं वही है, जो जसुमति कौ कुँवर कहावै ॥१५॥

ईमन

मोपैं यह कैसी मोहिनी डारी, चितचोर छल गिरिधारी।
गृह-कारज में जी न लगत है, खान-पान लगै खारी ॥

---

१ दिल का दर्द जाननेवाला। २ सफल संतुष्ट। समूह, परम सौंदर्य। ४ तुलना।

निपट उदास रहत हौं जबतें, सूरत देखि तिहारी ॥
सँग की सखी देति मोहि धीरज, बचन कहति हितकारी।
एक न लगति कही[1] काहू की, कहति-कहति सब हारी ॥
रही न लाज, सकुच गुरुजन की, तन-मन-सुरति बिसारी ॥
'नारायण' मोहि समुझि बावरी, हँसत सकल नर-नारी ॥१६॥

कालिंगड़ा

मूरख, छाँड़ि वृथा अभिमान।
औसर बीत चल्यो है तेरो, दो दिन कौ मेहमान ॥
भूप अनेक भये पृथिवी पर, रूप-तेज-बलवान।
कौन बच्यो या काल-ब्याल तें, मिटि गये नाम-निसान ॥
धवल, धाम, धन, गज, रथ, सेना, नारी चंद्र-समान।
अंत समय सबहीं को तजिकैं, जाय बसे समसान ॥
तजि सतसंग भ्रमत बिषबन में, जा बिधि मरकट[2] स्वान।
छिनभरि बैठि न सुमिरन कीन्हों, जासो होय कल्यान[3] ॥
रे मन मूढ़, अनत जनि भटकै, मेरो कह्यौ अब मान।
'नारायण' ब्रजराज-कुँवर सों, बेगहिं करि पहिचान ॥

---

१ उपदेश। २ बंदर, पशुओं में यह बड़ा कामी माना गया है। ३ श्रेय, मोक्ष।

ललितकिशोरी

छप्पय

प्रथम लखनऊ बस श्रीवन सों नेह बढ़ायौ।
तहँ श्रीजुगल-सुरूप थापि मन्दिर बनवायौ॥
द्वापर को सुखरास रास कलियुग में कीनों।
सोइ भजन-आनन्द-भाव-सहचरि-रँग-भीनों॥
लाखन पद ललितकिसोरि का नाम प्रगटि बिरचे नये।
कुल अग्रवाल-पावन करन कुन्दनलाल प्रकट भये॥

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

लखनऊ में साह बिहारीलाल जी अग्रवाल नवाब के जौहरी थे; इनके पुत्र साह गोविंदलालजी थे। इनकी दो स्त्रियाँ थीं। पहली स्त्री के साह रघुबरदयालजी और साह मक्खनलालजी नाम के दो पुत्र हुए, और दूसरी स्त्री के साह कुंदनलालजी और साह फुंदनलालजी। इन दोनों भ्राताओं का पारस्परिक प्रेम अति प्रशंसनीय था। भारतेंदुजी ने तो यहाँ तक लिखा है :

'त्रेता में जो लक्षमन करी, सो इन कलियुग माँहि किय।'

कौटुंबिक कलह अथवा किसी गर्हित विवाद के कारण ये दोनों भ्राता[1] संवत् १९१३ में लखनऊ छोड़कर बृन्दाबन चले गए। गोस्वामी राधाचरणजी

---

[1] इन भक्त भ्राताओं के संबंध में गोस्वामी श्रीराधाचरणजी लिखते हैं : "छांड़ बादशाही वैभव लक्ष्मणपुर त्याग्यो। श्री वृन्दाबन बास दृढ़ व्रत, अति अनुराग्यो। "ललित-निकुंज" बनाय राधिका-रमन बिराजै। रास बिलास प्रकाश लच्छ पद रचना भ्राजे। ब्रजराज मध्य समाधि लिय जुगलभ्रात निर्भय निपुन; श्री ललितकिशोरी, ललितमाधुरी, प्रेममूर्ति बृन्दाविपिन।" (नवभक्तमाल)

के शब्दों में—'बृन्दावन उस समय प्रेमी रसिकों का 'मीना बाजार' था। साह कुंदनलालजी 'ललितकिशोरी' की छाप से और साह फुंदनलालजी 'ललितमाधुरी' के नाम से भगवल्लीला-सम्बन्धी सरस पदों की रचना करते लगे। पर दस हजार से कम न होंगे। संवत् १९१७ में इन्होंने संगमरमर का अति विचित्र मंदिर बनवाना आरम्भ किया और संवत् १९२५ में उसमें श्री ठाकुरजी विराजमान कराये। मंदिर की नक्काशी और संगतरासी बड़ी ही सुन्दर है। इस मंदिर का नाम 'ललितनिकुंज' रखा गया। कार्तिक शुक्ल २, संवत् १९३० को ललितकिशोरीजी शरीर-सहित श्रीबृन्दावन की रज में लीन हो गए। ललितकिशोरीजी ने रास-विलास, अष्टयाम और समय-प्रबन्ध सम्बन्धी बड़े अनूठे पद रचे हैं। छद्मलीला लिखने में तो आप सबसे बढ़े-चढ़े थे। इन्होंने ब्रजभाषा के साथ ही कहीं-कहीं पर उर्दू, खड़ी बोली और मारवाड़ी का भी प्रयोग किया है। इनकी खड़ी बोली की रेखता रास-धारियों में खूब प्रचलित है। उन्होंने प्रेम का चित्रण बड़ा ही सुन्दर और सजीव किया है।

ललितकिशोरीजी संस्कृत के भी अच्छे ज्ञाता थे। लखनऊ निवासी होकर भी इन्होंने ब्रजभाषा में पद्य ही नहीं वरन् विशुद्ध गद्य भी लिखा है। इनके फुटकर पदों के अतिरिक्त 'बृहत् रसकलिका और 'लघु रसकलिका' नाम के दो ग्रंथ मथुरा में छपे थे, जो अब अप्राप्य हैं। 'मिश्रबन्धु विनोद' में बेचारे ललितकिशोरीजी 'दास' की श्रेणी में रखे गये हैं। इस पर क्या कहें—अपनी-अपनी सूझ ही तो है!

इनके गुरु श्री राधारमणीय गोस्वामी राधागोविन्दजी थे।

अल्हैया

मैं तुव पदतर-रेनु, रसीली।
तेरी सरवरि[1] कौन करि सकै, प्रेममई मूरति गरबीली॥

---

१ बराबरी।

कोटिहु पानबारने करिकै उरिन[1] न तोसों प्रीत-रंगीली।
अपनी प्रेम छटा करुना करि, दीजै दीन दयाल छबीली॥
कामुख करौं बड़ाई राई,[2] 'ललितकिशोरी' केलि-हठीली[3]।
प्रीति दसांस सतांस तिहारी, मो मैं नाहिन-नेह नसीली[4]॥१॥

प्रभाती

कमलमुख खोलो आज, पियारे।
बिकसित कमल, कुमोदिनि मुकुलित, अलिगन मत्त गुंजारे।
प्राची[5] दिसि रबिथार-आरती लिये ठनी निवछारे॥
'ललितकिशोरी' सुनि यह बानी, कुरकुट[6] बिसद पुकारे।
रजनीराज[7] बिदा माँगै, वलि, निरखौ ललक उघारे॥२॥

भैरवी

केकी कीर कोकिला कोयल सामुहिं करैं जुहार।
परसन दृगन कंज हित बोलैं, भृंगी जै-जै कार॥
मूंदौ रंध्र[8], बेगि प्राची दिसि, इत अब कहत पुकार।
'ललितकिसोरी' निरख्यौ चाहत रवि नव कुंज-बिहार॥३॥

झूलना

दुनिया के परपंचों में हम मजा नहीं कुछ पाया जी।
भाई-बंद, पिता-माता, पति सब सों चित अकुलाया, जी।
छोड़-छाड़ घर, गाँव, नाँव कुल, यही पंथ मन भाया, जी।
'ललितकिसोरी' आनंदघन सों अब हठि नेह लगाया, जी॥४॥
क्या करना है संतति-संपति, मिथ्या सब जग-माया है।
शाल-दुशाले, हीरा मोती में मन क्यों भरमाया है॥
माता-पिता, पत्नी, बंधू सब गोरखधंधा,[9] बनाया है।
'ललितकिसोरी' आनंदघन हरि हिरदै-कमल बसाया है॥५॥

---

१ उऋण। २ श्रेष्ठ। ३ मानिनी। ४ प्रेम में मतवाली। ५ पूर्व दिशा सूर्यरूपी थाली में आरती लिए खड़ी है। ६ कुक्कुट, मुरगा। ७ चंद्रमा। ८ छेद, झरोखा। ९ जगत्-जंजाल।

अष्ट सिद्धि नवनिद्धि हमारी मुट्ठी में हरदम रहतीं।
नहीं जवाहिर सोना चाँदी त्रिभुवन की संपति चहतीं।।
भावैं ना दुनिया की बातैं, दिलवर की चरचा महती[1]।।
'ललितकिसोरी' पार लगावैं माया की सरिता बहती।।६।।
तरह-तरह के आसन करके दिलवर-ध्यान लगावैं हैं।
भेदि सुषुम्ना[2] नाड़ी-मारग माथे[3] प्रान चढ़ावैं हैं।
तुरत खेचरी[4] मुद्रा के बल तन-समेत उड़ि जावैं हैं।।
'ललितकिसोरी' निरजन बन में जोग जुगति[5] जगावैं हैं।।७।।
तजि दीनी जब दुनिया दौलत, फिर कोइ के घर जाना क्या।
कंदमूल फल पाय रहैं अब, खट्टा-मीट्ठा खाना क्या।
छिन में साही बकसैं हमको मोती माल खजाना क्या।
'ललितकिसोरी' रूप हमारा जानैं ना तहँ आना क्या।।८।।
हम मौजी हैं अपने मन के, मनचाहै तहँ जावैं हैं।
बैठि इकंत ध्यान धरि दिलवर कंद-मूल-फल खावैं हैं।।
बसैं कंदरा बन में डोलैं, मानुष पास न आवैं हैं।
'ललितकिसोरी' भजन-अहारी, भीर-भार घबरावैं हैं।।९।।
छाँड़ दिया सब माल-खजाना, हीरा मोति लुटाया है।
फेंक-फाँककर शाल-दुशाले, जग से चित्त उठाया है।।
'ललितकिसोरी' छोड़ि कानि-कुल, मन-माशूक[6] लुभाया है।
धीरज धरम सभी छोड़ा, तब मजा फकीरी पाया है।।१०।।
जंगल में अब रमते[7] हैं, दिल बस्ती से घबराया है।

---

१ महत्वपूर्ण। २ इड़ा (चंद्र) और पिंगला (सूर्य) नाम की बाईं और दाहिनी स्वर वाहिनी नाड़ियों के बीच की नाड़ी; योगीजन इसी नाड़ी के द्वारा आत्मज्योति के दर्शन पाते हैं। ३ माथे...है— प्राणों को ब्रह्मांड में चढ़ा लेते हैं। ४ योग-शास्त्रानुसार एक मुद्रा विशेष। ५ योगमुक्ति। ६ प्यारा। ७ बसते।

मानुष गंध न भाती है, संग मरकट, मोर सुहाता है ॥
चाक गरेबां करके दम-दम आहें भरना आता है ॥
'ललितकिसोरी' इश्क रैन-दिन ये सब खेल खिलाता है ॥११॥

अब बिलंब जिनि करौं लाड़िले, कृपा-दृष्टि टुक हेरो।
जमुना-पुलिन, गलिन गहबर[1] की बिचरूं साँझ सबेरो ॥
निसिदिन निरखौं जुगुल-माधुरी[2], रसिकन तें भटभेरो[3]।
'ललितकिसोरी' तन-मन आकुल, श्रीबन[4] चहत बसेरो ॥१२॥

जमुना-पुलिन कुंज गहबर की कोकिला है द्रुम कूक मचाऊँ।
पद-पंकज प्रिय लाल-मधुप है मधुरे-मधुरे गुंज सुनाऊँ॥
कूकर ह्वै बन-बीथिन डोलौं, बचे सीथ रसिकन के खाऊँ।
'ललितकिसोरी' आस यही मम ब्रजरज तजि छिन अनत न जाऊँ॥१३॥

श्री वृन्दावन-बास दीजिये, यही हमारी आसा है।
जमुन तीर सुछाय माधुरी, जहँ रसिकों का बासा है॥
सेवाकुंज[5] मनोहर सुन्दर, इकरस बारौंमासा है।
'ललितकिसोरी' का दिल बेकल जुगुल-रूप-रस-प्यासा है॥१४॥

राधारमन मनोहर सुन्दर तिनके संग नित रहते हैं।
छके रहत छबि ललित माधुरी, और नहीं कुछ कहते हैं॥
चितवन हँसत चोट मोहन की निसिदिन हिय पर सहते हैं ।
'ललितकिसोरी' करैं न ओटै[6], फरी[7] नहीं कर सकते है ॥१५

श्रीवृन्दावन-रज दरसावैं, सोई हितू हमारा है ।
राधामोहन-छबी छकावै सोई प्रीतम प्यारा है ॥

---

१ घना जंगल। २ छबि। ३ आकस्मिक मिलाप। ४ वृन्दावन। ५ वृन्दावन में एक कुंज का नाम। श्रीहितहरिवंशजी प्रायः इसी कुंज में भजन किया करते थे। ६ चोटों से बचने के लिए जान मानकर किनारा नहीं करते। ७ फड़ी; अपने को चोटों से बचाने का डंडा।

कालिंदी-जलपान करावै, सो उपकारी सारा[1] है।
'ललितकिसोरी' जुगुल[2] मिलावै, सो अँखियों का तारा है ॥१६॥
बन-बन फिरना बिहतर हमको रतन-भवन नहिं भावै है।
लता-तरे पड़ रहने में सुख, नाहिंन सेज सुहावै है ॥
सोना कर[3] धरि सीस भला अति, तकिया ख्याल न आवै है।
'ललितकिसोरी' नाम हरी का, जपि-जपि मन सचुपावै है ॥१७॥
पवन-पान करि रहैं महीनों, अली अन्न नहिं भावै हैं।
पानी पियैं न सोवैं निसिदिन बैठि समाधि[4] लगावै हैं ॥
खुल गई पलक कभी छिनभर तौ कर लै बीन बजावै हैं।
जमुना कूलैं,[5] 'ललितकिसोरी', हरी-नाम-गुन गावै हैं ॥१८॥

पीलू

लटकि-लटकि मनमोहन-आवनि
झूमि-झूमि पग धरत भूमि पर, गति मातंग-लजावन ॥
गोखुर-रेनु अंग-अंग मंडित, उपमा दृग सकुचावनि।
नव-घनपै मनु मनु झीन बदरिया, सोभारस बरसावनि ॥
बिगसनि मुखलौं कांति दामिनी, दसनावलि दमकावनि।
बीच-बीच घन-घोर माधुरी मधुरी बेनु-बजावनि ॥
भक्तमाल उर लसी छबीली, मनु बग-पांति सुहावनि।
बिंदु गुलाल गुपाल-कपोलनि, इन्द्र-वधू-छवि-छावनि ॥
रुनन-झुनन किंकिन-धुनि मानों, हँसति की चुहचावनि[6]।
बिलुलित[7] अलक धूरि धूसर तन, गमन लोट बिगु आवनि।
जँघिया लसनि कनक कछनी पै पटुका[8] ऐंचि बँधावनि।
पीतांबर फहरानि मुकुटछबि नटवर वेस बनावनि ॥
हलनि बुलाक अधर तिरछौंहीं बीरो[9] सुरंग रचावनि!

---

१ पूरा। २ श्रीराधाकृष्ण। ३ हाथ के सहारे सिर रखकर। ४ प्राणायाम साधकर। ५ किनारों पर। ६ शब्द विशेष। ७ बिथुरी। ८ दोपट। ९ पान का बेड़ा।

'ललितकिसोरी' फूल झरनि या मधुर-मधुर बतरावनि[1] ॥१९॥

सारंग

मुरकि-मुरकि[2] चितवनि चित चोरै।
ठुमकि चलनि, हेरा[3] दै बोलनि, पुलकनि नंदकिसोरै॥
सहरावनि[4] गैयानु चौंकनी, थपकनि[5] कर बनमाली।
गुहरावनि[6] लै नाम सबनि कौ धौरी धूमरि[7] आली॥
चुचकारनि चट झपटि त्रिचुकनी[8], हूँ हूँ रहो रँगीली।
नियरावनि चोंखनि[9] मगही में, झुकि बछियान छबीली॥
फिरकैया[10] लै निर्त्त अलापन, बिच-बिच तान रसीली।
चितवनि ठिठुकि उड़कि गैया सों, सोंटी भरनि, रसीली॥२०॥

झंझौटो

मन, पछितैहौं भजन बिन कीने।
धन-दौलत कछु काम न आवै, कमलनयन[11] गुन चित बिनु दीने॥
देखत कौ यह जगत सँगाती,[12] तात-मात अपने सुख-भीने[13]॥
'ललितकिसोरी' दुंद[14] मिटै ना, आनंदकंद बिना हरि चीने[15]॥२१॥

गौरी

मुसाफिर, रैन रही थोरी।
जागु-जागु, सुख नींद त्यागि दै, होति वस्तु[16] की चोरी॥
मंजिल दूरि, भूरि भवसागर, मान कूरमति मोरी।
'ललितकिसोरी' हाकिम[17] सों डरु, करै जोर बरजोरी॥२२॥

---

१ बातचीत। २ मुड़-मुड़कर। ३ गाय को बुलाने की आवाज। ४ खुजलाना। ५ प्यार से थपथपाना। ६ बुलाना। ७ गौओं के नाम। ८ चौंककर भागनेवाली गाय। ९ थन से मुँह लगाकर दूध पीना। १० चक्कर। ११ श्रीकृष्ण। १२ साथी। १३ अपने स्वार्थ में सने हुए। १४ द्वंद्व; सांसारिक झंझट। १५ पहचाने। १६ आत्मज्ञान। १७ यमराज।

बिहार

लाभ कहा कंचन-तन पाये !
भजे न मृदुल कमल-दल लोचन, दुख-मोचन हरि हरखि न ध्याये ।।
तन-मन-धन अरपन ना कीन्हें प्रान प्रानपति-गुननि न गाये ।
जोबन, धन, कलधौत[1] धाम सब, मिथ्या आयु गँवाय गँवाये ।।
गुरुजन गर्व, बिमुख-रंग[2] राते, डोलत सुख-संपति[3] बिसराये ।
'ललितकिसोरी' मिटै ताप ना, बिन दृढ़ चिंतामनि[4] उर लाये ।।२३।।

गिरनारी

कोई दिलवर की डगर बता दे, रे ।
लोचन कंज कुटिल भृकुटी कच, कानन कथा सुनादे, रे ।।
'ललितकिसोरी' मेरी-वाकी, चित की साँट[5] मिलादे, रे ।
जाके रंग रँग्यो सब तन-मन, ताकी झलक दिखादे, रे ।।२४।।

ईमन

दंपति, इतनी बिनय हमारी ।
मंद-मंद चलिए इन बीथिनि, बिगसित मल्ली जुही निवारी ।।
निकट[6] रावरे रूप उपासक, नव निकुंज द्रुम चारी ।
याही छिन छबि बसिए वाके, हिये-कमल बलिहारी ।।२५।।

ईमन

मोहन, क्यों बैराग लियौ ।
नासा मूँदि हाथ माला लै, नीको ध्यान कियौ ।।

---

१ सुन्दर, सफेद । २ हरि-विमुख संसारी जीवों के कुसंग में पड़े हुए । ३ आत्मानंद-रूपी धन । ४ ललितकिशोरी . . . लाये—यह चरण गोस्वामी तुलसीदास जी के इस पद का प्रतिबिंब-सा जान पड़ता है : 'तुलसी चित्त-चिंता न मिटै, बिनु चिंतामनि पहिचाने ।' ५ समानता, लगन । ६ निकट . . . चारी—ये वृक्ष आपके रूप-रस-उपासक हैं । भक्ति-पक्ष में श्रीवृन्दावन की गुल्म-लताएँ और वृक्ष दिव्य रूप माने जाते हैं । ये सभी भक्ति-भावना-पूरित कहे गये हैं ।

भलो करो, भिच्छा जोगी बनि, भलो प्रसाद दियौ।
'ललितकिसोरी' कौन काज यह, कंथा[1] कपट सियौ ॥२६॥

बिलावल

स्याम-रूप में तेज, अधर-रस जलहिं मिलाऊँ।
मुरलि[2] अकास मिलाय, प्रान[3] में प्राननि छाऊँ॥
मुख-मंडित गोधूलि, अली टुक देखन पाऊँ।
पृथिवी-अंस मिलाय, तासु मैं प्रियतम ध्याऊँ॥२७॥

ईमन

मैं तेरे सँग मुरली स्याम बजाऊँ।
ऐसेई पिय सब छेदनि पै, अँगुरी चपल चलाऊँ॥
पंचम[4] रिषभ[5] निषाद[6] सुरनि लौं, सँग-सँग टीप लगाऊँ।
'ललितकिसोरी' ईमन, काफी, सोरठ गाय सुनाऊँ॥२८॥

खेमटा

रे निरमोही, छबि दरसाय जा।
कान चातकी स्याम-बिरह-घन, मुरली मधुर सुनाय जा॥
'ललितकिसोरी' नैन-चकोरनि, दुति मुख-चंद दिखाय जा।
भयौ चहत यह प्रान बटोही, रूसे[7] पथिक मनाय जा॥२९॥

माँझ देश

बलि-बलि, सखी बृन्दाबिपिन जुग-चंद दरसन कीजिए॥
ललित लखि अरबिंद मुख-रस-रूप नैननि पीजिए॥
कलित कोमल माधवी बर, लता झुकि झूमीं जहाँ।
कुंज बिच गुंजैं अली, छबि-पुंज निरवारत तहाँ।

---

१ गूदरी; फटे-पुराने कपड़ों की झोली। यह पद योगिनी के छद्म के समय का है। २ मुरलि. . .मिलाय—पोली बाँसुरी में अपना आकाश तत्त्व मिलाकर। ३ प्रान. . .छाऊँ—प्यारे के प्राणों में अपने प्राण अर्थात् वायु-तत्त्व मिला दूँ। ४ पाँचवाँ स्वर। ५ दूसरा स्वर। ६ सातवाँ स्वर। ७ रूठे हुए।

नवनि कुसुमित सुमन चित्रित बिबिध बेली राजहीं।
रटत दंपति-नाम पंछी, पत्र-पुष्पनि भ्राजहीं॥
विमल जमुना-जल हिलोरैं, पुलिन-मन रमनी[1] बनी॥
चलत मन्द-सुगन्ध-सीतल पवन, सोभा अति घनी॥
घनघोर, घेरी घटा बहु, चपला चहूँ दिसि चमकहीं।
द्रुमन-तर नव नागरी मुखचंद; चंचल दमकहीं॥
तिन मध्य सुन्दर जुगुल स्यामा नवल गलबहियाँ दियें।
झुकत झूमत मत्त नैना, माधुरी अँग-अँग पिये॥
नटत[2]-निरतत[3] नवल, नागर-नागरी दृग-जोरिकैं[4]।
सैन नाना भाव दोऊ, लेत गति अँग मोरिकैं॥
झरत कबरी[5]-सुमन, मानों होत दंपति-वारने[6]।
तात-ताता[7], थेइ-थेई, घूँघरू झनकारने॥
अधर धरि मुरली मनोहर, मधुर मन्द बजावहीं।
मोहिनी मन मिलि मलारहिं[8] झीन[9] सुर सों गावहीं॥
देत ताल रसाल[10]-बाला, बीन मधुरी धुनि बजैं।
किंकिनी-कल-घोर सुनि, मन हंस के छौना लजैं॥
जोरि[11] कर मण्डल[12] रच्यौ नवतरुनि सुन्दर भामिनी।
भानुजा[13]-ब्रजचन्द निरतैं मध्य, धनि यह जामिनी॥
चाँदनी मुखचन्द दस दिसि ससि-प्रभा मनि उर लसै।
निरखि रंध्रनि[14] छबी "ललितकिसोरि" नित नैननि बसै॥३०॥

दोहा

कदम-कुंज ह्वैहौं कबै, बृन्दावन माँहि।
'ललितकिसोरी' लाड़िले, बिहरैंगे तिहिं छाँहि॥३१॥

---

१ रमणीय। २ हाव-भाव बताते हैं। ३ नाचते हैं। ४ आँख-से-आँख लड़ाकर। ५ बेनी। ६ निछावर होते हैं। ७ तात . . . थेई—नृत्य की गति के शब्द विशेष। ८ वर्षा का राग। ९ मंद-मंद। १० सुन्दरी-स्त्रियाँ ११ हाथ-से-हाथ मिलाकर। १२ चक्राकार मंडली। १३ श्री-राधिका॥ १४ झरोखों में होकर।

सुमन वाटिका-बिपिन में, ह्वैहौं कब मैं फूल।
कोमल कर दोउ भावते, धरिहैं बीनि दुकूल[1] ॥३२॥
कब कालीदह[2]-कूल की, ह्वैहौं त्रिबिध समीर।
जुगुल-अंग-अँग लागिहौं, उड़िहै नूतन चीर ॥३३॥
मिलिहैं कब अँग छार ह्वै, श्रीबन-बीथिन धूरि।
परिहैं पद-पंकज जुगुल, मेरी जीवन-मूरि ॥३४॥
कब गह्वर की गलिन में, फिरिहौं होइ चकोर।
जुगुलचंद-मुख निरखिहौं, नागरि नवलकिसोर ॥३५॥
कब कालिंदी-कूल की, ह्वैहौं तरुवर-डारि[3]।
'ललितकिसोरी' लाड़िले, झूलैं झूला डारि ॥३६॥
स्यामा[4]-पद दृढ़ गहि सखी, मिलिहैं निहचै स्याम।
ना मानै, दृग देखिलै, स्यामा-पद बिच स्याम ॥३७॥
ललित हरित अवनी सुखद, ललित लता नव कुंज।
ललित बिहंगम बोलहीं, ललित मधुर अलिगुंज ॥३८॥
ललित बेलि, कलिका, सुमन, तिनहीं ललित सुबास[5]।
पिक, कोकिल, सुक ललित सुर[6], गावत जुगुल-बिलास[7] ॥३९॥
ललित मृदुल बहु पुलिन-रज, ललित निकुंज-कुटीर।
ललित हिलोरनि रवि-सुता, ललित सुत्रिविध समीर ॥४०॥

अब हम यहाँ कुछ पद ललितकिशोरी जी के अनुज ललितमाधुरी जी (साह फुंदनलाल) के उद्धृत करते हैं।

---

१ वस्त्र। २ यमुना का वह तट, जहाँ कालिय नाग नाथा गया था। ३ (१) शाखा (२) डालकर। ४ स्यामा...स्याम—'स्यामा' शब्द के मकार का 'आकार' यदि निकाल दिया जाय तब भी 'श्याम' रहता है। 'श्यामा' शब्द के अन्तर्गत ही श्याम है। राधिका जी की आराधना से 'श्यामसुन्दर' मिल सकते हैं, क्योंकि वह उनके प्रेम के अधीन हैं। ५ सुगंध। ६ स्वर। ७ रास-रस।

यह भ्रातृस्नेहवश सदा अपने ज्येष्ठ भ्राता के साथ रहे और उन्हीं के भक्ति-भाव के पूरे अनुगामी हुए। अतएव हम, इनके नाम का भिन्न शीर्षक देकर इन्हें श्री ललितकिशोरीजी से पृथक् नहीं करना चाहते।

इन्होंने भी अपने अग्रज की भाँति भगवद्गुणानुवाद ललित पदों के ही द्वारा किया है। किसी-किसी का कहना है कि ललितकिशोरीजी के स्वर्गस्थ हो जाने के अनंतर इन्होंने, जितने भी पद बनाये, उन सब में अपना नाम न रखकर ललितकिशोरीजी की ही छाप दी। धन्य इस भ्रातृ-भक्ति को।

इनकी कविता टकसाली और चुटीली होती थी। इनका कोई अलग पद-संग्रह नहीं है। श्रीललितकिशोरीजी के पद-समुच्चय में कहीं-कहीं पर इनके नाम के पद मिलते हैं।

दोहा

श्रीबृन्दावन सहजहीं, ललितमाधुरी रूप।
ललित त्रिभंगी भामिनी, नित्यबिहार अनूप ॥१॥

बिहार

कहौ चंद, दंपति कुसलात[१]।
मम जीवनधन प्रानपियारे, दंपति कौन कुंज बिलसात[२]॥
तू छिन भले निहारे नख-सिख, लली-लाल सुकुमारे गात॥
तो तन-द्युति अति बदन बिफुलता,[३] कहैं देति छबि निरखत बात।
धन्य-धन्य तू, धनि तो जीवन, कछु तौ करि[४] बचनामृत-पात।
'ललितमाधुरी' अरे निरदई, कत[५] अबोल द्रुम-ओटनि जात ॥२॥

---

१ 'कुशलता' शब्द केवल पद्य में ही प्रयुक्त हुआ है। २ केलि करते हैं। ३ फुल्लता। ४ करि···पात-अमृतरूपी वचन बोल। ५ कैसा, क्यों।

बिहाग

हाय! कहा बिपरीत[1] भई।
जुगुलचंद-मुखचंद बिलोकन, डसी भुजंगिनि बिन रदई[2]॥
'ललितमाधुरी' बिरह-बिथित[3] अति, कढ़त न प्रानहुँ कठिन दई[4]।
मो अभाग के उदै भये कोउ, दंपति[5]-प्रीति की रीति नई॥३॥

सोरठ

बाँकी[6] अदा पै मैं बलिहारी।
बाँकी पाग, केस-लट बाँकी, बाँकि मुकुट-छबि प्यारी॥
बाँकी चाल, बाँकिहीं चितवनि, बाँकि मुरलिका धारी।
कहँलौं 'ललितमाधुरी' बरनौं, आपुहिं बाँकेबिहारी॥४॥

जिला

मोहन चोर पकरि कैसे पाऊँ।
देखत हौं दृग भरि-भरि सजनी, परसन[7] कों रहि-रहि ललचाऊँ॥
दुर्‌यौ निकुंज-लता बन-बीथिनि, निपट निकट मैं तोहि बताऊँ।
'ललितमाधुरी' ही[8] में जी[9] सँग, चित चोरै हौं आनि मिलाऊँ॥५॥

---

१ अनचाही बात। २ दाँत। ३ व्यथा भरी। ४ दैव। ५ श्रीराधा-कृष्ण। ६ टेढ़ी, अनोखी। ७ छूने को। ८ हृदय। ९ प्राणों के साथ।

दूसरा खण्ड

बिहारीलाल

छप्पय

रससिंगार-आगार, अलंकारनि-सुअलंकृत।
धुनि ब्यंजना, अनूप लच्छना-लच्छन-लच्छित।।
एक-एक पर वहुर महुर जयसिंह नृप दीनी।
कृष्ण-केलि-रस सरस बढ़न हिय भाव नवीनी।।
सोइ दिव्य सु दोहा 'सतसई' भई न ऐसी होय अनु।
भाषाकवि नृप-चक्रराट् बिहारीलाल जयदेव जनु।।
—गोस्वामी राधाचरण

महाकवि बिहारीलाल का जन्म संवत् १६६० के लगभग ग्वालियर के समीप बसुवा गोविन्दपुर में हुआ था। यह माथुर चौबे थे। इनकी बाल्यावस्था अधिकतर बुन्देलखण्ड में बीती। तरुणावस्था में यह अपनी ससुराल मथुरा चले आये। श्रीराधाकृष्णदासजी ने इन्हें कविवर केशवदास का पुत्र माना है। किंतु 'सतसई' में कहीं-कहीं पर एकाध बुन्देलखंडी शब्द के प्रयोग अथवा एक दोहे में 'केशव केशवराय' के उल्लेख मात्र से यह कैसे सिद्ध हो सकता है कि यह महाकवि केशवदास के पुत्र थे? मथुरा से यह तत्कालीन जयपुर-नरेश मिरजा महाराजा जयसिंह के पास चले गये। वहाँ पर इन्होंने जयसिंह के प्रमोदार्थ 'सतसई' का निर्माण किया। जयपुर-नरेश के आदेश से इन्होंने 'सतसई' रची अवश्य किंतु उसकी रचना का एकमात्र ध्येय उनको प्रसन्न करना था, इसमें संदेह है। बिहारीलाल स्वयं लिखते हैं:—

हुकुम पायु जयसिंह कौ, हरि-राधिका-प्रसाद।
करी बिहारी सतसई, भरी अनेक संवाद।।

बिहारीलाल जी स्वतंत्र स्वभाव के कवि थे। राजा-महाराजाओं को

अपनी कविता से प्रसन्न रखना इनका एकमात्र ध्येय नहीं था। इन्होंने कविता रची और केवल कविता के लिए रची। सतसई के सूक्ष्म परिशीलन द्वारा यह पता चलता है कि उसके निर्माण-काल में कवि के जीवन में कितने क्या-क्या परिवर्तन हुए। यह जयपुर-नरेश के आश्रय में रहे। कुछ दिनों बाद वहाँ से उनका जी ऊब गया। राजा-महाराजाओं के राज-मद के आगे इनके स्वतंत्र चिन्तन में जैसे बाधा पड़ने लगी। परिणामतः विवेक और वैराग्य का उदय हुआ। कलियुगी दानियों की ओर से इनका मन फिर चला। लिखते हैं:—

कब कौ टेरत दीन ह्वै, होत न स्याम सहाय।
तुमहूँ लागी जगतगुरु, जगनायक जग-बाय॥
थोरेई गुन रीझते, बिसराई वह बानि।
तुमहूँ कान्ह भये मनों, आज-कालि के दानि॥

इस समय इन्हें सांसारिक सम्मान से घृणा हो चली थी। दुनियादारी को परख चुके थे। अतः अब केवल भगवद् विषयक कविता लिखने लगे। कहना न होगा कि इनकी रचना कितनी भव्य और ऊँची हुई है। निम्न-लिखित सोरठा शुद्ध भक्ति-भावना का परिचय देता है—

मोहूँ दीजै मोष, जो अनेक पतितनि दियो।
जो बाँधे हीं तोष, तौ बाँधौ अपने गुननि॥

सतसई के सम्बन्ध में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। साहित्य में इसका कितना ऊँचा स्थान है, इसे भाषा और भाव के जौहरी भलीभाँति जानते हैं। श्रीराधाचरण गोस्वामी ने तो बिहारी को "पीयूषवर्षी मेघ" की उपमा दी है। सतसई पर बीसों टीकाएँ लिखी जा चुकी हैं। स्वर्गीय पंडित पद्मसिंह शर्मा ने 'संजीवनभाष्य' लिख कर वास्तव में म्रियमाण ब्रजभाषा साहित्य में संजीवनी-मंत्र फूँक दिया है। कविवर रत्नाकरजी ने भी सतसई के अनमोल जवाहरों के जौहर से साहित्य-संसार को परिचित कराया है।

हमने 'ब्रजमाधुरीसार' में प्रथमतः उन्हीं कवियों को स्थान दिया है

जिनका ब्रज अथवा ब्रजभाषा से सम्बन्ध रहा हो, जो कृष्ण-रस-माधुरी के मधुव्रत रहे हों, जो स्वाधीन चेता हों और जिन्होंने केवल कोरे शब्दाडम्बर से दूर रह कर हृदय के गहरे भावों का यथेष्ट चित्रण किया हो। बहुत संभव है कि ये सभी सद्‌गुण सभी कवियों में एक साथ न मिलें। बिहारी में भी, एक प्रकार से, इनमें से किसी-किसी गुण का अभाव हो सकता है; किन्तु अन्य गुणों के बाहुल्य से उसकी पूर्ति हो जाती है। यह जयपुर-नरेश के आश्रित अवश्य थे, किन्तु और कवियों की तरह आश्रय-दाता के हाथ बिक नहीं गये थे। यह कोई संत-महात्मा नहीं थे, पर साथ ही हरि-विमुख या केवल अर्थ-लोलुप संसारी कवि भी नहीं थे। इनका संबंध श्रीहितकुल से था। ब्रज और ब्रजभाषा के साथ तो इनका अभिन्न संबंध था। सतसई के पद्य-टीकाकार कृष्ण कवि क्या ही अच्छा लिख गये हैं—

ब्रजभाषा बरनी कविन, बहुविधि बुद्धि-विलास।
सब को भूषन सतसई, करी बिहारीदास॥

इन सब बातों पर विचार करने के उपरान्त हम प्रस्तुत ग्रंथ में बिहारी लाल, देव, हरिश्चन्द्र आदि महाकवियों को स्थान देने का लोभ संवरण नहीं कर सके। सतसई के कुछ रत्नोपम सरस दोहे नीचे दिये जाते हैं—

मेरी भव-बाधा[1] हरौ, राधा नागरि[2] सोय[3]।
जा तन की झाईं[4] परैं, स्याम हरित[5] दुति होय॥१॥
सीस मुकुट, कटि काछनी, कर मुरली उर माल।
यह बानिक[6] मो मन बसौ, सदा बिहारीलाल[7]॥२॥

---

१ ऐहिक दुःख; जन्म-मरण का चक्र। २ चतुर। ३ वही। ४ झलक, छाया। ५ हरे रंग की शोभा; फीकी अर्थात् जिनकी छवि हरण कर ली गयी हो। इसी आशय का एक दोहा महाराज नागरीदास का भी है, 'जामें रस सोई हरौ, यह जानत सब कोय। स्याम गौर द्वै रंग बिनु, हरौ रंग नहिं होय।' ६ छटा। ७ बिहारी (कवि) के प्यारे श्रीकृष्ण।

मोहन मूरति स्याम की, अति अद्भुत गति[1] जोय[2]।
बसति सुचित अंतर तऊ, प्रतिबिम्बित[3] जग होय ॥३॥*

सखि, सोहति गोपाल के, उर गुंजन[4] की माल।
बाहर लसति[5] मनों पिये, दावानल[6] की ज्वाल ॥४॥

मोर-मुकुट की चन्द्रिकनि, यौं राजत नँद-नंद।
मनु ससि-सेखर[7] के अकस[8], किय सेखर[9] सत चंद ॥५॥

नाचि अचानक हू उठे, बिन पावस बन मोर।
जानति हौं नंदित[10] करी, इहि दिसि नंद-किसोर ॥६॥**

जहाँ-जहाँ ठाढ़ो लख्यौ, स्याम सुभग सिरमौर।
उनहूं बिन छिन गहि[11] रहत, दृगनि अजौं वह ठौर ॥७॥

मकराकृत[12] गोपाल कें, कुंडल सोहत कान।
धस्यौ समर[13] हिय-गढ़ मनहुँ, ड्योढ़ी लसत निसान ॥८॥§

---

१ हाल। २ देखो। ३ संसार भर में प्रकाशित हो रहा है; घट-घट में व्यापक है। ४ घुँघुची। ५ झलकती है। ६ वन में लगी हुई आग। एक बार ब्रज के एक वन में, जहाँ ग्वाल गाएँ चरा रहे थे, बड़ी प्रचंड आग लग गयी। अर्थात् ग्वाल और गौओं को देखकर श्रीकृष्ण उस दावानल को देखते-देखते पान कर गये, उसका शमन कर दिया। यहाँ पर गुञ्जाओं की लाल माला दावानल की लपट के समान दिखाई देती है। ७ शिवजी। ८ द्वेष, होड़। ९ सिर। १० आनंदित। ११ पकड़ लेती हैं, खींच लेती हैं। १२ मछली के आकारवाले। १३ स्मर, कामदेव।

*इस दोहे में दार्शनिक चमत्कार है। ब्रह्म स्वतः प्रकाशरूप होने के कारण, माया से आच्छादित होने पर भी, सर्वत्र देदीप्यमान हो रहा है।

**नीले मेघ के समान श्रीकृष्ण को देख कर मोरों को घन-घटा का भ्रम हो गया है।

§श्रीकृष्ण का हृदय किला है, उसमें कामदेव प्रवेश कर गया है। किले

तजि तीरथ, हरि-राधिका-तन-दुति करि अनुराग।
जिहिं ब्रज-केलि[1]-निकुंज-मग, पग-पग होत प्रयाग[2] ॥९॥*
नितप्रति एकत हीं रहत, बैस बरन मन एक।
चहियतु जुगुलकिसोर लखि, लोचन जुगुल अनेक ॥१०॥
चिरजीवौ जोरी, जुरै, क्यों न सनेह गँभीर।
को घटि ए वृषभानुजा,[3] वै हलधर[4] के बीर[5] ॥११॥**
प्रलय-करन बरसन लगे, जुरि[6] जलधर इक साथ।
सुरपति गर्व हर्‌यौ हरपि, गिरिधर गिरिधर हाथ ॥१२॥
सोहत ओढ़े पीत पट, स्याम सलौनें[7] गात।
मनो नीलमनि-सैल पर, आतप पर्‌यौ[8] प्रभात ॥१३॥§
अधर धरत हरि के परत, ओठ दीठि[9] पट[10]-जोति[11]।
हरे बाँस की बाँसुरी, इन्द्र-धनुष-सी होति ॥१४॥†

के द्वार पर किलेदार की कुण्डल-रूपी ध्वजाएँ शोभित हो रही हैं।

१ रास रस। २ तीर्थराज; वह स्थान जहाँ बड़ा भारी यज्ञ हुआ हो। ३ महाराज वृषभानु की कन्या; वृषभ अर्थात् बैल की अनुजा (बहिन)। ४ बलराम; बैल। ५ भाई। ६ इकट्ठे होकर। ७ सुन्दर। ८ धूप। ९ दृष्टि। १० पीतांबर। ११ झलक।

*प्रयाग में गंगा-यमुना-सरस्वती का संगम हुआ है। तीनों के रंग क्रमशः सफेद, काला और लाल हैं। यहाँ श्रीराधाकृष्ण के शरीर की झलक ही त्रिवेणी हो जाती है।

**जाति-जाति में ही गहरा प्रेम होता है। यहाँ श्रीकृष्ण और राधिका दोनों ही राजकुल के हैं। अथवा श्लेषार्थ से; राधिका बैल की बहिन हैं, तो कृष्ण बैल के भाई।

§प्रातःकालीन धूप का रंग पीला होता है। यहाँ श्रीकृष्ण का पीतांबर धूप के समान है।

†बंशी पर इन रंगों की झलक पड़ने से इन्द्रधनुष की-सी छटा दिखाई

कहत सबै बैंदी[1] दियें, आँक[2] दसगुनो होत।
तिय लिलार बैंदी दियें, अगनित बढ़त उदोत[3] ॥१५॥
पत्रा[4] ही तिथि पाइए, वा घर के चहुँ पास।
नित प्रति पून्यों[5] ही रहति, आनन-ओप[6] उजास ॥१६॥
अजौं[7] तर्यौना ही रह्यौ, स्रुति[8] सेवत इक अंग।
नाक[9] बास बेसर लह्यौ, बसि मुकुतन[10] के संग ॥१७॥*

सोरठा

मंगल बिंदु सुरंग[11], मुख ससि केसर आड़[12] गुरु[13]।
इक नारी[14] लहि संग, रस[15] मय किय लोचन जगत ॥१८॥**

दोहा

लिखन बैठि जाकी सबी[16], गहि-गहि गरब-गरूर[17]।
भये न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर[18] ॥१९॥§

देती है (ओठ=लाल; पट=पीला; दीठ=श्वेत, श्याम और लाल, वंशी=हरी)।

१ (१) बिंदु-शून्य, (२) बिंदी। २ अंग। ३ सुन्दरता। ४ पंचांग। ५ पूर्णमासी। ६ चमक। ७ (१) कर्णफूल, (२) तरा नहीं, मुक्त नहीं हुआ। ८ (१) कान, (२) वेद। ९ (१) नासिका, (२) स्वर्ग। १० (१) मोतियों के, (२) जीवन्मुक्तों के साथ। ११ लाल। १२ आड़ा टीका। १३ बृहस्पति, जिसका रंग पीला हो। १४ (१) स्त्री, (२) राशि। १५ (१) आनन्द, (२) जल। १६ चित्र। १७ घमंड। १८ मूर्ख।

*इस दोहे में श्लेषार्थ के सत्संग का लाभ वर्णन किया गया है। वेदाध्ययन आदि से सत्संग कहीं अधिक श्रेयस्कर है।

**इस श्लिष्ट सोरठे में ज्योतिष-संबंधी चमत्कार है। जब चंद्र, मंगल और बृहस्पति एक ही राशि पर स्थित होते हैं तब महावृष्टियोग होता है। यहाँ एक स्त्री में चन्द्र जैसा मुख, मंगल जैसा लाल बिंदु और बृहस्पति जैसा पीला टीका देखने में संसार भर रसमय अर्थात् आनंदित हो जाता है।

§प्रतिक्षण सुन्दरता बढ़ती रहने से कोई भी चित्र यथार्थ नहीं खिंच

नेह न नैंननि कौं कछू, उपजी बड़ी बलाय[1]।
नीर[2] भरे नितप्रति रहैं, तऊ न प्यास बुझाय॥२०॥
या अनुरागी चित्त की, गति[3] समुझै नहिं कोय।
ज्यों-ज्यों बूड़ै स्याम[4]-रंग, त्यों-त्यों उज्वल होय॥२१॥
जो न जुगुति पिय-मिलन की धूरि मुकुति[5]-मुख दीन।
जो लहिए संग सजन[6] तौ, धरक नरक हूँ कौन॥२२॥*
लई सौंह-सी सुनन की, तजि मुरली-धुन आन।
किये रहति रति[7] रात-दिन, कानन[8] लाये कान॥२३॥
लोभ लगे हरि-रूप के, करी साँट[9] जुरि[10] जाइ।
हों इन बेंची बीच[11] हीं, लोयन[12] बड़ी बलाइ॥२४॥§
लाल तिहारे रूप की, कहौ रीति यह कौन।
जासों लागैं पलक[13] दृग, लागैं पलक[14] पलौ[15] न॥२५॥

सका। अथवा, सात्त्विकभाव (पसीना, कंप आदि) आ जाने से चित्र ठीक-ठीक नहीं उतर सका। अथवा सौंदर्य में निमग्न हो जाने से, मन हाथ में न रहा और इसी से चित्र खींचते समय बुद्धि भ्रान्त हो गयी। यह दोहा दार्शनिक दृष्टि से परमात्मा पर तथा शृंगार दृष्टि से नायिका पर घटता है।

१ बला, रोग। २ जल, आँसू। ३ अवस्था। ४ काला, श्रीकृष्ण का रंग (भक्ति)। ५ मुक्ति। ६ प्यारा। ७ प्रेम, लगन। ८ वन, वृन्दावन से तात्पर्य है। ९ सौदा तय करने की (दलालों) की गुप्त बातचीत। १० मिलकर। ११ बिना कुछ कहे-सुने ही। १२ नेत्र। १३ क्षण मात्र के लिए। १४ पलक लगता है, नींद आती है। १५ एक पल को भी।

*यहाँ प्रेम की पराकाष्ठा वर्णन की गयी है। इसी आशय का एक दोहा कविवर अहमद का भी है। "कहा करौं बैकुण्ठ लै, कल्पवृक्ष की छाँह। 'अहमद' ढाक सराहिये, जो प्रीतम-गल बाँह।"

§नेत्र रूपी दलालों ने श्रीकृष्ण के नेत्रों से मिलकर मुझे बीच ही में बेच डाला, कुछ पूछा तक नहीं।

लाल, सलोने[१] अरु रहे, अति सनेह[२] सों पागि।
तनक कचाई[३] देत दुख, सूरन[४] लौं मुंह लागि[५]॥२६॥
कहा भयो जो बीछुरे, मो मन तो मन साथ।
उड़ी जाति कितहूँ गुड़ी,[६] तऊ उड़ायक[७] हाथ॥२७॥*
होंहीं बौरी बिरह-बस, कै बौरो सब गाँव।
कहा जानिए कहत हैं, ससिहिं सीतकर[८] नाँव॥२८॥**
कहलाने[९] एकत[१०] बसत, अहि मयूर मृग बाघ।
जगत तपोवन-सौं कियो, दीरघ दाघ निदाघ[११]॥२९॥§
दुसह दुराज[१२] प्रजानि को, क्यों न बढ़ै अति दंद[१३]।
अधिक अँधेरो जग करैं, मिलि मावस[१४] रवि-चंद॥३०॥+

---

१ (१) सुन्दर; (२) नमक-सहित। २ (१) प्रेम; (२) तेल। ३ (१) कच्चापन; (२) कपट। ४ जमीकंद। ५ काटना; खुजलाहट पैदा करना। ६ पतंग। ७ पतंग चढ़ानेवाला। ८ शीतल किरणवाला। ९ घबराये हुए; बुंदेलखंडी बोली में 'कहल' गर्मी को कहते हैं। १० एकत्र। ११ ग्रीष्म। १२ दो राजाओं को एक साथ हुकूमत। १३ दुःख। १४ अमावस।

जैसे तेल और नमक डालकर भूनने पर भी कुछ कच्चा रह जाने से सूरन मुँह में खुजली पैदा करता है, उसी प्रकार, प्यारे यद्यपि तुम सुन्दर और प्रेमी हो, किंतु हमारा यह जरा-सा कपट तो दुःख देता है।

* यह दोहा अध्यात्मभाव पर भी घटता है। गुड़ी=जीव। उड़ायक =प्रेरक; सूत्रधार, परमात्मा।

**विरहिणी नायिका को चंद्रमा की किरणें दाहक जान पड़ती हैं। उसकी राय में चंद्रमा का 'शीतकर' नाम न होना चाहिए था।

§ तपोवन में हिंसक जीव भी हिंसा-भाव छोड़कर परस्पर प्रेमपूर्वक रहते हैं। यहाँ मारे गर्मी के, मोर और साँप, मृग और सिंह अहिंसा-व्रत लिए हुए एक साथ बैठे हैं।

+अमावस की रात में चंद्र और सूर्य एक राशि पर स्थित होकर

कहैं यहै सब स्रुति सुमृति[1], यहै सयाने लोग।
तीन दवावत निसक[2] हीं, पातक, राजा, रोग॥३१॥
सबै हँसत करतारि[3] दै, नागरता[4] के नाँव।
गयो गरब गुन को सबै, बसै गँवारे गाँव॥३२॥
जो चाहो चटक[5] न घटै, मैलो होय न मित्त[6]।
रज-राजस[7] न छुवाइए, नेह[8]-चीकने चित्त॥३३॥*
नल की अरु नल-नीर की, गति एकै करि जोइ।
जेतो नीचा ह्वै चले, तेतो ऊँचा होइ॥३४॥
मीत न नीत[9] गलीत[10] ह्वै, जो धन धरिए जारि।
खायें खरचे जो बचै, तो जारिए करोरि[11]॥३५॥
इहि आसा अटक्यो रहै, अलि गुलाब के मूल।
ऐ हैं बहुरि बसंत रितु[12], इन डारनि वै फूल[13]॥३६॥
कनक[14] कनक तें सौगुनी मादकता अधिकाय।
वा खायें बौरात हैं, या पायें बौराय॥३७॥
को छूट्यो इहि जाल परि, कत कुरंग अकुलात।

संसार-भर में घोर अंधकार छा देते हैं इसी प्रकार एक साथ दो राजाओं का द्वैध-शासन में अंधेर मचा देता है।

१ स्मृति, धर्मशास्त्र-संबंधी पुस्तकें। २ निःशक्त, कमजोर। ३ ताली पीटकर। ४ शिष्टता; चतुराई: ५ चमक; गहरा प्रेम। ६ मित्र। ७ शासन। ८ प्रेम, तेल। ९ नीति 'मीत गलीत' के अनुप्रास के लिए 'नीति' कर दिया गया है। १० गलित, दुर्दशा-ग्रस्त। ११ करोड़। १२ ऋतु। १३ वे रसीले फूल, जिनका पहले (भ्रमर) पराग पान कर चुका है। १४ कनक सोने को भी कहते हैं और धतूरे को भी। धतूरे के खाने से पागल बनना पड़ता है, पर सुवर्ण के पाते ही मनुष्य मदांध हो जाता है। धन का नशा सब से बुरा है।

* किसी चीज पर यदि तेल लगाया गया है और उसे चिकना रखना है, तो उस पर धूल न पड़ने दो। इसी प्रकार प्रेम-भाव के चित्त पर

ज्यौं-ज्यौं सुरझि भज्यौ चहत, त्यौं-त्यौं उरझति जात ॥३८॥*
कर लै सूँघि सराहिकैं, रहै सबै गहि मौन।
गंधी गंध गुलाब के, गँवई गाहक कौन ॥३९॥
वै न इहाँ नागर बड़े, जिन आदर तो आव[1]।
फूल्यौ[2] अनफूल्यौ भयौ, गँवई गाँव गुलाब ॥४०॥
जदपि पुराने बक तऊ, सरवर निपट कुचाल।
नये भये तौ कह भयौ, ये मनहरन मराल ॥४१॥
को कहि सकै बड़ेन सों, लखैं बड़ी हूँ भूल।
दई[3] दई जु गुलाब कों, इन डारन[4] वे फूल[5] ॥४२॥
बहकि[6] बड़ाई आपनी कत राचति[7] मति भूल।
विनु मधुकर के हियें में गड़ै[8], न गुड़हर[9] फूल[9] ॥४३॥
पट[10]-पाँखैं भखु[11] काँकरैं[12], सपर परेई[13] संग।
सुखी परेवा[14] पुहुमि में, एकै तुहीं बिहंग ॥४४॥
दिन दस आदर पायकैं, करिलै आपु बखान[15]।
जलौं काग सराध[16]-पख, तौलौं तौ सनमान ॥४५॥**
मरत प्यास पिंजरा पर्यौ, सुवा[17] समय के फेर।

किसी प्रकार की हुकूमत न करो, अन्यथा उसके चित्त में गांठ पड़ जायगी।

१ इज्जत। २ फूल्यौ—भयौ=फूलना, न फूलना बराबर हो रहा। ३ देव ने। ४ इन कांटेदार डालों में। ५ रसीले सुगंधित फूल। ६ भूल कर। ७ मस्त हो रही है। ८ अच्छा लगे। ९ जपा का फूल। १० पंख ही जिसके वस्त्र हैं। ११ भोजन। १२ कंकड़। १३ कबूतरी। १४ कबूतर। १५ बड़ाई का वर्णन। १६ पितृपक्ष। १७ तोता।

*यह बद्ध जीवों पर ही घटता है। जाल, जगत्-जंजाल है, और कुरंग, जीव।

**पितृपक्ष में कोओं की ख़ूब बनती है, क्योंकि उन पंद्रह दिनों में उन्हें नित्य भरपेट श्राद्ध का बलि-भोजन मिलता है।

आदर दै-दै बोलियत[1], बायस[2] बलि[3] की बेर॥४६॥*
जो सिर धरि महिमा मही, लहियत राजा राव।
प्रगटत जड़ता आपनी, मुकुट पहिरियत पाव॥४७॥
चले जाहु ह्याँ को करत, हाथिन कौ ब्योपार।
नहिं जानत, या पुर बसत, धोबी और कुम्हार॥४८॥
विषम वृषादित[4] की तृषा, जियो मतीरनि[5] सोधि।
अमित अपार अगाध जल, मारो मूड़[6] पयोधि॥४९॥
गिरि तें ऊँचे रसिक मन, बूड़े जहाँ हजार।
वहै सदा पसु-नरन[7] कौं, प्रेम-पयोधि पगार[8]॥५०॥
चटक न छाँड़त घटत हूँ, सज्जन नेह गँभीर।
फीको परै न, बरु[9] घटै, रँग्यो चोल[10] रँग चीर[11]॥५१॥
तंत्री-नाद कवित्त-रस, सरस राग रति-रंग[12]।
अनबूड़े[13] बूड़े[14], तरे, जे बूड़े[15] सब अंग॥५२॥
कालि दसहरा[16] बीतिहै, धरि मूरख जिय लाज।
दुर्यो फिरत कत द्रुमन में, नीलकंठ, बिन काज॥५३॥
समै-समै सुन्दर सबै, रूप-कुरूप न कोय।
मन की रुचि जेती जितै, तित तेती रुचि होय॥५४॥*

---

१ बुलाए जाते हैं। २ कौवा। ३ श्राद्ध का भोजन। ४ गरमी का वह समय, जब सूर्य वृष-राशिस्थ होते हैं। ५ तरबूज। ६ बेमतलब का। ७ अरसिक, अज्ञानी। ८ उथला। ९ चाहे। १० मँजीठ। ११ कपड़ा। १२ प्रेम। १३ जो डूबे नहीं हैं, जिन्हें तल्लीनता प्राप्त नहीं हुई है। १४ (संसार-सागर) में डूब गए। १५ बूड़े—अंग जो शराबोर (तल्लीन) हो गए। १६ विजय-लक्ष्मी।

*सत्पात्र का तिरस्कार करने से अपनी ही अयोग्यता प्रकट होती है : 'कहा विष्णु को घटि गयो, जो भृगु मारी लात।'

*इस दोहे में दार्शनिक चमत्कार है। कोई भी वस्तु वस्तुतः न अच्छी है न बुरी : उसकी अच्छाई और बुराई भोक्ता पर निर्भर है। उसे 'वस्तु-तत्त्व' कहते हैं।

सोरठा

हौं समुझ्यौ निरधार[१], यह जग काँचो[२] काँच-सौ।
एकै रूप अपार, प्रतिबिंबित लखियतु जहाँ ॥५५॥*

दोहा

जगत जनायौ[३] जेहि सकल, सो हरि जान्यौ नाहिं।
ज्यौं आँखिन सब देखिए, आँखि न देखी जाहिं ॥५६॥+
जप माला छापा तिलक, सरै[४] न एकौ काम।
मन काँचै[५] नाचै वृथा, साँचै राँचै[६] राम ॥५७॥ *
तौ लगि या मन-सदन में, हरि आवैं किहिं बाट।
निकट जरे जौ लगि निपट, खुलैं न कपट-कपाट ॥५८॥
यह बिरियाँ नहिं और की, तू करिया[७] वह सोधि[८]।
पाहन नाव चढ़ाय जिन, कीन्हें पार पयोधि[९] ॥५९॥*
भजन[१०] कह्यौ तासौं[११] भज्यौ[१२] भज्यौ न एकौ वार।
दूर भजन जासौं[१३] कह्यौ, सो तूँ भज्यौ गँवार ॥६०॥
दूरि भजत[१४] प्रभु पीठि दै, गुन बिस्तारन[१५] काल।

---

१ निश्चयपूर्वक। २ कच्चा, नश्वर। ३ ज्ञान दिया ? ४ काम नहीं आते। ५ कपट। ६ प्रसन्न। ७ केवट, मल्लाह। ८ खोज ले। ९ समुद्र। १० (१) भजन करना, (२) भागना। ११ परमेश्वर के नाम से। १२ (१) भजन किया, (२) भागा। १३ संसारी विषय-वासनाओं से। १४ भागते हैं। १५ दिखावा करने के समय अभिमानपूर्वक साधन-बल बतलाने के समय।

*इस सोरठे में भी दार्शनिक चमत्कार है। इसमें अद्वैतवाद का प्रतिपादन किया गया है। जितना 'नानात्व' दिखाई देता है, वह सब परमात्मा का ही प्रतिबिंब स्वरूप है।

+यह दोहा भी दार्शनिक सिद्धांत से शून्य नहीं है।

* यदि कपट के साथ माला जपा जाय या तिलक लगाया जाय, तो अंत समय पर यह दंभ काम न आयेगा, क्योंकि राम तो सच्चों के साथी हैं; किन्तु यदि निष्कपट भाव से माला और तिलक धारण किए जायँ, तो कोई बुराई नहीं।

*यहाँ मल्लाह से आशय श्रीरामचन्द्र जी से है, जिन्होंने बन्दरों की सेना

प्रगटत निरगुन[1] निकट हीं, चंग[2]-रंग गोपाल ॥६१॥*
पतवारी[3] माला पकरि, और न आन उपाव।
तरि[4] संसार-पयोधि को, हरि-नामहिं करि नाव ॥६२॥
मन, मोहनसों मोह करि, तूं घनश्याम निहारि।
कुंजबिहारी सों बिहरि, गिरिधारी उर धारि ॥६३॥†
नीकी दई अनाकनी, फीकी परी गुहारि।
मनौं तज्यौ तारन-बिरद, बारक[5] बारन[6] तारि ॥६४॥
दीरघ साँस[7] न लेइ दुख, सुख साईं[8] नहिं भूल।

पत्थर के पुल से समुद्र पार कर दी थी। वही कृपालु रामचन्द्र जी अपनी कृपा से जीवन-नौका खेकर संसार-सागर से किनारे लगा देंगे।

१ गुणहीन; अहंकारशून्य। २ पतंग के समान। ३ करिया। ४ पार करना। ५ एक बार। ६ गजेन्द्र। ६ आह। ८ स्वामी, ईश्वर।

*पतंग चढ़ते समय ज्यों-ज्यों डोरी बढ़ाओगे, त्यों-त्यों पतंग दूर ही होती जायगी। यदि उसे अपने पास खींचना है, तो डोरी खींच लो। इसी प्रकार, जिन लोगों को अपने गुणों का अभिमान है, उनसे भगवान् सदा दूर रहते हैं। वह उन्हीं के पास आने को तैयार रहते हैं, जिनकी यह चाहना है कि हम लोग न विद्वान् हैं, न कुलीन; केवल प्रभु के दास हैं। निराकारवादी इस दोहे का यह अर्थ लगाते हैं कि परमात्मा सगुण उपासना करनेवालों से दूर भागता है, वह निर्गुण उपासकों के ही आगे प्रत्यक्ष प्रकट होता है। हमारी समझ में यह अर्थ उपयुक्त नहीं है। यहाँ 'सगुण और निर्गुण' पद ब्रह्मवाची नहीं है। भक्तवर ने भक्त की निरहंकारिता और भगवान् की दयालुता दरसाने की चेष्टा की है।

† इस दोहे में भक्त अपने मन को समझा रहा है। कहता है, यदि तू मोही ही है तो मोह से मोह लगा; यदि सौंदर्य ही देखना चाहता है तो घनश्याम की ओर टक लगा कर देखा कर, जो इधर-उधर भटकना ही है, तो कुंजबिहारी कृष्ण के साथ बिहार क्यों नहीं करता। अरे, अपने को बड़ा भारी बली ही समझता है, तो चल, गिरिधारी नंदनंदन को अपने हृदय में धारण कर ले।

दई-दई[1] क्यों करत है, दई-दई[2] सु[3] कबूल ॥६५॥
ब्रजवासिन कौ उचित धन, जो धन रुचित न कोइ।
सुचित न आयौ[4] सुचितई[5], कहौ कहाँ तें होइ ॥६६॥
कीजै चित सोई तिरौं[6], जिहिं पतितन के साथ।
मेरे गुन-औगुन-गननि,[7] गिनौ न गोपीनाथ ॥६७॥
थोरेई[8] गुन रीझते, बिसराई वह बानि[9]।
तुमहूँ कान्ह भये मनौं आज-कालि[10] के दानि ॥६८॥*
कबकौ टैरत दीन ह्वै, होत न स्याम सहाइ।
तुमहूँ लागी जगतगुरु, जगनायक जग-बाइ[11] ॥६९॥+
कोऊ कोरिक[12] संग्रहौ, कोऊ लाख हजार।
मो संपति जदुपति सदा, बिपत-बिदारनहार[13] ॥७०॥
ज्यौं ह्वै हौं ज्यौं होंहुगो, हौं हरि अपनी चाल[14]।
हठ न करौ अति कठिन है, मो तारिबो गुपाल[15] ॥७१॥
मोहि-तुम्हें बाढ़ी बहस, को जीतै जदुराज।
अपने-अपने बिरद[16] की, दुहुन निबाहन लाज ॥७२॥

---

१ हाय राम, हाय राम। २ जो ईश्वर ने दिया है। ३ वही एक। ४ मन में नहीं बसा। ५ निर्मलता, शांति। उचित धन से अभिप्राय इष्टदेव से है। ६ संसार से तर जाऊँ, मुक्त हो जाऊँ। ७ समूहों का। ८ जरा-सा ही। ९ स्वभाव। १० कलियुगी, स्वार्थी। ११ दुनियाबी हवा, स्वार्थ भाव। १२ करोड़ों। १३ नाश करने वाले। १४ करनी। १५ गोपाल, श्रीकृष्ण। १६ बाना, भक्त का तो अपने पापों का बढ़ाना और परमेश्वर का पापों का नाश करना। महात्मा सूरदास कहते हैं।

*"आजु हौं एक-एक करि टरिहौं, कै हमहीं कै तुमहीं माधव, अपुन भरोसे लरिहौं।"

+उपर्युक्त दोनों में कलियुगी स्वार्थी दानियों की निन्दा की गयी है। संभव है, महाकवि बिहारी का किसी राजा-रईस ने अनादर किया हो, और उसी को लक्ष्य करके ये दोहे रचे गए हों।

करौं कुवत[1] जग, कुटिलता,[2] तजौं न दीनदयाल।
दुखी होहुगे सरल चित, बसत त्रिभंगीलाल[3]॥७३॥

सोरठा

मोहूँ दीजै मोष[4], जो अनेक पतितनि दियौ।
जो बाँधे ही तोष[5], तौ बाँधौ अपने गुननि[6]॥७४॥

दोहा

हरि, कीजत[7] तुमसौं यहै, विनती बार हजार।
जेहि-तेहि भाँति डरौ[8] रहौं परौ रहौं दरबार॥७५॥
तौ बलियै[9] भलियै बनी, नागर नन्दकिसोर।
जो तुम नीके[10] कैं लखो, मो करनी की ओर॥७६॥*
जात-जात[11] वित[12] होत है, ज्यौं जिय में सन्तोष।
होत-होत[13] त्यों होय तौ, होय घरी[14] में मोष[15]॥७७॥

---

१ बुरी बात; निंदा। २ टेढ़ापन; बुराई। ३ बाँके बिहारी। जैसे के लिए तैसे की जरूरत है। त्रिभंगीलाल के भक्त भी टेढ़े ही होने चाहिए; सीधे-सादे नहीं। ४ मोक्ष। ५ संतोष; प्रसन्नता। ६ गुणों से; रस्सियों से। ७ करता हूँ। ८ पड़ा रहूँ (बुन्देलखंडी)। ९ बलिहारी है। १० बारीकी से; इन्साफ करके। ११ नष्ट होते-होते। १२ धन। १३ आते-आते। १४ घड़ी में। १५ मोक्ष। सारांश यह कि लोभ ही बंधन है; संतोष ही मोक्ष है।

*मेरी ओर; हे नंद-नंदन भला है कि न्याय-दृष्टि से न देखो; क्योंकि ऐसा करने से मेरी बात बनने की नहीं, एक जन्म तो है ही क्या, करोड़ों जन्म तक तरने का नहीं।

देव

छप्पय

ब्रज-साहित्य-सिंगार, सरस रचना में नागर।
उक्ति अनूठी, भव्य काव्य-गरिमा-गुन-आगर॥
कृष्ण-केलि-रसमधुर-माधुरी-मत्त - रँगीलो।
प्रेम-भाव को रूप, रसिक सरबस, गरबीलो॥
श्रीहित-कुल-आश्रित, अनुभवी रह्यौ इटाये प्रेममय।
जेहि ग्रंथ-कदंब रचे सुभग, कवि-चूड़ामनि देव जय॥

—वियोगी हरि

महाकवि देवदत्त, उपनाम देव, इटावा के निवासी थे। इनका जन्म सं० १९३० में हुआ था। इन्होंने १६ वर्ष की अवस्था से ही कविता लिखना आरंभ कर दिया था, जैसा 'भाव-विलास' नामक ग्रंथ से पता चलता है—

सुभ सत्रह सौ छियालिस, चढ़त सोरहीं वर्ष।
कढ़ो देव मुख देवता, भाव-विलास सहर्ष॥

'सुखसागर-तरंग' की भूमिका में विद्वद्वर मिश्रबन्धुओं के पूज्य पिता पंडित बालदत्तजी मिश्र ने इनके संबंध में लिखा है—

"इनके गुरु स्वामी हितहरिवंशजी थे। श्रीस्वामी हितहरिवंशजी की अष्टछाप (?) अर्थात् ब्रज के प्रसिद्ध आठ कवियों में गणना है और इनके पद बहुत अनूठे व सूरदासजी के पदों से समानता करते हैं। इन महाराज के १२ शिष्य थे और इन बारह में से देवजी मुख्य थे।" यह तो स्पष्ट ही है कि स्वामी हितहरिवंशजी महाराज का जन्म सोलहवीं शताब्दी में हुआ था और उनकी गणना वल्लभीय 'अष्टछाप' में नहीं की जाती। देवजी उनके

शिष्य कैसे हो सकते हैं? हाँ, यह हित-कुलावलंबी थे, किन्तु इनके गुरु का क्या नाम था, इसका ठीक-ठीक पता नहीं चलता। इन्होंने सबसे पहले १६ वर्ष के आरंभ में 'भावविलास' बना कर औरंगजेब के बड़े पुत्र काव्य-रसिक आजमशाह को सुनाया। इसके बाद 'अष्टयाम' की रचना की। देवजी भवानीदत्त वैश्य, कुशलसिंह (फफूंद इटावा निवासी) राजा उद्योतसिंह, भोगीलाल पिहानीवाले, अकबरअली खाँ आदि के आश्रय में रहे; पर इनके मन का, भोगीलाल के अतिरिक्त, कोई भी आश्रयदाता न मिला। प्रांत-प्रांत में घूमने से इन्हें बड़ा अनुभव प्राप्त हुआ। इसी विविध अनुभव के फलस्वरूप इन्होंने 'जाति-विलास' जैसे ग्रंथ की रचना की। आश्रयदाताओं के प्रति असंतुष्ट होने के कारण अंत में इन्हें कुछ विरक्ति-सी हो गई थी और यह शृंगार रस से हट कर शांतरस में उतर आए। इन्होंने शांत रस का भी अच्छा वर्णन किया। 'देवमाया-प्रपंच-नाटक', 'वैराग्य-शतक', 'तत्वदर्शन-पच्चीसी', 'आत्म-दर्शन-पच्चीसी', 'जगद्दर्शन-पच्चीसी', 'ब्रह्मदर्शन-पच्चीसी' एवं 'नीतिशतक' आदि शांतरस-प्रधान ग्रंथों को लिखकर यह सिद्ध कर दिया कि विशुद्ध शृंगार के उपासक शांत रस पर भी किस सफलता-पूर्वक लिख सकते हैं। किसी-किसी के मत से इनके ७२ और किसी के मत से ५२ ग्रंथों का उल्लेख मिलता है। अब तक इनके निम्नलिखित २७ ग्रंथों का पता चला है —

१. भाव-विलास; २. भवानी-विलास; ३. कुशल-विलास; ४. जाति-विलास; ५. रस-विलास; ६. राधिका-विलास; ७ पावस-विलास; ८. वृक्ष-विलास; ९. अष्टयाम; १०. सुन्दरी सिंदूर (संग्रह); ११. सुजान-विनोद; १२. प्रेम-तरंग; १३. राग-रत्नाकर; १४. देव-चरित्र; १५. प्रेम-चंद्रिका; १६. काव्य-रसायन; १७. सुखसागर तरंग (संग्रह); १८. देवमाया-प्रपंच (नाटक); १९. ब्रह्मदर्शन-पच्चीसी; २०. आत्मदर्शन-पच्चीसी; २१. तत्वदर्शन-पच्चीसी; २२. जगद्दर्शन-पच्चीसी; २३. नीति-शतक; २४. नखशिख; २५. रसानंद लहरी; २६. प्रेमदीपिका; २७. सुमिल-विनोद।

देव की कविता की भाषा शुद्ध ब्रज की है, पर कहीं-कहीं इन्होंने शब्दों का तोड़-मरोड़ बुरी तरह से किया है। इनकी कविता में ओज, प्रसाद और माधुर्य तीनों गुण पाये जाते हैं। उक्तियाँ तो इनकी बड़ी ही अनूठी हैं। महाकवि बिहारीलाल के बाद भाव-व्यक्तीकरण में इन्हीं का स्थान है। स्वर्गीय पं० बालदत्तजी मिश्र तो इनको सर्वश्रेष्ठ कवि मानते थे। उन्होंने 'सुख-सागर-तरंग' के आदि में लिखा है—

सूर सूर, तुलसी सुधाकर, नक्षत्र केसव,
सेष कविराज को जुगुनू जनायकैं।
दोऊ परिपूरन भगति दरसायौ अब,
काव्यरीति मोसन सुनहु चित्त लायकैं॥
देव नभमंडल समान हैं कबीन-मध्य,
जामें भानु सितभानु तारागन आयकैं।
उदय होत अथवत, चारों ओर भ्रमत पैं,
जाकौ औरछोर नहिं परत लखायकैं॥

मिश्र जी ने इस कथन की पुष्टि भी यथाशक्ति खूब की है। आपने देव के आगे तुलसी-सूर को भी निस्तेज-सा दिखाया है। और कबीर को कोई कवि ही नहीं माना! 'हिन्दी नवरत्न' और 'मिश्रबन्धु-विनोद' के सुबुद्ध रचयिताओं की भी कुछ ऐसी ही राय है। हमारी तुच्छ सम्मति में देव की इस प्रशंसा में निश्चय ही घोर अत्युक्ति है। माना कि, इनकी कविता बड़ी सरस, भावपूर्ण, ओजस्विनी और अनोखी है, पर सूर और तुलसी को तो जाने दीजिए, वह केशव और बिहारी की रचनाओं से भी आगे नहीं बढ़ सकी। कुछ दिनों हिन्दी-साहित्य-संसार में इस विषय पर भारी वाद-विवाद चला। कोई देव को सातवें स्वर्ग पर चढ़ा देता था तो कोई उन्हें बिहारी के मुकाबिले नीचे गिरा देता था। देव-बिहारी, केशव-देव, दास-देव आदि तुलनात्मक आलोचनाओं से वृथा पक्षपात के कारण एक प्रकार से साहित्य-हत्या ही हुई है। साहित्यिक महारथियों को इस पर निष्पक्ष रीति से विचार

करना चाहिए था, वह नहीं हुआ। देव ने अपनी प्रखर प्रतिभा के प्रताप से पूर्ववर्ती सुकवियों के कई भाव ज्यों-के-त्यों उठा कर अपनी रचनाओं में रख दिए हैं। यह भी नहीं कहा जा सकता, कि उनके ग्रंथ सर्वथा निर्दोष हैं, या देव के आगे कोई कवि 'न भूतो न भविष्यति' ही कह सकते हैं। तुलना का काम बड़ा कठिन होता है। सहसा किसी को बहुत ऊँचाई पर चढ़ा देना या एकदम नीचे गिरा देना न्याय संगत नहीं। ऐसी एकपक्षी आलोचनाओं से भ्रम और द्वेष के प्रचार के अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं होता।

इसमें संदेह नहीं कि देव ब्रजभाषा-साहित्य के इने-गिने महाकवियों में से थे। पर प्रश्न यह है कि इनकी कविता का प्रचार अधिक क्यों नहीं हुआ। एक बात तो यह है कि इनके पद्य प्रायः जटिल-से हैं और दूसरे, गूढ़ोक्तियों के कारण, वे कुछ दुर्बोध से हो गए हैं। शृंगार का बाहुल्य भी इसका एक कारण हो सकता है, किन्तु प्रचाराधिक्य के अभाव से यह नहीं कहा जा सकता कि इनकी कविता उत्तमता की दृष्टि से हीन है। लोकप्रियता ही सत्कविता की एकमात्र कसौटी नहीं है। प्रायः देखा गया है कि रद्दी पुस्तकों का भी खूब प्रचार होता है। तो क्या इस प्रचार से उनका महत्व बढ़ जाता है? देव की कविता लोकप्रिय न हो, पर पंडित-प्रिय तो वह अवश्य है। वास्तव में, देव-जैसे महाकवियों के कारण प्राचीन ब्रजभाषा साहित्य का मस्तक सदा ऊँचा रहेगा। देव-सदृश सर्वव्यापी दृष्टिवाले कवि-रत्नों के प्रकाश से साहित्य-संसार सदा जगमगाता रहेगा, इसमें संदेह नहीं।

अभी तक इनके चार-पाँच ग्रंथ ही प्रकाशित हुए हैं। महाकवि देव के कतिपय ग्रंथों से कुछ उत्तम पद्य यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

सवैया

पायन नूपुर मंजु बजैं, कटि किंकिन में धुनि की मधुराई।
साँवरे अंग लसै पट पीत, हियें हुलसै बनमाल सुहाई॥

माथे किरीट[१], बड़े दृग चंचल, मंद हँसी मुखचंद-जुन्हाई।
जै जग-मंदिर-दीपक सुन्दर, श्री ब्रजदूलह[२] देवसहाई॥१॥

कवित्त

सूनो कै परम-पदु[३], ऊनो[४] कै अनंत मदु,
 दूनो कै नदीस नदु इन्दिरा[५] फुरै परी।
महिमा मुनीसन की, संपति दिगीसन की,
 ईसन[६] की सिधि ब्रज-बीथी बिथुरै[७] परी॥
भादौं की अँधेरी अधराति, मथुरा के पथ,
 आई मनोरथ देव देवकी दुरै परी।
पारावार पूरन, अपार, परब्रह्म रासि,
 जसुदा के कोरे[८] एक बारक कुरै[९] परी॥२॥
धाये फिरौ ब्रज में, बधाये नित नंदजू के,
 गोपिन सधाये, नाचौ गोपन की भीरी[१०] में।
देव मतिमूढ़ै तुम्हैं, कहाँ पावै, चढ़े,
 पारथ[११] के रथ, बैठे[१२] जमुना के नीर में॥
आँकुस ह्वै दौरि हरनाकुस को फार्‌यो उर,
 साथी न पुकार्‌यो हते हाथी हिय तीर में।
बिदुर[१३] की भाजी, बेर भीलनी[१४] के खाय,
 विप्र चाउर[१५] चबाय, दुरे द्रौपदी के चीर में॥३॥

---

१ मुकुट। २ ब्रज के शृंगार; श्रीकृष्ण। ३ मोक्ष। ४ कम करके। ५ लक्ष्मी। ६ ऐश्वर्यशाली। ७ बिखेर दी गई। ८ गोद में। ९ डाल दो; भर दो; 'कुरैना' बुन्देलखंडी शब्द है। १० मंडली। ११ पार्थ, अर्जुन। १२ प्रवेश कर गए। १३ दासी के गर्भ से उत्पन्न धृतराष्ट्र के भाई। १४ शबरी। १५ सुदामा के चावल।

'देव' नभ-मंदिर में बैठार्यो पुहुमि पाठ,[1]
सिगरे सलिल अन्हवाये उमगत[2] हौं।
सकल महीतल के मूल, फल, फूल, दल,
सहित सुगन्धन चढ़ावन चहत हौं॥
अगिनि अनन्त धूप, दीपक अखंड,[3] जोति,
जल, थल, अन्न दै प्रसन्नता लहत हौं।
ढारत[4] समीर चौंर, कामना न मेरे ओर,
आठों जाम, राम, तुम्हें पूजत रहत हौं॥४॥
नाक,[5] भू, पाताल, नाक-सूची[6] तें निकसि आये,
चौदहों भुवन भूखे, भुनगा[7] को नयो हेत।
चौंटी-अंड भंड[8] समान्यो, ब्रह्मंड सब,
संपत[9] समुद्र वारि बूंद में हिलोरैं लेत॥
मिलि गयो मूल थूल[10], सूच्छम समूल कुल,
पंचभूतगन अनुकन में कियो निकेत।
आप ही तें आपही सुमति सिखराई,[11] 'देव',
नखसिख[12] राई में सुमेरु देखराई देत॥५॥
तुहीं पंचतत्त्व, तुहीं सत्त्व रज, तम तुहीं,
थावर[13] औ जंगम जितेक[14] भयो, भव में।
तेरे ये बिलास,[15] लोटि तोहीं में समान्यो, कछू,
जान्यौ न परत पहिचान्यो जव जब में॥

---

१ पृथ्वी-रूपी आसन। २ प्रसन्न होता हूँ। ३ अखंड ज्योति से दीपार्चन किया जाता है। ४ झलता है। ५ स्वर्ग। ६ सुई का छेद। ७ छोटा-सा कीड़ा। ८ पात्र। ९ सप्त, सात। १० स्थूल। ११ सिखा दो। १२ नख का अग्र भाग अथवा राई के दाने। नख-सिख अर्थात् पूरा अंग। १३ स्थावर जड़। १४ जितना। १५ विभूति।

देख्यौ नहीं जात, तुहीं देखियतु जहाँ तहाँ,
दूसरो न देख्यौ 'देव' तुहीं देख्यौ अब में।
सब की अमरमूरि,[१] मारि सब धूरि कहै,
दूरि सबही तें भरिपूरि रह्यौ सब में ॥६॥

मूढ़ ह्वै रह्यौ है, गूढ़ गति क्यों न ढूंढ़त है,
गूढ़चर[२] इन्द्रिय अगूढ़ चार मारि दै।
बाहर हूँ भीतर निकारि अंधकार सब,
ग्यान की अगिनि सों अयान[३]-बन बारि दै[४]॥
नेह भरे भाजन में कोमल अमल जोति,
ताकौ हूँ प्रकाश चहुँ पूजन पसारि दै।
आवै उमड़ा-सो मोह मेह घुमड़ा-सो 'देव',
माया को मड़ा[५]-सो अँखियन तें उघारि दै[६] ॥७॥

अंग,[७] नग[८], नाग नर, किन्नर, असुर, सुर,
प्रेत, पसु, पच्छी, कोटि-कोटिन कढ़्यौ फिरै।
माया-गुन[९] तत्त्व उपजत, बिनसत सत्त्व,
काल की कला को ख्याल खाल[१०] में मढ़्यौ फिरै।
आपहीं भखत,[११] भख आपहीं अलख[१२]-लख,
'देव' कहूँ मूढ़, कहुँ पंडित पढ़्यो फिरै।
आपहीं हथ्यार, आप मारत, मरत आप,
आपहीं कहार, आप पलकी चढ़्यौ फिरै ॥८॥

तेरो घर घेरें आठों जाम रहैं आठो सिद्धि,
नवों निधि तेरे विधि लिखिए ललाट हैं।

---

१ संजीवनी बूटी। २ गुप्तचर। ३ अज्ञान, अविद्या। ४ जला दे। ५ माड़ा। ६ छाँट डाला। ७ जड़। ८ पहाड़। ९ मायिक त्रिगुण; सत्व।, रज और तम। १० पाँच भौतिक शरीर। ११ भक्ष्य। १२ अलक्ष्य, अदृश्य-दृश्य, अव्यक्त इसे "एकमेवाद्वितीयं-ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन" का ही सरस भाष्य कहना चाहिए।

'देव' सुख-साज महराजनि कौ राज तुहीं,
सुमति सु सो ये तेरी कीरति के भाट हैं॥
तेरे ही अधीन अधिकार तीन लोक को सु,
दीन भयो क्यों फिरै मलीन घाट[1]-बाट हैं।
तो में जो उठत बोलि,[2] ताहि क्यों न मिलै डोलि,[3]
खोलिए हिये में दिये कपट-कपाट हैं॥९॥*

हौं ही ब्रज वृन्दावन मोहि में बसत सदा,
जमुना-तरंग स्यामरंग अवलीन की॥
चहूँ ओर सुन्दर सघन बन देखियतु,
कुंजनि में सुनियतु गुंजनि अलीन[4] की॥
वंसीवट-तट नटनागर नटतु[5] मो में,
रास के विलास की मधुर-धुनि बीन की।
भरि रही भनक[6], बनक ताल-तानन की,
तनक-तनकता में झनक[7] चुरीन[8] की॥१०॥**

सवैया

को तप कै सुरराज भयौ, जमराज को बंधन कौन खुलायो?
मेरु महीं में सही करिकैं, गथ[9] ढेर कुबेर को कौन तुलायो?
पाप न, पुन्य न, नर्क, न सर्ग[10], मरो सुमरो, फिरि कौन बुलायो?
झूठ ही वेद-पुरानन बाँचि, लबारन लोग भले कै भुलायौ[11]॥११॥
मूढ़ कहै मरिकैं फिरि पाइए, ह्याँ, जु लुटाइए भौन भरे को।

१ जहाँ-तहाँ। २ शब्द, स्वयंभूत शब्द, जिसे "सोऽहं" कहते हैं। ३ प्रयत्न करके। ४ भ्रमरों की। ५ नाचता है। ६ आवाज। ७ झनकार। ८ (गोपियों की) चूड़ियों की। ९ धन-संपत्ति। १० स्वर्ग। ११ भ्रम में डाल दिया।

*इसमें अद्वैतवाद के अनुसार जीव-ब्रह्मैक्य का निरूपण किया गया है।

**अध्यात्मदृष्टि से, इस कवित्त में, रास-विलास का बड़ा ही अनूठा वर्णन किया गया है।

सो खल खोय खिस्यात खरे, अवतार[1] सुन्यौ कछु छार परे कौ।
जीवत तौ ब्रत-भूख सुखौत,[2] समीर महा सुर-रूख[3] हरे कौ।
ऐसे असाधु असाधुन की बुधि, साधन देत सराध[4] मरे कौ॥१२॥
हैं उपजे रज-बीज[5] ही तें बिनसेहैं सबै छिति छार[6] कै छाँड़े।
एक-से देखु. कछू न बिसेखु ज्यों एकै उन्हारि[7] कुँभार के भाँड़े[8]॥
तापर आपुन ऊँच ह्वै, औरन नीच कै पाय पुजावत चाँड़े।
वेदन[9] मूँदि करी इन दूँदि,[10] सु सूद अपावन, पावन पाँड़े[11]॥१३॥*
साहेब अंध, मुसाहेब मूक, सभा बहिरी, रँग[12] रीझ कौ माच्यौ।
भूल्यौ तहाँ भटक्यौ भट औघट, बूड़िबे[13] कौ कोउ कर्म न बाच्यौ।
भेप न सूझ्यौ,कह्यौ समुझ्यौ न, बतायौ सुन्यौ न कहा रुचि राच्यौ।
'देव' तहाँ, निबरे नट की, बिगरी मति की सिगरी निसि नाच्यौ॥१४॥†
हाय दई! यहि काल के ख्याल[14] में, फूल से फूलि सबै कुंभिलाने।
या जग बीच बचे नहि मीच पै, जे उपजे ते मही में मिलाने।
देव-अदेव, बली-बलहीन, चले गये मोह की हौंस हिलाने।
रूप-कुरूप, गुनी-अगुनी, जे जहाँ उपजे ते तहाँ ही बिलाने॥१५॥**
'देव' जिये जब पूछौ तो पीर कौ, पार कहूँ लहि आवत नाहीं।

---

१ अवतार...कौ—कहीं जले हुए मुरदे का भी पुनर्जन्म होता है? यह उक्ति चार्वाक के इस कथन से मिलती है "भस्मीभूतस्य देहस्य पुनर्जन्म न विद्यते।" २ सुखा रहा है। ३ वृक्ष। ४ श्राद्ध। ५ स्त्री-पुरुष का संयोग। ६ भस्म होकर। ७ प्रकार। ८ मिट्टी के बर्तन। ९ बेदन मूंदि—वेदों का अंट-संट अर्थ लगाकर। १० द्वन्द्व; अंधेर। ११ ब्राह्मण। १२ रंग...माच्यौ—चापलूसी का बाजार गर्म है। १३ बूड़बे...बाच्यौ—नरक जाने का कोई भी कर्म नहीं छूटा। १४ लीला।

*यह सवैया कबीरदास जी के 'पाँड़े छूत कहाँते आई" आदि पदों से मिलता है।

†कुपात्र अर्थात् अनधिकारियों के लिए देवजी की ज्ञान-चर्चा किस काम की?

**देव ने इस प्रकार 'जगद्दर्शन' किया है।

सो सब झूठ मते मत के बरु, मौन सोऊ-सहि आवत नाहीं॥
ह्वै नद-संग तरंगनि में मन फेन भयौ, गहि आवत नाहीं।
चाहै कह्यौ बहुतेरो कछू, पै कहा कहिए, कहि आवत नाहीं॥१६॥*

'देव' सबै सुख दायक संपति, संपति कौ सुख दंपति जोरी[1]।
दंपति दीपति प्रेम-प्रतीति, प्रतीति की रीति सनेह-निचोरी।
प्रीति तहाँ गुन-रीति बिचार 'बिचार' की बानी सुधारस बोरी।
बानी कौ सार बखान्यौ सिंगार, सिंगार कौ सार किसोर[2]-किसोरी॥१७॥

कवित्त

फटिक[3] सिलानि सों सुधार्‌यौ सुधा[4] मंदिर,
उदधि दधि कौ-सो अधिकाई उमँगै अमंद[5]।
बाहेर तें भीतर लौं भीति[6] न दिखैए 'देव',
दूध कैसी फेनु फैलो आँगन फरस बंद॥
तारा-सी तरुनि तामें ठाढ़ी झिलमिल होति,
मोतिन की जोति मिली मल्लिका कौ मकरंद।
आरसी से अंबर में आभा-सी उज्यारो लागै,
प्यारी राधिका कौ प्रतिबिंब-सी लागत चंद॥१८॥§

पामरनि पामरे[7] परे हैं पुर पौरि लगि,
धाम-धाम धूपनि कौ धूप धुनियतु[8] हैं।

---

१ जोड़ी। २ श्रीकृष्ण और राधिका। देवजी ने किशोर-किशोरी अथवा नायक-नायिका को पुरुष और प्रकृति के रूप में माना है: 'माया देवी नायिका नायक पुरुष आप। सबै दंपतिन में प्रकट, 'देव' करै तिहि जाप' (प्रेम-चंद्रिका)। ३ स्फटिक, बिल्लौर पत्थर। ४ अमृत, इसका रंग सफेद माना गया है। ५ धवल। ६ दीवार। ७ पाँवड़े। ८ छाया है।

*जगत् और ब्रह्म की अनिर्वचनीयता-संबंधी यह मूक भाव गोसाईं तुलसीदास जी के 'केसव कहि न जाइ का कहिये' आदि पद से कुछ-कुछ मिलता है।

§ क्या इससे भी उत्तम कहीं ग्रीष्म की रात्रि का दृश्य देखने में आएगा?

अतर, अगर,[१] चारु चोवारस, घनसार,[२]
दीपक हजारन अँध्यार लुनियतु[३] हैं॥
मधुर मृदंग राग रंगन तरंगन में,
अंग-अंग गोपिन के गुन गुनियतु हैं।
'देव' सुखसाज महाराज ब्रजराज आज,
राधाजू के सदन सिधारे सुनियतु हैं॥१९॥

सवैया

या चकई कौ भयौ चित चीतौ,[४] चितौति चहूँदिसि चाय,[५] सौं नाची।
ह्वै गई छीन छपाकर[६] की छवि, जामिनि जोन्ह मनौं जम-जाँची।[७]
बोलत बैरी बिहंगम, 'देव' सु बैरिन[८] के घर संपति साची।
लोहूपियौ जु बियोगिनी कौ, सुकियौ मुख लालपिसाचिनि प्राची॥२०॥*

कवित्त

गुरुजन-जावन[९] मिल्यौ न, भयौ दृढ़ दधि,
मथ्यौ न विवेक-रई[१०] 'देव' जो बनायगो।
माखन-मुकुति कहाँ छाँड़यौ न भुगुति[११] जहाँ,
नेह बिनु सिगरो सवाद खेह[१२] नायगो[१३]॥
बिलखत बच्यौ, मूल कच्यौ, सच्यौ लोभ-भाँड़े,
तच्यौ[१४] क्रोध-आँच, पच्यौ मदन सिरायगो[१५]॥
पायौ न सिरावन[१६] सलिल छिमा[१७] छींटन सों,

---

१ चंदन। २ कपूर। ३ दूर करते हैं। ४ मनचाहा। ५ चाह, आनंद। ६ चंद्रमा। ७ नाश हो गई। ८ शत्रु; यहाँ सौत से आशय है। ९ जामन; कोई भी खट्टी चीज जिससे दूध जमाया जाता है। १० मथानी। ११ मुक्ति, भोग-विलास। १२ धूल में। १३ पड़ गया। १४ जलाया गया। १५ बीत गया। १६ ठंडा करने वाला; शांत। १७ क्षमा।

*रक्ताभा का क्या ही सुन्दर वर्णन है। भारतेन्दु जी ने अपने 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक में इस सवैये को उद्धृत किया है।

दूध-सो जनम बिन जाने उफनायगो॥२१॥*

नेक अभिलाष लाख-लाख भाँति लेखियत,
देखियत दूसरो, न, देव, चराचर में।
जासों मनु राँचै, तासों तन-मनु राँचै,[1]
रुचि भरिकै उघरि जाँचै, साँचै करि कर में॥
पाँचन[2] के आगे आँच लगे तें न लौटि जाय,
साँच देइ प्यारे की सती-लौं बैठि सर[3] में।
प्रेम सों कहत कोऊ, ठाकुर, न ऐंठौ सुनि,
बैठौ[4] गड़ि गहरे, तौ पैठौ प्रेम-घर में॥२२॥

जिन जान्यो वेद, ते तौ बादि कै बिदित होहु,
जिन जान्यौ लोक, तेऊ लीक[5] पै लरि मरौ।
जिन जान्यो, तप, तीनौ तापनि में तपि तपि,
पंचागनि साधि ते समाधिन धरि मरौ।
जिन जान्यो तेऊ जोगी जुग-जुग जियौ,
जिन जानी जोति, तेऊ जोति[6] लै जरि मरौ।
हौं, तौ, 'देव' नंद के कुँवर तेरी चेरी भई,
मेरो उपहास क्यों न कोटिन करि मरौ॥२३॥

सवैया

गाँठि हुतें गिरि जात गये, यह पैए न फेरि जु पै जग जोवै[7]।
ठौरि ही ठौर रहैं ठग ठाढ़ेई, पौरि जिन्हें न हँसे किन रोवै।
दीजिए ताहि जो आपन[8] सो करै, 'देव' कलंकनि पंकनि धोवै।

---

१ मिल जाय, लगन लग जाय। २ पंचभूतों के, पंचों के। ३ सारी चिता। ४ बैठो . . . गहरे—बड़े-से-बड़े कष्ट सहने को तैयार हो जाओ। खबरदार। 'यह प्रेम को पंथ कटार महा, तरवार की धार पै धावनो है। ५ रीति, पद्धति। ६ आत्मज्योति, जो योग-साधना द्वारा दृष्टिगत होता है। ७ देखे, तलाश करे। ८ अपने मन का।

*बहुत ही सुन्दर रूपक है।

बुद्धि-बधू को बनाय कैं सौंपु तूं मानिक-सो मन धोखै न खोवै ॥२४॥

कवित्त

'देव' घनस्याम-रस बरस्यौ अखंड धार,
पूरन अपार प्रेम-पूर[1] न सहि परचौ।
विषै-बंधु बड़े, मद-मोह-सुत दबे देखि,
अहंकार-मीत मरि, मुरझि[2] महि परचौ॥
आसा, त्रिसना-सी, बहु-बेटी लै निकसि भाजी।
माया-मेहरी[3] पै देहरी पै न रहि परचौ।
गयौ, नहिं हेरो, ल्यौ बन में बसेरो नेह;
नदी के किनारे मन-मन्दिर ढहि[4] परचौ॥२५॥*
औचक[5] अगाध सिंधु स्याही कौ उमँगि आयौ,
तामें तीनों लोक बूड़ि गये एक संग में।
कारे-कारे कागद लिखे ज्यों कारे आखर,[6]
न्यारे करि बाँचै, कौन, नाचे चित्त भंग में॥
आँखिन में तिमिर अमावस की रैनि अरु,
जंबूरस[7] बूंदि जमुना-जल-तरंग में।
यौं ही मन मेरो मेरे काम कौ न रह्यौ 'देव'
स्यामरंग ह्वै करि समान्यौ स्याम रंग में॥२६॥**

सवैया

प्रेम-पयोधि परो गहिरे, अभिमान कौ फोन रह्यौ गहि, रे मन।

---

१ बाढ़। २ मूर्च्छा खाकर। ३ दासी। ४ गिर पड़ा। ५ अचानक। ६ अक्षर। ७ जामुन का काला रस।

*क्या फिर भी लोग नेह-नदी के किनारे अपना मन मन्दिर बनायेंगे?

**पर बिहारी का अनुरागी मन श्याम-रंग में डूब जाने पर भी श्याम नहीं हुआ, वरन् और भी उज्ज्वल हो गया; "या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोय। ज्यों-ज्यों बूड़ै स्याम-रंग त्यों-त्यों उज्ज्वल होय।"

कोप-तरंगनि सो बहि रे, पछितात्र पुकारत क्यों, बहि रे[1] मन ॥
'देवजू' लाज-जहाज तें कूदि रह्यौ मुख मूंदि अजौं रहि,[2] रे मन।
जोरत तोरत प्रीति तुहीं,अब तेरी अनीति तुहीं सहिरे मन ॥२७॥

कवित्त

तेरी कह्यौ करि-करि, जीवन रह्यौ जरि-जरि,[3]
हारी पांय परि-परि, तऊँ तैं न की संभार।
ललन[4] बिलोकि, 'देव' पलन लगाये तब
यौं कल[5] न दानी तैं छलन उछलनी[6] हार॥
ऐसे निरमोही सों सनेह बांधि हौं बँधाई,
आपु बिधि बूड्यौ माँझ बाधा-सिंधु निरधार।
एरे मैंन मेरे, तैं घनेरे दुख दीन्हें पल
एकै बार[7] दैकैं तोहि मूंदिमारौं एकैबार[8]॥२८॥
ऐसो जो हौं जानतो, कि जैहैं तूं विषै के संग,
एरे मन मेरे, हाथ-पाँव तेरे तोरतो[9]।
आजुलौं हौं कत[10] नरहान की नाहीं सुनि,
नेह सों निहारि हारि बदन निहोरतो[11]॥
चलन न देतो 'देव' चंचल अचल करि,
चाबुक-चितावनीन[12] मारि मुँह मोरतो[13]।
भारी प्रेम-पाथर नगारों दै गरे सो, बाँधि
राधावर-विरुद[14] के वारिध में वोरतो[15]। २९॥

---

१ (१) अरे, बह जा, (२) बहरा, न सुननेवाला। २ ठहर जा। ३ (सांसारिक त्रिविध ताप में) जल-जलकर। ४ प्यारा। ५ चैन। ६ चंचल। ७ किवाड़; पलक रूपी किवाड़। ८ एक ही बार। ९ तोड़ डालता। १० क्यों। ११ ताकता फिरता। १२ उपदेश। १३ मोड़ देता, उधर न जाने देता। १४ यश। १५ डुबो देता।

सवैया

धार में धाय धसी निरधार[1] ह्वै जाय फँसी उकसी न अँधेरी।
री! अँगराय[2] गिरी गहिरी, गहि फेरे फिरी न घिरी नहिं घेरी॥
'देव' कछू अपुनो बस ना, रस-लालच लाल चितै भई चेरी।
बेगहीं बूड़ि गई पँखियाँ[3] अँखियाँ मधु की मँखियाँ भई मेरी॥३०॥

कालिय काल महा विष ज्वाल, जहाँ जल ज्वाल जरै रजनी दिनु।
ऊरध[4] के अध[5] के उबरै नहिं, जाकी बयारि[6] बहै तरु ज्यों बिनु॥
ताफनि[7] की फन-फाँसिन में फसि, जाय फँसी, उकस्यौ[8] न अजौं छिनु।
हा ब्रजनाथ! सनाथ करो, हम होतीं हैं नाथ अनाथ तुम्हैं बिनु॥३१॥*

'देव' मैं सीस बसायौ सनेह[9] कै, भाल, मृगम्मद[10] बिंदु कै राख्यौ।
कंचुकी में चुपर्‌यौ करि चोवा[11] लगाय लियौ उर सौं अभिलाख्यौ।
लै मखतूल गुहे कहने, रस मूरतिवंश सिंगार[12] कै चाख्यौ।
साँवरे लाल कौ साँवरौ रूप मैं, नैननि कौ कजरा करि राख्यौ॥३२॥

रैन सोई दिनु, इन्दु दिनेस, जुन्हाई है धाम घनो विषधाई।
फूलनि सेज, सुगंध दुकूलनि, सूल उठै तनु तूल[13] ज्यों ताई[14]॥
बाहर भीतर भ्वै हरै ऊन, रह्यौ परै 'देव' सु पूछन आई।
हौं ही भुलानी कि भूले सबै, कहैं ग्रीषम सों सरदागम[15] माई॥३३॥

---

१ निराधार। २ उन्मत्त होकर, अंगड़ाई लेकर। ३ पंख। ४ ऊपर। ५ नीचे। ६ हवा, लपट। ७ साँप। ८ निकाला। ९ प्रेम तैल। १० मृगमद, कस्तूरी। ११ कई सुगंधित वस्तुओं का लेप। १२ शृंगार रस, जिसका रंग श्याम माना गया है। १३ रुई। १४ आग। १५ शरद ऋतु का आरंभ।

*बिहारी भी इसी प्रकार बिरहिणी के मुख से भ्रम भरी बात कहला रहे हैं: "हौं ही बौरी बिरह बस, कै बौरो सब गाम। कहा जानिए कहत हैं, ससिहिं सीतकर नाम।"

कवित्त

बरुनी बघंबर[1] में गूदरी पलक दोऊ,
कोए[2] राते[3] बसन भगौहें[4] भेष रखियाँ।
बूड़ी जल ही में, दिन-जामिनी हूँ जागैं, भौहें,
धूम सिर छायो बिरहानल बिलखियाँ॥
अँसुवा फटिक-माल लाल[5] डोरी-सेल्ही[6] पैन्हि,
भई हैं अकेली तजि चेली संग सखियाँ।
दीजिए दरस 'देव' कीजिए सँजोगिनि, ए
जोगिनि ह्वै बैठी हैं बियोगिनि की अँखियाँ॥३४॥

कंत बिन बासर बसंत लागे अंतक[7] से,
तीर ऐसे त्रिबिध समीर लागे लहकन[8]।
सान[9] धरे सार-से चंदन घनसार[10] लागे
खेद लागे खरे, मृगमद[11] लागे महकन॥
फाँसी से फुलेल लागे गाँसी-से गुलाब अरु,
गाज[12] अरगजा लागे चोवा लागे चहकन।
अंग-अंग आगि ऐसे केसरि के नीर लागे,
चीर लागे जरन, अबीर लागे दहकन॥३५॥

सवैया

सुनिकै धुनि चातक मोरन की, चहुँ ओरन कोकिल कूकनि सों।
अनुराग-भरे हरि बागन में, सखि रागनि राग अचूकनि सों॥
कवि 'देव' घटा उनई[13], उनई, बन भूमि भई दल दूकनि सों।

---

१ बाघंबर; बाघ का चमड़ा, जिसे योगी आसन के काम में लाते हैं। २ आँख के दोनों कोने। ३ लाल। ४ भगवा रंग। ५ लाल डोरे जैसी रेखाओं का जाल। ६ योगियों का वस्त्र। ७ काल, मृत्यु। ८ जोर से चलने लगे। ९ सान...सार से—खूब पैने भालों से। १० कपूर ११ कस्तूरी। १२ बिजली। १३ उठी, घिर आयी।

रँगराती हरी हहराती लता, झुकि जाती समीर के झूकनि[1] सों ॥३६॥

कवित्त

कोऊ कहौ कुलटा कुलीन अकुलीन कहौ,
कोऊ कहौ रंकिनि, कलंकिनि कुनारी हौं।
कैसो नरलोक, परलोक बर लोकनि में,
लीन्ही मैं अलीक[2], लोक-लीकनि तें न्यारी हौं॥
तन जाऊँ, मन जाऊँ, 'देव' गुरुजन जाऊँ,
प्रान कि न जाउ, टक टरति न टारी हौं।
बृन्दावन वारी बनवारी की मुकुटवारी,
पीत पटवारी वाहि मूरति पै वारी[3] हौं॥३७॥

---

१ झोकों से। २ अमर्यादा। ३ अपने को बलि या निछावर करती हूँ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

छप्पय

वनिक-बंस-अवतंस, सत्य-धीरज-व्रपुधारी।
चौसठ-कला-प्रवीन, प्रेम-मारग-प्रतिपारी॥
विद्या-विनय-बिसिष्ट, सिष्ट-समुदाय सभा-जित।
कविताकलकमनीय - कृष्णलीला - जग - प्लावित।
कई लच्छ बानी भगतमाल-उत्तरारध-करन।
आदि-अंत सोभित भये, हरिश्चन्द्र प्रात:स्मरन॥

—गोस्वामी राधाचरण

राय बालकृष्ण का वंश भारतवर्ष के इतिहास में प्रख्यात है। इतिहास-प्रसिद्ध सेठ अमीचंद्र इसी वंश में हुए थे। अमीचंद्र के फतहचंद्र, फतहचंद्र के हर्षचंद्र और हर्षचंद्र के पुत्र गोपालचंद्र थे। इनका उपनाम 'गिरिधरदास' था। बाबू हरिश्चन्द्र इन्हीं के सुपुत्र थे। गिरिधरदासजी परम वैष्णव, सदाचारी एवं सत्कवि थे। इन्होंने छोटे-बड़े सब चालीस ग्रंथ लिखे। भक्ति और श्रृंगार के अतिरिक्त गिरिधरदासजी ने 'विदुरनीति' आदि नीति-विषय के भी कुछ ग्रंथ लिखे हैं।

भाद्रपद शुक्ला ७ संवत् १९०७ को काशीपुर में हरिश्चन्द्र का जन्म हुआ। ९ वर्ष की अल्पावस्था में ही उनके पिता इन्हें छोड़कर गोलोक सिधार गए। बालक हरिश्चन्द्र ने बचपन में ही अपनी कवित्व-शक्ति का परिचय देकर पिता से यह कहला लिया था 'हरिश्चन्द्र! तू मेरे नाम को

बढ़ायेगा।' सबसे पहले बालक हरिश्चन्द्र ने यह दोहा बनाकर अपने पिताजी को सुनाया था :—

लै ब्योंड़ा ठाड़े भये, श्रीअनिरुद्ध सुजान।
बानासुर की सेन कों, हनन लगे भगवान।

पिता के स्वर्गवास हो जाने पर यह कुछ स्वतंत्र विचार के हो गये। पढ़ने के लिए कालिज भेजे गये ; पर वहाँ इनका जी न लगा। कुछ दिनों राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद से अंग्रेजी पढ़ी और इसी नाते उन्हें यह गुरु मानने लगे। पहले तो गुरु-चेला की खूब बनी, पर पीछे कुछ अनबन हो गई। राजा साहब 'दकियानूसी' थे, तो बाबू साहब उदार विचारों के। अंत तक यह मत-विरोध बढ़ता ही गया, और बाबू साहब ने अपनी प्रखर प्रतिभा से राजा साहब को जनता की दृष्टि में बहुत कुछ नीचे गिरा दिया।

बाबू साहब का प्रेम हिन्दी-साहित्य पर बचपन से ही था। यह रुचि दिनों-दिन बढ़ती ही गई। सन् १८३८ में यह हिन्दी-प्रेम 'कवि-वचन-सुधा' मासिक पत्र के रूप में वर्तमान दिखाई देने लगा। इसमें चन्द, देव, जायसी, कबीर आदि कवियों की कविता क्रमशः प्रकाशित होने लगी। बाद को गद्यात्मक लेख भी निकलने लगे। यह पत्र मासिक से पाक्षिक और फिर साप्ताहिक हो गया। अब इसमें राजनीतिक, सामाजिक आदि विषयों का भी समावेश हो गया। 'कवि-वचन-सुधा' का सिद्धान्त-वाक्य यह था :—

खलजनन सों सज्जन दुखी मति होंहि, हरिपद-रति रहै।
अपधर्म छूटैं, स्वत्व निज, भारत गहै, कर-दुख बहै॥
बुध तजहि मत्सर नारि-नर सम होंहि जग आनँद लहै।
तजि ग्राम्य कविता, सुकविजन की अमृतबानी सब कहै॥

अच्छे-अच्छे लेखक इसमें लेख दिया करते थे। पंडित राधाचरण गोस्वामी, लाला श्रीनिवासदास, पंडित बिहारीलाल चौबे, बाबू तोताराम

वर्मा, पं० दामोदर शास्त्री आदि सुलेखक उल्लेखनीय हैं। यह पत्र बाबू हरिश्चन्द्र जी के अंत समय तक अर्थात् सं० १९४२ तक बराबर निकलता रहा। सन् १८६४ में 'बालाबोधनी' पत्रिका निकली। बाबू हरिश्चन्द्र ने हिन्दी को बड़ा परिष्कृत किया। संपादन भी बड़ा सुन्दर करते थे। पत्र-संपादन के साथ-साथ आपका झुकाव नाटकों की ओर हुआ। हिन्दी नाटकों के तो आप जन्मदाता थे। कर्पूर मंजरी, सत्यहरिश्चन्द्र और चन्द्रावली नाटक इसी समय रचे गये। ये नाटक हिन्दी-साहित्य के अनमोल रत्न हैं।

रसिक हरिश्चन्द्र ने विद्वानों, कवियों, मित्रों और अनाश्रितों का बड़ा उपकार किया। बहुत बड़ी संपत्ति, अपनी उदारता के प्रवाह में थोड़े ही दिनों में पानी की तरह बहा दी। हरिश्चन्द्र ने सभी ऐहिक भोग भोगे, अनेक दान किये, और जो भी, धन से किया जा सकता है वह सब किया। कुछ भी देते समय उन्हें संकोच या परिताप नहीं हुआ। अंत तक अपने वचन निबाहे।

दृढ़ता और सत्य के तो साक्षात् रूप ही थे। निस्पृह ऐसे कि अपने-हिस्से की समस्त संपत्ति दान कर दी। अंत में, फक्कड़ हो गये, या बादशाहों के भी बादशाह। धन्य।

जो गुन नृप हरिचंद में, जगहित सुनियत कान।
सो सब कवि हरिचंद में, लखहु प्रतच्छ सुजान।।

बाबू हरिश्चन्द्र वल्लभकुल के अनन्य वैष्णव थे। आपका यह पद प्रसिद्ध है :—

हम तो मोल लिये या घर के।
दास-दास श्रीवल्लभ-कुल के, चाकर राधावर के।।
माता श्रीराधिका, पिता हरि, बंधु दास गुनकर के।
'हरीचंद' तुम्हारे ही कहावत नहिं बिधि के, नहिं हर के।।

यह होते हुए भी आप अन्य सम्प्रदायों को संकीर्ण दृष्टि से नहीं देखते थे। पुरानी लकीर के फकीर नहीं थे। आपने वर्तमान प्रचलित कुरीतियों का प्रवल युक्तियों से खंडन किया। सिद्धान्ततः वर्ण-व्यवस्था को मानते हुए भी आप छुआछूत के विषय में लिखते हैं:—

अपरस सोला छूत रचि, भोजन-प्रीति छुड़ाय।
किये तीन-तेरह सबै, चौका चौका-लाय॥

बाबू हरिश्चन्द्र सत्य को ही धर्म का सच्चा रूप मानते थे। अपनी आचरण-सम्बन्धी बुरी-से-बुरी बात भी कभी छिपाई नहीं। कहते हैं:—

जगत-जाल में नित बँध्यौ, परयो नारि के फंद।
मिथ्या अभिमानी, पतित, झूठो 'कवि हरिचंद'॥

समाज-सुधार पर भी कई पुस्तकें लिखीं। 'प्रेम-योगिनी', 'अँगरेज-स्तोत्र', 'जैन कुतूहल', वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' आदि पुस्तकों में सामाजिक कुरीतियों का खूब भंडाफोड़ किया है। लोग इनके स्वतंत्र विचारों पर चिढ़-से गये और कहने लगे—'दो चार कवित्त बनाय लिहिन, बस हो गया बबुआ विधाता!' पर यह आलोचकों की वाक्य-बाणावली की रत्ती भर भी परवाह नहीं करते थे। इनकी दृढ़ता ही थी कि अनेक विघ्न-बाधाएँ आने पर भी कभी अपने सिद्धान्तों से विचलित नहीं हुए।

बाबू हरिश्चंद्र ने लोकोपकार-संबंधी—कई प्रशंसनीय कार्य किये। सन् १८६८ में काशी में "होमियोपैथिक दातव्य-चिकित्सालय" अनाथों के लिए स्थापित कराया। संवत् १९२७ में 'कवितावर्द्धिनी' सभा को जन्म दिया। इस सभा में कई नवीन कवि प्रकट हुए। उर्दू-कवियों के लिए आपने सन् १८६६ में मुशायरा स्थापित किया, जिसमें सबके साथ आप भी उर्दू में समस्या-पूर्ति किया करते थे। उर्दू-कविता आप 'रसा' के नाम से किया करते थे।

संवत् १९३० में "तदीय-समाज" की स्थापना की। इसके ९ नियम रखे गये। इसके सदस्य भारत के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध धार्मिक पुरुष-रत्न थे। इस सभा में विना टिकट के कोई प्रवेश नहीं कर सकता था। टिकट पर यह दोहा अंकित रहता था--

श्री ब्रजराज-समाज के तुम सुन्दर सिरताज।
दीजै टिकट निवाज करि, नाथ हाथ हित-काज॥

इसी समाज में आपने 'वीर वैष्णव' की पदवी धारण की थी। इसमें आपने वैष्णव-धर्मानुसार १६ प्रतिज्ञाएँ ली थीं, जिनका आमरण पालन किया।

यह तो हम कह ही चुके हैं कि बाबू हरिश्चन्द्र गुणियों का बड़ा आदर करते थे। महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी को केवल एक दोहे पर १००) दे दिये थे। दोहा यह है:—

राजघाट पर बँधत पुल, जहँ कुलीन कौ ढेर।
आज गये कल देखिकैं, आजहिं लौटे फेर॥

निर्धन हो जाने पर भी इनकी दानवीरता में कमी नहीं आई। स्वर्गीय बाबू राधाकृष्णदास ने लिखा है, कि "आश्चर्य तो यह है कि न तो मरने के समय बाबू हरिश्चंद्र अपने पास कुछ छोड़ मरे और न कुछ उचित ऋण चुकाये बिना बाकी रह गया।"

बाबू हरिश्चन्द्र को लिखसे का बड़ा व्यसन था। डाक्टर राजेंद्रलाल मित्र ने इनका लेखन-चमत्कार देख कर इन्हें 'राईटिंग मशीन' (लेखनयंत्र) की उपाधि दे रखी थी। कवित्व-शक्ति तो विलक्षण थी ही। बात की बात में समस्यापूर्ति कर दिया करते थे। महाराणा उदयपुर के दरबार में बैठे-बैठे यह समस्या-पूर्ति तुरंत कर दी थी:—

राधा-स्याम सेवैं, सदा वृन्दावन-बास करैं,
रहैं निहचिंत पद आस गुरुबर के।

चाहैं धन-धाम न आराम सों है काम,
'हरिचंद्र' जू भरोसे रहै नंदराय-घर के॥
एरे नीच धनी! हमें तेज तूं दिखावै कहा,
गज परवाहीं नाहिं होंहि कबौं खर के।
होइ लैं रसाल! तू भलेई जग-जीव काज,
आसी ना तिहारे ये निवासी कल्पतरु के॥

'अंधेर-नगरी' नाटिका तो एक दिन में ही लिख डाली थी। यों तो इनके सभी पद्य सरस होते थे। पर सवैया तो बेजोड़ होता था। छोटे-बड़े सब मिलाकर १७५ ग्रंथ लिखे, जिनमें बहुत से संगृहीत और संपादित भी हैं। नाटक, इतिहास, भक्तिरस, चरितावली और काव्यामृत-प्रवाह आदि पाँच भागों में से सब ग्रंथ विभक्त हैं। नाटकों में 'सत्य हरिश्चन्द्र' और 'चन्द्रावली', धर्म सम्बन्धी ग्रंथों में 'तदीयसर्वस्व'; काव्य में 'प्रेम-फुलवारी' इतिहास में 'काश्मीर-कुसुम' और देश-दशा में 'भारत-दुर्दशा' बड़ी उत्कृष्ट रचनाएँ हैं। संगृहीत ग्रंथों में 'सुन्दरी-तिलक' अपूर्व है। कविता ब्रजभाषा में करते थे। खड़ी बोली में भी कुछ कविताएँ लिखी थीं, पर उसमें वैसे सफल नहीं हुए। सिद्धान्त रूप से लिख भी दिया कि खड़ी बोली में मधुर कविता हो नहीं सकती। हिन्दी के अतिरिक्त यह संस्कृत और उर्दू, मारवाड़ी, गुजराती, बंगला, पंजाबी, मराठी, अवधी आदि भाषाओं में भी कविता रचते थे। आपकी असीम और अप्रतिम हिंन्दी-साहित्य-सेवा देखकर देश ने आपको 'भारतेंदु' की पदवी से सन् १८८० में विभूषित किया था।

बाबू हरिश्चन्द्र ने अपनी अनुपम प्रतिभा से काव्य में चार और नवीन रस माने—वात्सल्य, सख्य, भक्ति और आनंद। तर्करत्न महोदय ने भी एक स्थल पर इन रसों को प्रमाणस्वरूप मान कर लिखा है—'हरिश्चन्द्रस्तु वात्सल्यसख्यभक्त्यानंदाख्याधिकं रसचतुष्टयं मन्यते।"

यह तो हम कह ही चुके हैं कि यह साक्षात् 'प्रेममूर्ति' थे। प्रेम ही इनका इष्टदेव था। वियोग-शृंगार की इनकी रचनाएँ अनूठी हैं। 'चंद्रावली'

नाटिका इनके अपने विशिष्ट रस सिद्धान्तों की प्रतिमूर्ति है। वास्तव में यह पुस्तक अपने ढंग की एक ही है।

एक स्थान पर इन्होंने प्रेमियों की उन्मत्तता का चित्र नीचे के सवैये में क्या ही सुन्दर खींचा है :—

हमहूँ सब जानतीं लोक की चालनि, क्यों इतनी बतरावती हौ ?
हित जामें हमारी बनै सो करौं, सखियाँ तुम मेरी कहावती हौ ॥
'हरिचंदजू' यामें न लाभ कछू; हमें बातनि क्यों बहरावती हौ ?
सजनी, मन हाथ हमारे नहीं, तुम कौन को का समुझावती हौ ?

अंतर की पीर अंतर ही जानता है, मर्म समझने वाले संसार में विरले ही हैं, इसे लक्ष्य में रखकर भारतेन्दु लिखते हैं:—

मन की कासों पीर सुनाऊँ ?
बकनो बृथा और पत खोनों सबै, चबाई गाऊँ ॥
कठिन दरद कोऊ नहिं हरिहै, धरिहैं उलटो नाऊँ।
यह तो जो जानै सोइ जानै, क्योंकरि प्रगट जनाऊँ ॥
रोम-रोम प्रति नयन स्रवन मन; केहि धुनि रूप लखाऊँ।
बिना सुजान-सिरोमनि री, किहिं हियरो काढ़ि दिखाऊँ ॥
मरमिन सखिन वियोग दुखिन क्यों, कहि निज दसा रोआऊँ।
'हरीचंद' पिय मिलै तो पग परि, यहि पटुका समझाऊँ ॥

भक्ति-सुधा-सागर में डूब जाने पर भी भारतेंदुजी ने समाज-सुधार, देश-भक्ति आदि विषयों पर उत्तमोत्तम रचनाएँ की हैं : 'भारत-दुर्दशा' नाटक तो करुणा की साक्षात् मूर्ति है। इसे पढ़कर कलेजा काँप उठता है, आँसुओं की झड़ी लग जाती है। कारण यह है कि भारत-भारती ने ऐसा मर्मस्पर्शी हृदयवान् राष्ट्रभाषा-भक्त पुत्र फिर नहीं जना।

प्रेमघनजी की 'आनंदकादंबिनी', प्रतापनारायण का 'ब्राह्मण', बालकृष्ण-भट्ट का 'हिन्दी-प्रदीप', राधाचरण गोस्वामी का 'भारतेन्दु' आदि पत्र-पत्रिकाओं ने अपने रक्त की एक-एक बूंद से राष्ट्रभाषा हिन्दी की जो सेवा की, उन सबका श्रेय भारतेन्दुजी को ही है।

लाला श्रीनिवासदास आपकी प्रेरणा से हिन्दी लिखने लगे। पं० राधाचरण गोस्वामी ने आपको कविता में अपना गुरु माना। पं० प्रतापनारायण मिश्र ने आपको "पूज्यपाद", "हरिश्चन्द्रायनमः" आदि श्रद्धा-भक्तिपूर्ण शब्दों में स्मरण किया। बाबू साहब के स्वर्गस्थ होने पर मिश्रजी ने तो 'हरिश्चन्द्र-संवत्' तक लिखना आरम्भ कर दिया था।

भारतेन्दुजी के स्वभाव में अनेक विलक्षण गुण थे। प्रेमसिन्धु तो हृदय में लहरें मारता ही था, दया, अक्रोध, सहनशीलता, दृढ़ता आदि सद्गुणों ने सोने में सुगंध भर दी थी। सदा हँसमुख रहते थे। व्यवहार सीधा और सच्चा था। अहंकारी के सामने पल भर भी खड़े नहीं होते थे। पर गुणियों की चरण-सेवा करने को भी सदा तैयार रहते थे।

आपने स्वयं अपने स्वभाव का नीचे के कवित्त में वर्णन किया है—

सेवक गुनी जन के चाकर चतुर के हैं,
कविन के मीत, चित हित गुनी ग्यानी के।
सीधेन सों सीधे, महा बाँके हम बाँकेन सों,
'हरीचंद' नगद दमाद अभिमानी के।
चाहिबे[1] की चाह, काहू की न परवाह, नेह—
नेह के दिवाने सदा सूरत निवानी के।
सरबस रसिक के, सुदास-दास प्रेमिन के,
सखा प्यारे कृष्ण के गुलाम राधा रानी के॥

हम भारतेन्दुजी की यहाँ पर केवल उन्हीं थोड़ी-सी कविताओं को उद्धृत कर रहे हैं, जिनका संबंध केवल 'ब्रजमाधुरी' से है:—

दोहा

भरित नेह नवनीर नित, बरसत सुरस अथोर।
जयति अपूरब घन कोऊ, लखि नाचत मन मोर॥१॥*

*इस दोहे में 'मर्यादा महिमा' की रक्षा करते हुए भारतेन्दुजी ने उस 'घन' को प्रकट नहीं किया, जिसे देखकर उनका 'मन-मोर' नाच उठता है।

जेहि लहि फिर कछु लहन[1] की, आस न जिय में होय।
जयति जगत-पावन-करन, 'प्रेम' बरन यह दोय ॥२॥
चंद मिटै, सूरज मिटै, मिटै जगत के नेम।
यह दृढ़ 'श्रीहरिश्चंद्र' कौ, मिटै न अविचल प्रेम ॥३॥*
मोरी मुख घर ओर सों, तोरौ भव के जाल।
छोरौ सब सावन, सुनौ, भजौ एक नँदलाल ॥४॥
श्रीवल्लभ[2] वल्लभ कहौ, छाँड़ि उपाय अनेक।
जानि आपुनो राखिहैं, दीन बंधु की टेक ॥५॥
श्रीजमुना-जल-पान करु, बसु वृन्दावन-धाम।
मुख में महाप्रसाद रखु, लै श्रीवल्लभ-नाम ॥६॥
तन पुलकित रोमांच करि, नैननि नीर बहाव।
प्रेममगन उनमत्त ह्वै, 'राधा-राधा' गाव ॥७॥
सब दीननि की दीनता, सब पापिन कौ पाप।
सिमिटि आइ मोमे रह्यो, यह मन समुझहु आप ॥८॥
प्राननाथ, ब्रजनाथ जू, आरतिहर[3], नँदनंद।
धाइ भुजा[4]-भरि राखिए, डूबत भव 'हरिचंद' ॥९॥
साधुन कौ संग पाइकैं, हरि-जसु गाइ-बजाइ।
नृत्य करत हरि-प्रेम में, ऐसैं जनम बिहाइ ॥१०॥

छप्पय

जय-जय नंदानंदकरन, वृषभानु-मान्यतर।
जयति जसोदा-सुवन कीर्तिदा-कीर्त्ति दानकर ॥
जय श्रीराधा-प्राननाथ, प्रनतारति-भंजन।

'कोऊ' शब्द तो इस मांगलिक दोहे की जान है। अस्तु, 'कोऊ घन' से तात्पर्य आनंदघन श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण से ही है।

१ लेना। २ श्रीवल्लभाचार्य। ३ दुःख हरनेवाले। हृदय से लगाकर।

*यह दोहा श्री हितहरिवंश के निम्नलिखित दोहे का प्रतिबिम्ब-सा समझ पड़ता है। "चंद्र घटै, सूरज घटै, घटै, त्रिगुन-बिस्तार, पै दृढ़ हितहरिबंस कौ, घटै न नित्य-बिहार।"

जय बृन्दावनचंद्र, चंद्रबदनी-मनरंजन।
जय गोपति,[1] गोपति, गोपति, गोपीपति, गोकुल-सरन।
जय कष्ट हरन, करुनाभरन[2], जय श्रीगोबर्धन-धरन॥११॥*

प्रेम फुलवारी

अहो हरि, बस अब बहुत भई।
अपनी दिसि बिलोकि, करुनानिधि, कीजै नाहिं नई[3]॥
जो हमरे दोषन कों देखौ, तौ न निबाह हमारो।
करि कैं सुरत अजामिल, गज की हमरे करम[4] बिसारौ॥
अब नहिं सही जाति कोऊ बिधि, धीर सकल नहिं धारी।
'हरीचंद' को बेगि धाइकैं, भुजभरि लेहु उबारी॥१२॥

पियारे, याकौ नाँव नियाव[5]?
जो तोहि भजै ताहि नहिं भजनो, कीनों भलो बनाव॥
बिनु कछु कियें जान अपुनो जन, दूनो दुख तेहिं देनो।
भली नई यह रीति चलाई, उलटो अवगुण लेनो॥
'हरीचंद' यह भलो 'निबेरयौ[6]', ह्वै अंतरजामी।
चोरनि[7] छाँड़ि छाँड़िकै, डाँटौ, उलटो धन[8] कौ स्वामी॥१३॥

प्यारे, अब तौ सही न जात।
कहा करैं कछु बनि नहिं आवत, निसिदिन जिय पछितात॥
जैसे छोटे पिंजरा में कोउ, पंछी परि तड़िपात।
त्यौंही प्रान परे यह मेरे, छूटन कों अकुलात॥

---

१ (१) गौओं के स्वामी, (२) इन्द्रियों के स्वामी, हृषीकेश। २ करुणा ही जिसका आभरण है, अत्यंत करुणाशील। ३ बात यह कि शरणागत को, बिना भक्ति-दान दिए, सामने से हटा देना। ४ पाप-कर्म। ५ न्याय, इन्साफ। ६ निर्णय किया। ७ यहाँ चोरों से तात्पर्य काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य आदि से है। ८ धन...स्वामी—इन्द्रियों और मन का स्वामी, जीवात्मा।

*यह छप्पय 'श्रीनाथ-स्तुति' से लिया गया है।

कछु न उपाय चलत अति ब्याकुल,मुर मुरि[1] पछरा खात।
'हरीचंद्र' खींचौ[2] अब कोउ विधि, छाड़ि पाँच औसात[3]॥१४॥

भरोसो रीझन ही लखि भारी।
हमहूँ कों बिस्वास होत है, मोहन 'पतित उधारी'।
जो ऐसो सुभाव नहिं होतो क्यों अहीरकुल भायौ[4]।
तजिकैं कौस्तुभ[5]-सो मनि गर क्यों गुञ्जा हार धरायौ।
क्रीट मुकुट सिर छाँड़ि पखौआ[6] मोरन कौ क्यों धार्यौ।
फेंट कसी टेंटिन[7] पै, मेवन कौ क्यों स्वाद बिसार्यौ॥
ऐसी उलटी रीझि देखिकैं, उपजति है जिय आस।
जग निंदित 'हरिचंदहुँ' कों अपनावहिंगे करि दास॥१५॥

सँभारहुँ[8], अपने कों गिरिधारी?
मोर मुकुट सिर-पाग पेंच कसि, राखहु अलक सँवारी।
हिय हलकति[9] बनमाल उठावहु मुरली धरहु उतारी।
चक्रादिकन सान दै राखौ, कंकन फँसन निवारी[10]।
नूपुर लेहु चढ़ाइ किंकिनी, खींचहु करहु तैयारी।
पियरी पट परिकर कटि कसिकैं, बाँधौ हो बनवारी॥
हम नाहीं उनमें जिनकों तुम, सहजहिं दीनों तारी।
बानी जुगवौ[11] नीकैं अब की 'हरीचंद' की बारी॥१६॥*
प्राननाथ, तुमसो मिलिबे की कहु कहु जुगति न कीनी।

---

१ मुड़-मुड़कर, ऐंठ-ऐंठ कर पछाड़ खाते हैं। २ अपने समीप बुला लो। ३ मीन-मेख; संकल्प-विकल्प। ४ पसंद आया। ५ एक मणि जिसे विष्णु भगवान् सदा वक्षस्थल पर धारण किए रहते हैं। यह मणि शंखासुर से प्राप्त हुआ था। ६ पंखा। ७ करील का कड़ुवा फल। यह व्रज प्रांत में बहुत प्रचुरता से होता है। ८ होशियार हो जाओ। ९ लटकती हुई। १० हटाकर, उतारकर। ११ याद करो।

* इस पद में माधुर्य और ओज दोनों ही पर्याप्त मात्रा में हैं।

पचिहारी[1] कछु काम न आई, उलटि सबै बिधि दीनीं॥
हेरि चुकी बहु दूतिन कौ मुख, थाह, सबनि की लीनीं।
तब अब सोचि बिचारि निकारी, जुगति अचूक नवीनीं॥
तन परिहरि, मन दै सुव पद में, लोक त्रिगुनता छीनीं।
'हरीचंद' निधरक बिहरौंगी, अधर-सुधारस-भीनीं[2]॥१७॥

पियारे, क्यों तुम आवत याद?
छूटत सकल काज जग के, सब मिटत भोग के स्वाद॥
जबलौं तुम्हरी याद रहै नहिं, तबलौं हम सब लायक।
तुम्हरी याद होतहीं चित्त में, चुभत लगन के सायक॥
तुम जग के सब कामन के अरि, हम यह निहचै[3] जानैं।
'हरीचंद' तौ क्यों[4] सब तुम्हरे प्रेमहिं जग में सानैं॥१८॥

रहैं क्यों एक म्यान असि[5] दोय।
जिन नैनन में हरि-रस छायौ, तिहिं क्यों भावै कोय॥
जा तन-मन में रमि रहे मोहन, तहाँ ग्यान[6] क्यों आवै।
चाहो जितनी बात प्रबोधौ, ह्याँ को, जो पतियावै॥
अमृत खाइ अब देखि इनारुन[7], को मूरख जो भूलै।
'हरीचंद' ब्रज को कदली-बन, काटौ तो फिरि फूलै॥१९॥

फेरहूँ मिलि जैयो एक बार।
इह प्रानिन कौ नाहिं भरोसो, ये हैं चलन-तयार॥

---

१ श्रम करके थक गई। २ छकी हुई। ३ निश्चयपूर्वक। ४ क्यों . . . सानैं—समझ में नहीं आता लोग परमार्थ और व्यवहार को क्यों यों एक साथ सान रहे हैं। कहीं एक म्यान में दो तलवार रह सकती हैं। ५ तलवार। ६ नीरस तार्किक ज्ञानवाद। ७ इन्द्रायण का फल, जो बहुत कड़ुवा होता है। ८ ब्रज . . . फूलै—जैसे केले का पेड़, चाहे जितने बार काटते जाओ, बार-बार फूलता-फलता रहता है, वैसे ही हे उद्धव, तुम चाहे जितनी बार ज्ञान रूपी खड्ग से प्रेम को काटो, वह अंकुरित और प्रफुल्लित होता ही रहेगा।

जो प्रतच्छ इन आइ न विहरौ, प्यारे नन्दकुमार।
तौ दूरहि सों वदन दिखावौ, करौं लाल मनुहार[1]॥
नहिं रहि जाइ बात जिय मेरे, यह निज चित्त विचार॥
'हरीचंद' न्यौतेहु[2] के मिस, व्रज आवौ बिना अबार[3]॥२०॥

भईं सखि, ये अँखियाँ बिगरैल।
बिगरि परीं, मानति नहिं, देखें बिना साँवरो छैल॥
भईं मतवारि, धरति पग डगमग, नहिं सूझति कुल-गैल[4]।
तजिकैं लाज, साज गुरुजन की, हरि की भईं रखैल[5]॥
निज चवाव सुनि औरहु हरखति, करति न कछु मन मैल[6]।
'हरीचंद' सब संग छाँड़िकैं, करहिं रूप की सैल[7] ॥२१॥

पुरानी परी लाल, पहिचान।
अब हमकों काहें कों चीन्हों, प्यारे भये सयान[8]॥
नई प्रीति, नये चाहनवारे, तुमहूँ नये सुजान।
'हरीचंद', पै जायँ कहाँ हम, लालन[9] करहु बखान॥२२॥

सखी, ये अति उरझौ हैं[10] नैन।
उरझि परत सुरझ्यौ नहिं जानत, सोचत-समुझत हैं न॥
कोऊ नहिं बरजै, जो इनकों बनैं मत्त जिमि गैन[11]।
'हरीचंद' इन बैरनि पाछें, भैये लेन-के-दैन[12] ॥२३॥

मरम[13] की पीर न जाने कोय।
कासों कहौं, कौन पुनि मानै, पैठि रहीं घर रोय॥
कोऊ जरनि[14] न जाननिवारी, बे-महरम[15] सब लोय[16]।
अपुनी, कहत, सुनत नहिं मेरी, केहि समझाऊँ सोय॥

---

१ नम्रतापूर्वक विनय। २ निमंत्रण के ही। ३ देर। ४ वंश-मर्यादा। ५ खरीदी हुई; गुलामी। ६ उदास। ७ सैर। ८ अवस्था में बड़े, प्रौढ़ चतुर। ९ प्यारे। १० लगनरूपी, जल में उलझ जानेवाले। ११ गयंद, हाथी। १२ लेना का देना, आफत। १३ अंतर, हृदय। १४ जलन; प्रेम की आग। १५ भेद न जाननेवाले। १६ लोग।

लोक-लाज, कुल की मरजादा, बैठि रही सब खोय।
'हरीचंद' ऐसेहिं निबहैगी, होनी होय सो होय ॥२४॥

रहे यह देखन कों दृग दोय।

गये न प्रान अबौ अँखियाँ ये जीवति निरलज होय ॥
सोई कुंज हरे-हरे देखियत, सोई सुक, पिक, कीर।
सोई सेज परी सूनी ह्वै, बिना मिले बलबीर ॥
वही झरोखा, वही अटारी, वही गली वही साँझ।
वहै नाहिं जो बेनु बजावत; ऐहै गलियन माँझ ॥
ब्रज हूँ वही, वही गौएँ, हैं; वही गोप अरु ग्वाल ॥
बिडरे[1] सब अनाथ-से डोलत व्याकुल बिना गुपाल ॥
नंद-भवन सूनो देखत क्यों गयौ नहीं हिय फाट।
'हरीचंद' उठि बेगहिं धावौ, फेरहु ब्रज की बाट[2] ॥२५॥

बिहरिहैं जग[3]-सिरपै दै पाँव।

एक तुम्हारे ह्वै पियप्यारे, छाँड़ि और सब गाँव[4] ॥
'निंदा करौ बताओ बिगरी, धरौ[5] सबै मिलि नाँव।
'हरीचंद' नहिं कबहूँ, चूकिहैं हम यह अबकौ दाँव[6] ॥२६॥

न जानों गोविन्द कासों रीझैं।

जपसों, तपसों, ग्यान-ध्यान सों, कासों रिसिकरि खीझैं ॥
वेद-पुरान भेद नहिं पायौ, कह्यौ आन[7] की आन।
कह जप-तप कीन्हों गनिका ने, गीध कियौ कह दान ॥

---

१ तीन तेरह, तितर-बितर। २ मार्ग। ३ जग...पाँव—संसारी दुष्टों को नीचा दिखाकर। ४ स्थान, लोक। ५ धरौ...नाँव—बदनाम करो। ६ सुअवसर। ७ कुछ-का-कुछ, परस्पर विरोधी सिद्धांतों का प्रतिपादन।

*यह पद भावोत्कृष्टता और तन्मयता का बड़ा सुन्दर उदाहरण है।

नेमी ग्यानी दूर होत हैं, नहिं पावत कहुँ ठाम।
ढीठ लोक-बेदहुँ तें निंदित, घुसि घुसि करत कलाम॥
कहुँ उलटी कहुँ सीधी चालैं, कहुँ दोउन तें न्यारी।
'हरीचंद' काहू नहिं जान्यौ, मन[1] की रीति निकारी॥२७॥

लाल के रंग रंगी तू प्यारी।
याही तें तन धारत मिसकैं, सदा कुसुंभी[2] सारी॥
लाल अधर, कर पद सब तेरे, लाल तिलक सिर धारी।
नैननहूँ में डोरन के मिस, झलकत लालबिहारी॥
तन में रही नहीं सुधि तन की[3], नख सिख तू गिरिधारी।
'हरीचंद' जगविदित भई यह, प्रेम-प्रतीत तिहारी॥२८॥

टरौ इन अँखियनि सों अब नाहिं।
निबसौ सदा, सोहागिन राधा, पुतरी-सी दृग माहिं॥
नील निचोल[4], तरकुली[5] काननि सिर सिंदूर मुख पान।
काजर नैन, सहजही भोरी[6], मन-मोहिनि मुसुकान॥
सदा राज राजौ वृन्दावन, सुबस[7] बसौ ब्रज-देस।
बरसौ प्रेम-अमृत प्रेमिन पै, नितहिं स्यामघन-भेस॥
देखि यहै अब दूजो देखन परे न जबलौं प्रान।
'हरीचंद' निबहौ स्वाँसा[8] लगि, यहै प्रेम की बान॥२९॥

राधे, तुव सुहाग की छाया, जग में भयौ सुहाग।
तेरी ही अनुराग-छटा हरि, सृष्टि करन अनुराग॥
सत चित्त तुव कृत सों बिलगाने[9], लीला प्रिय जन भाग।
पुनि 'हरिचंद' अनंत होत लहिं, तुव पदु-पदुम पराग॥३०॥

---

१ मन...निकारी—मनमानी घरजानी करने लगे—"परम स्वतंत्र न सिर पर कोई। भावै तुमहिं करौ जो सोई।" २ लाल रंग। ३ जरा भी। ४ वस्त्र। ५ तरौना। ६ भोली-भाली। ७ सुखपूर्वक। ८ प्राण रहते। ९ पृथक् रूप हो गए। यथा, "एकोऽहम् बहुस्याम्।"

प्रीति की रीति ही अति न्यारी[1]।
लोक-वेद सबसों कछु उलटी[2], केवल प्रेमिन प्यारी॥
को जानै, समझै को याकौं, बिरली जाननहारी।
'हरिचंद' अनुभव ही लखिए, जामैं गिरिवरधारी॥३१॥

रे मन, करु नित-नित यह ध्यान।
सुंदर रूप गौर स्यामल छवि, जो नहिं होति बखान॥
मुकुट सीस चन्द्रिका बनी, कनफूल[3] सुकुंडल कान।
कटि काछिनि, सारी पग नूपुर बिछिया, अनवट[4] पान॥
कर कंचन, चूरो दोउ भुज पै, बाजू सोभा देत।
केसर खौर, बिन्दु सेंदुर कौ, देखत मन हरि लेत॥
मुख पै अलक, पीठ पै बेनी, नागिन सी लहरात।
चटकीले पट निषट मनोहर, नील-पीत फहरात॥
मधुर-मधुर अधरन बंसी-धुनि, तैसीहीं मुसकानि।
दोउ नैनन रसभीनी चितवनि, परम दया की खानि॥
ऐसो अद्भुत भेष बिलोकत, चकित होत सब आय।
'हरीचंद' विनु जुगुल-कृपा यह, लख्यौ कौन पै जाय॥३२॥

प्रेम-अलाप

नखरा राह[5]-राह कौ नीको।
इत तौ प्रान जात हैं तुम बिनु, तुम न लखत दुख जीकौ॥
धावहु बेगि नाथ करुना करि, करहु मान गति फीकौ।
'हरीचंद' अठलानिपने[6] कौ, दियौ तुमहिं बिधि टीकौ॥३३॥

नाथ, तुम अपनी ओर निहारौ।
हमरी ओर न देखहु प्यारे, निज गुन-गननि विचारौ॥

---

१ निरालो। २ अलग ही। ३ कानों में पहनने का पुष्पाकृति आभूषण। ४ अनौटा, पैरों में पहनने का आभूषण। ५ जहाँ तक उचित हो। ६ घमंड, गुमान।

जो लखते अबलौं जन-औगुन, अपने गुन बिसराई।
तौ तरते किमि अजामेल-से पापी, देहु बताई॥
अबलौं तौ कबहूँ नहिं देखे, जन के औगुन प्यारे।
तौ अब नाथ, नई[1] क्यों ठानत, भाखेहुँ बार हमारे॥
तुव गुन छिमा दया सों मेरे, अघ नहिं बड़े कन्हाई।
तासों तारि देहु नंदनंदन, 'हरीचंद' कों धाई॥३४॥

अहो! इन झूठन मोहि भुलायो।
कबहुँ जगत के, कबहुँ स्वर्ग के, स्वादनि मोंहि ललचायो।
भले होइ किन लोह हेम की, पुन्य पाप दोउ बेरी।
लोभमूल परमारथ स्वारथ, नामहिं में कछु फेरी॥
इनमें भूलि कृपानिधि तुम्हरे चरन-कमल बिसराये।
तुम बिनु भटकत फिरयौ जगत में, नाहक जनम गँवाये॥
हाय-हाय करि मोह छाँड़िकै, कबहु न धीरज धारयौ।
या जग जगती जोर अगिनि में, आयसु-दिन सब जारयौ॥
करहु कृपा करुनानिधि केसव, जग कौ जाल छुड़ाई।
दीन-हीन 'हरिचंद' दास कों बेगि लेहु अपनाई॥३५॥

हमहूँ कबहूँ सुख सों रहते।
छाँड़ि जाल सब, निसि-दिन-मुख सों, केवल कृष्णहिं कहते॥
सदा मगन लीला-अनुभव में, दृग दोउ अविचल बहते।
'हरीचंद' घनस्याम-बिरह इक, जग-दुख तृन-सम दहते॥३६॥

करुनाकर करुना करि, बेगहिं सुधि लीजिए।
सहि न सकत जगत-दाव[2], तुरत दया कीजिए॥
हमरे अवगुनहिं नाथ, सपनहुँ जिनि देखौ।
अपुनी दिसि प्राणनाथ, प्यारे, अवरेखौ॥
हमतौं सब भाँति हीन, कुटिल क्रूर कामी।

---

१ नई...ठानत—नई रीति क्यों निकाल रहे हो? २ दावानल।

करत रहत धनजन[१] के चरन की गुलामी ॥
महा-पाप-पुष्ट दुष्ट, धरमहिं नहिं जानें।
साधन नहिं करत, एक तुमहिं सरन[२] मानें ॥
जैसे हैं तैसे तुव, तुमहीं गति प्यारे।
कोऊ बिधि राखि ले, हम तौ अब हारे ॥
द्रुपदसुता, अजामिल, गज की सुधि कीजै।
दीन जानि 'हरीचंद' बाँह पकरि लीजै ॥३७॥

तुम बिन प्यारे, कहुँ सुख नाहीं।
भटक्यौ बहुत स्वाद-रस-लंपट, ठौर-ठौर जब माहीं ॥
प्रथम चाव करि बहुत पियारे, जाइ जहाँ ललचाने।
तहँ तें फिरि ऐसौ जिय उचटत[३] आवत उलटि ठिकाने ॥
जित देखौं तित स्वारथ ही की, निरस पुरानी बातैं।
अतिहिं मलिन व्यवहार देखिकैं, घिन आवत है तातैं ॥
हीरा जेहि समुझत सो निकरत, काँचो काँच पियारे।
'या[४] व्यवहार नफा पाछें' पछितानौं कहत पुकारे ॥
सुंदर, चतुर, रसिक अरु नेही, जानि प्रेम जित कीनों।
तित स्वारथ अरु कारो-चित हम, भलैं सबहिं लख लीनों ॥
सब गुन होयँ जु पै, तुम नाहीं—तौ बिनु लौन रसोई।
ताही सों "'जहाज[५]-पच्छी" सम, गयौ अहो! मन होई ॥
अपने और पराये सबहीं, जदपि नेह अति लावैं।

---

१ धनवान्। २ शरण, शरण में आने योग्य। ३ हट जाता है। ४ या....पछितानौ—इस व्यवहार में पीछे पछताना ही नफा है। ५ जहाज...होई—जैसे जहाज पर का पक्षी इधर-उधर उड़कर जहाज पर ही बार-बार आ बैठता है, उसी प्रकार यह जीव संसारी झंझटों में फँसा हुआ फिर फिर परमात्मा ही की शरण में आता है। सूरदासजी भी कहते हैं: 'जैसे उड़ि जहाज कौ पंछी, पुनि जहाज पै आवै'।

पै तिन सों संतोष होत नहिं, बहु अचरज जिय आवैं॥
जानत भलैं तुम्हारे बिनु सब, बादहिं[1] बीतत साँस।
'हरीचंद' नहिं छूटति तऊ यह, कठिन मोह की फाँस॥३८॥

जा पै श्रीबल्लभ-सुतहिं[2] न जान्यौ।
कहा भयौ साधन अनेक में परिकैं, बृथा भुलान्यौ॥
बादि[3] रसिकता अरु चतुराई, जो यह जीउ[4] न आन्यौ।
मरचौ बृथा विषय-रस-लंपट, कठिन करम है सान्यौ॥
सोइ पुनीत प्रीति जेंहि इनसों, बृथा बेद मथि छान्यौ।
'हरीचंद' श्रीविट्ठल बिनु सब, जगत झूठ करि मान्यौ॥३९॥

प्यारे, मोहि परखिए नाहीं।
हम न परिच्छा-जोग तुम्हारे, समझहु यह मनमाहीं॥
पापहि सो उपज्यौ पापहि में, सिगरो जनम सिरान्यो।
तब सनमुख सो न्याय-तुला पै, कैसेकैं ठहरान्यो॥
दयानिधान, भक्त-वत्सल, करुनामय; भवभयहारी।
देखि दुखी 'हरिचंदहिं' कर गहि, बेगहिं लेहु उबारी॥४०॥

वेणु-गीत

सोरठा

धनि ये मुनि बृन्दावन-वासी।
दरसन हेतु बिहंगम[5] ह्वै रहे, मूरति मधुर उपासी॥
नव कोमल दल पल्लव-द्रुम पै, मिलि बैठत हैं आई॥
नैननि मूँदि त्यागि कोलाहल, सुनहिं बेनु-धुनि माई[6]॥
प्राननाथ के मुख की बानी, करहिं अमृत-रस पान॥

---

१ व्यर्थ हो। २ वल्लभाचार्य के पुत्र श्रीगोसाईं विट्ठलनाथ जी। ३ व्यर्थ। ४ मन में। ५ पक्षी; वैष्णवोचित भावुकता कहती है कि ब्रज के पशु-पक्षी आदि सब ऋषि-मुनि थे निकुंज-बिहार देखने के लिए ही उन्होंने यह रूप धारण किया था। ६ 'माई' शब्द यहाँ सखी के संबोधन के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

'हरीचंद' हमकों सोउ दुरलभ, यह विधि की गति आन ।।४१।।

सोरठा

सखी, यह अति अचरज की बात।
गोप सखा अरु गोगन लै जब, राम[1]-कृष्ण बन जात ।।
बेनु बजावत मधुर सुर सों, सुनिकै ता धुनि कान ।।
भूलि जात जग में सबकी गति, सुनत अपूरब तान ।।
वृच्छन को रोमांच होत है, यह अचरज अति जान।
थावर[2] होइ जात हैं जंगम, जंगम थावर मान ।।
गोबंधन[3] कंधन पै धारे, फेंटा[4] झुकि रह्यौ माथ।
मत्त भृंगजुत है बनमाला, फूलछरी पुनि हाथ ।।
बेन बजावत गीतन गावत, आवत बालक संग।
'हरीचंद' ऐसी छबि निरखत, बाढ़त अंग अनंग ।।४२।।

होली

धनाश्री

मनमोहन चतुर सुजान, छबील हो प्यारे।
तुम बिनु अति ब्याकुल रहैं, सब ब्रज के जीवन-प्रान ।।
तुम्हरे हित नँदलाड़िले हो, छाँड़ि सकल धन-धाम।
बन-बन में ब्याकुल फिरैं, हो सुन्दर ब्रज की बाम ।।
तनिक बाँस की बाँसुरी हो, लेत जबै तुम हाथ।
ब्याकुल धावैं देवबधू तजि अपने पति को साथ ।।
सुर-नर-मुनि-मन-मोहिनी, हो मोहन तुम्हरी तान।
जमुनाजू बहिबो तजैं; थकि टरत न देव-बिमान ।।
जड़ चेतन होइ जात हैं, हो चेतन जड़ होइ जात।

---

१ श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलभद्रजी। २ जड़; गोसाइँ तुलसीदासजी कहते हैं: "जो न जनम जग होत भरत को। अचर सचर चर अचर करत को।" ३ गाय बाँधने की रस्सी। ४ साफा।

इन सब की यह दसा तौ, अबलन की कह बात॥
उठि धावैं ब्रजनागरी हो, सुनि मुरली की टेर।
लाज-संक मानैं नहीं हो, रहत स्याम को घेर॥
मगन भईं सब रूप में हो, गोकुल गाँव बिसारि।
'हरीचंद' जन वारने[1] हो, धन्य-धन्य ब्रजनारि॥४३॥

हम चाकर राधारानी के।
ठाकुर श्रीनँदनंदन के, वृषभानु-लली ठकुरानी के॥
निरभय रहत, बदत नहिं काहू, डर नहिं डरत भवानी के।
'हरीचंद' नित रहत दिवाने, सूरत अजब दिवानी[2] के॥४४॥

सिन्दुर

भौंरा रे, रस के लोभी तेरो का परमान[3]?
तू रस-मस्त फिरत फूलन पर, करि अपने सुख-गान॥
इत सों उत डोलत बौरानो, किये मधुर मधु-पान।
'हरीचंद' तेरे फंद न भूलूं, बात परी पहिचान॥४५॥

लावनी

पिय प्राननाथ! मनमोहन! सुंदर प्यारे।
छिन हूँ मत मेरे होहु दृगन सों न्यारे॥
घनस्याम, गोप-गोपीपति, गोकुलराई।
बृन्दाबन-रच्छक, ब्रज-सरबस, बलभाई॥
प्रानहुँ ते प्यारे! प्रियतम, मीत कन्हाई।

श्रीराधा - नायक जसुदा - नंद दुलारे।
छिनहूँ मत मेरे होहु दृगन ते न्यारे॥

---

१ निछावर हैं। २ अनुपम सुन्दर। ३ प्रमाण बिश्वास।

तुव दरसन बिनु तन-रोम-रोम दुख-पागैं[1]।
तुवसुमिरन बिनु यह जीवन विष-सम लागैं॥
मम दुख-जीवन के तुम हौ इक रखवारे।
छिनहूँ मत मेरे होहु दृगन सों न्यारे॥
तुमहीं मम जीवन के अवलंब कन्हाई।
तुम बिनु सबकै सुख-साज परम दुखदाई॥
तुव देखें हीं सुख होत, न और उपाई।
तुम्हरे बिनु सब जग सूनो[2] परत लखाई॥
हे जीवनधन, मेरे नैनन के तारे।
छिनहूँ मत मेरे होहु दृगन सों न्यारे॥
तुम्हरे बिनु इक छिन कोटि-कलप सम भारी।
तुम्हरे बिनु सरगहुँ महानरक दुखकारी॥
तुम्हरे संग बनहूँ घर सों बढ़ि, बनवारी।
हमरे तौ सब कछु तुमही हो गिरधारी॥
'हरिचंद' हमारौ राखौ मान दुलारे।
छिनहूँ मत मेरे हो दृगन तें न्यारे॥४६॥

चन्द्रावली

पद

सखी, ये नैना बहुत बुरे।
तबसों भये पराये, हरि सों जबतें जाइ जुरे[3]॥
मोहन के रस-बस ह्वै डोलत, तलफत तनिक दुरे।
मेरी सीख प्रीति सब छाँड़ी, ऐसे ये निगुरे[4]।

---

१ लीन हो जाती हैं, सन जाती हैं। २ नीरस, फीका। ३ जुड़े, लगे। ४ बिना गुरु के, बिना धर्म-कर्म के, मनमुखी।

जग खीझ्यौ बरज्यौ पै ये नहिं, हठ सों तनिक मुरे।
अमृत-भरे देखत कमलन से, विष के बुते छुरे॥४७॥

जो पै ऐसेहि करन रही।
तो फिर क्यों अपने मुख सों तुम, लस की बात कही॥
हम जानी ऐसेहि बीतैगी जैसी बीति रही।
सो उलटी कीनीं विधिना ने, कछू नाहिं निबही॥
हमें बिसारि अनत रहे मोहन औरै चाल गही।
'हरीचंद' कह-कौ-कह ह्वै गयो, कछु नहिं जाति कही॥४८॥

जोगिन प्रेम की आई।
बड़े-बड़े नैन छुए काननि लौं, चितवनि मद-अलसाई॥
पूरी प्रीति-रीति-रससानी, प्रेमीजन-मन भाई।
नेह-नगर में अलख[1] जगावति, गावति बिरह-बधाई॥४९॥

जोगिन-मुख पर लट लटकाई।
कारी घूँघरवारी प्यारी, देखत सब मनभाई॥
छूटे केस गुरुआ बागो,[2] भा दुगन बढ़ाई।
साँचे ढरी प्रेम की मूरति, अँखियाँ निरखि सिराईं॥५०॥

प्रेम-माधुरी

सवैया

ब्रजवासी बियोगिनि के घर में, जग छाँड़िकै क्यो जनमाईं हमैं।

---

१ अलक्ष्य, अव्यक्त; परमात्मा। योगियों का भिक्षा मांगते समय का शब्द विशेष। २ लंबा ढीला कुरता।

मिलिबो बड़ी दूर रह्यौ 'हरिचंद', दई इक नाम[१] धराईं हमैं॥
जग के सिगरे सुख सों ठगिकैं, सहिबे कों यही है जिवाई हमैं।
केहि बैर सों हाय दई बिधिना, दुख देखिबे ही को बनाई हमैं॥५१॥
रोकहिं जो, तो अमंगल होय, औ प्रेम नसै जो कहैं 'पिय जाइए।'
जो कहैं 'जाहु न'—तौ प्रभुता,[२] जो कछू न कहैं, तौ सनेह नसाइए॥
जो 'हरिचंद' कहैं 'तुम्हरे बिन, जी हैं न'—तौ यह क्यों पतियाइए[३]।
तासों पयान-समै तुमतें हम, का कहैं प्यारे, हमें समुझाइए॥५२॥*
व्याकुल हो तड़पौं बिनु प्रीतम, कोई तौ नैकु दया उर लावौ॥
प्यासी तजौं तनु रूप-सुधा बिनु, पानिय[४] पी-कौ पपीहे पिआवौ॥
जीय में हौंस कहूँ रहि जाय न, हा! 'हरिचंद' कोऊ उठि धावौ।
आवै-न-आवै पियारो, अरे! कोउ हाल तौ जाइकैं मेरो सुनावौ॥५३॥
दीनदयाल कहाइकैं धाइकैं,[५] दीननि सों क्यों सनेह बढ़ायौ।
त्यों 'हरिचंद जू', बेदनि में करुनानिधि, नाम कहौ क्यों गनायौ॥
ऐसी रुखाई न चाहिए तापै, कृपा करिकै जेहिंकौं अपनायौ।
ऐसी ही जोपै सुभाव रह्यौ, तो 'गरीब-नेवाज' क्यों नाम धरायौ॥५४॥
यह संग में लागियै डोलैं सदा, बिन देखैं न धीरज आनती हैं।
छिनहूँ जो वियोग परै 'हरिचंद' तौ चाल[६] प्रलै की सु ठानती हैं॥
बरुनी में फिरैं न झपैं[७] उझपैं,[८] पल में न समाइबो जानती हैं।
पिय प्यारे, तिहारे निहारे बिना, अँखियां दुखियां नहिं मानती हैं॥५५॥
व्यापक ब्रह्म सबै थल पूरन[९] हैं हमहूँ पहिचानती हैं।
पै बिना नँदलाल बिहाल सदा 'हरिचंद' न ग्यानहिं ठानती हैं॥

---

१ बदनामी। २ अभिमान, प्रेमगर्व। ३ विश्वास करेंगे। ४ पानी, रूप-माधुरी का रस। ५ दोनों पर कष्ट पड़ने के समय उनकी रक्षा करने के लिए दौड़-दौड़कर। ६ चाल...ठानती हैं—प्रलयकाल के मेघों के समान आँसुओं की वर्षा करने लगती हैं। ७ बन्द होती हैं, नींद आती है। ८ खुल-खुल पड़ती हैं। ९ व्याप्त।

*इस सवैया का भाव बड़ा ही अनूठा है।

तुम ऊधौ ! यहै कहियौ उनसों हम ओर कछू नहिं जानती हैं।
पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना अँखियां दुखियाँ नहिं मानती हैं॥५६॥
सब आस तो छटीं पिया-मिलिवे की न जाने मनोरथ कौन सजैं।
'हरिचंदजू' दुःख अनेक सहैं पै अड़े हैं टरैं न कहूँ को भजैं[1]॥
सब सो निरसंक[2] ह्वै बैठि रहैं, सो निरादर हूँ सो कछू न लजैं।
नहिं जानि परैं, कछु या तन कों, केहि मोह तें पापी न प्रान तजैं॥५७॥
हाय ! दसा यह कासों कहों, कोउ नाहिं सुनै जो करै हूँ निहोरन[3]।
कोउ बचावनहारो नहीं 'हरिचंदजू' यों तो हितू हैं करोरन॥
सो सुधि[4] कै गिरिधारन की, अब धाइकै दूरि करो इन चोरन।
प्यारे, तिहारे निवास की ठौर कों, बोरत हैं अँसुवां बर-जोरन॥५८॥
केहि पाप सों पापी न प्रान चलैं, अटके कित कौन विचार लयौ।
नहिं जानि परैं 'हरिचंद' कछू, बिधि ने हम सो हठ कौन ठयौ॥
निसि आजहु की गई हाय ! बिहाय[5], बिना पिय कैसे न जीव गयौ।
हतभागिनि आँखिन सों नित के, दुख देखिबे को फिर भोर भयौ॥५९॥
जानत ही नहिं हौं जग में, किहिकों सबरे मिलि भाखत हैं सुख।
चौंकत चैन को नाम सुनैं, सपनेहुँ न जानत भोगन कौ रुख[6]॥
ऐसेन सों 'हरिचंदजू' दूरहिं बैठनों, का लखनो न भलो मुख।
मो दुखिया के न पास रहौ, उड़िकै न लगै तुमहूँ को कहूँ दुख॥६०॥*
वह सुन्दर रूप बिलोकि सखी मन हाथ तें मेरे भग्यौ सो भग्यौ॥
चित माधुरी मूरति देखत हौं, 'हरिचंदजू' जाय पग्यौ सो पग्यौ॥
मोहि औरन सों कछु काम नहीं, अब तौ जो कलंक लग्यौ सो लग्यौ।
रँग दूसरो और चढ़ैगो नहीं, अलि, साँवरो रंग रंग्यो सो रंग्यौ॥६१॥

---

१ भागते हैं। २ निडर। ३ सिफारिस। ४ सुधि...गिरिधारन—मूसलधार पानी ब्रज बचाने के लिए गोवर्धन पर्वत उठा लेने की याद। ५ बीत गई। ६ रुचि। ७ श्रीकृष्ण-प्रेम।

*वाह ! दुःख भी एक छूत का रोग बना दिया गया।

धिक देह औ गेह सबै सजनी, जिहिके बस नेह को टूटनो है।
उन प्रानपियारे बिना इहि जीवहिं राखि कहा सुख लूटनो है।।
'हरिचंदजू' बात ठनी-सो-ठनी, नित के कलकानि[1] तें छूटनो है।
तजि और उपाय अनेक अरी ! अब तौ हमको विष घूँटनो[2] है।।६२।।

कवित्त

बाज्यौ कर बंसी-धुनि बाजि-बाजि स्रवननि,
जोराजोरी[3] मुख-छबि चितहि चुराये लेति।
हँसनि हँसावनि जगत सों तिहारी मुरि,
मुरनि[4] पियारी मन सब सों मुराये[5] लेति।।
'हरिचंद' बोलनि, चलनि, बतरानि पीत—
पट-फहरानि मिली धीरज मिटाये लेति।
जुलफैं तिहारी लाज-कुलफन[6] तोरैं, प्रान—
प्यारे नैन-सैन प्रान संग हीं लगाये लेति।।६३।।

बोल्यौ करै नूपुर स्रौननि के निकट सदा,
पदतल माँहि मन मेरे बिहस्यौ करै।
बाज्यौ करै बंसी-धुनि पूरि रोम-रोम, मुख
मन मुसकानि मंद मनहि हरयौ करै।।
'हरिचंद' चलनि, मुरनि, बतरानि चित,
छाई रहै छबि जग दृगनि भरयौ करै।
प्रानहूँ तें प्यारो रहै प्यारो तू सदाई, प्यारे,
पीत-पट सदा हिय बीच फहरयौ करै।।६४।।

घेरि-घेरि घन आय छाय रहे चहुँ ओर,
कौन हेत प्राननाथ सुरति बिसारी है।
दामिनी-दमक जैसी—जुगनू-चमक तैसी,

---

१ कलह, प्रपंच। २ पीना है। ३ जबरदस्ती। ४ मोड़। ५ हटाये लेती हैं। ६ लज्जारूपी तालों को।

नभ में बिसाल बग-पंगति सँवारी है॥
एसे समैं 'हरिचंद' धीर न धरत नैंकु,
बिरह-बिथा तें होति व्याकुल पियारी है।
प्रीतम पियारे नन्दलाल बिन हाय! यह,
सावन[1] की रात किधौं द्रोपदी की सारी है॥६५॥

फूली-सी, भ्रमी-सी चौंकि, जकी-सी, थकी-सी गोपी,
दुख-सी रहति कछु नाहीं सुधि गेह की।
मोही-सी, लुभाई, कछु मोदक[2]-सो खायें सदा,
बिसरी-सी रहै नैंकु खबर न गेह की॥
रिसभरी रहै, कवौं फूली न समाती अंग,
हँसी-हँसी कहै बात अधिक उमेह[3] की।
पूछे तें खिसानी[4] होय, उतर न आवै ताहि,
जानी हम जानी है निसानी या सनेह की॥६६॥*

आइकै जगत-बीच काहू सों न करै बैर,
कोऊ कछु काम करे इच्छा जोन जोई की।
ब्राह्मन की छत्रिन की, वैसनि[5] की, सूद्रनि की,
अंत्यज मलेच्छ की, न ग्वाल की न भोई की।
भले की, बुरे की, 'हरिचंद'—से पतित[6] हूँ की,

---

१ सावन...सारी है—प्रियतम के विरह में सावन मास की रात इतनी लंबी जान पड़ती है, जैसे द्रौपदी की साड़ी। २ मनही-मन प्रसन्न। ३ उमंग। ४ क्रुद्ध। ५ वैश्यों की। ६ आचार-विचार से पतित।

प्रेमासक्ति के जितने भी कुछ लक्षण हो सकते हैं, वे सबके सब इस कविता में रख दिए गए हैं।

थोरे की, बहुत की, न एक की न दोई की।
चाहे जो चुनिंदा[1] भयो जग बीचि मेरे मन,
तौ न तूं कबहूँ निंदा करु कोई की ॥६७॥

थाकी गति अंगन की, मति परि गई मन्द,
सूखि झाँझरी-सी ह्वैके देह लागी पियरान[2]।
बावरी-सी बुद्धि भई, हँसी काहूँ छीनि लई,
सुख के समाज जित-तित लागे दूरि जान।
'हरीचंद' रावरे विरह जग दुख भयो,
भयो कछु और होनहार लागे दिखरान।
नैन कुम्हिलान लागे, बैनहूँ अथान[3] लागे,
आवौ प्राननाथ, अब प्रान लागै मुरझान ॥६८॥

सुन्दर सचिक्कन सुढार स्याम सोहैं महा,
कोटि लावन्य-धाम लटक निज अंग की।
कोमल चरन कौंल[4] नटवर ढोर[5] मोर,
पोर-पोर छोरै छबि कोटिन अनंग की॥
बंक गति लंक तें[6] सुअंक लौं तिरीछे ठाढ़े,
मृदु कर कीन्हें मुद्रा बेनु के प्रसंग की।
कुण्डल स्रवन सीस चन्द्रिका नमन[7] जै जै,
राधिका रमन लाल, ललित त्रिभंग[8] की ॥६९॥

---

१ सर्वश्रेष्ठ। २ पीली पड़ने लगी। ३ अस्त होने लगे, बंद होने लगे। ४ कमल। ५ अदा, छटा। ६ कटि। ७ झुकाव। ८ तीन ओर से टेढ़े खड़े हुए; एक पैर को दूसरे पैर पर रखे, कमर झुकाए तथा मुरली बजाते हुए बाँके-बिहारी श्रीकृष्ण।

पूरन सुकृत-फल श्रीभट[1] गुपालजू के,
भक्त महीपालजू के संकट समनजू।
दौरे गजराज-काज लाज राखी द्रोपदी की,
धारयौ गिरिराज[2] देव-मद के दमनजू॥
निज दासी दीनदुख हरन चरन चारु,
सुख के करन सदा संपदा-भमनजू[3]।
मुरली - लकुटवारे, चन्द्रिका - मुकुटावरे,
दुरित[4] हमारे दरौ[5] राधिका-रमनजू॥७०॥

दोहा

प्रकट प्रेम-पद्धति कही, लही कृपा-अनुसार।
आनँदघन उनयौ सदा, अद्भुत रस-आगार॥७१॥
प्रेम[6]-परावधि ब्रजबधू, सुनि वंसी-धुनि मन्द[7]।
तजतिभई सब सकुच[8] तब, भजति भई ब्रजचंद॥७२॥
आरज-पथ[9] भूलीं भले, बिबस परी तेहि फंद।
ब्रजमोहन मनमोहिनी, पूरन प्रेम अमंद[10]॥७३॥
श्रीपद[11] अंकित ब्रज-मही, छबि न कही कछु जाइ।
क्यों न रमाहू कौ हियो, या सुख कों ललचाइ॥७४॥

---

१ श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी; यह श्रीचैतन्य महाप्रभु के परम कृपापात्र शिष्य थे। नाभाकृत भक्तमाल में इनके विषय में प्रसिद्ध है : सर्वसु राधा-रमनभट्ट गोपाल उजागर' इत्यादि। लिखा है, कि श्रीराधारमणजी का स्वतः प्राकट्य इन्हीं भट्टजी के भक्तिवशात् हुआ था। २ गोवर्द्धन पर्वत। ३ भवन। ४ दुःख। ५ नाश करो। ६ प्रेम. . . ब्रज-गोपिकाएँ प्रेम की परत्परा अवधि है। नारदीय 'भक्तिसूत्रों' में पराभक्ति के उदाहरण में 'यथा ब्रजगोपिकानाम्' लिखा है। 'गोपी प्रेम की धुजा' आदि पदों द्वारा भी यह सिद्ध है। ७ मधुर। ८ शील, लज्जा। ९ आर्योचित कुल-मर्यादा, पातिव्रत धर्म। १० दिव्य। ११ श्रीराधाकृष्ण के चरण।

एक कृपा बल पाइए, मति-गति-रति भरिपूरि।
निकट होति पाछै परै, श्रीपद-पंकज-धूरि॥७५॥
परम-प्रेम गति को लहै मन बुधि थकी बिचारि।
या रस-बस मोहन रसिक, चहत अपुनपौ हारि॥७६॥
अतुल रूप-गुन-माधुरी ; परम अपूरब साज।
गोपी औ गोपाल कौ, अति रसमसो[1] समाज॥७७॥
परम-प्रेम-गुन रूपरस, ब्रज-संपदा अपार।
जय जय जय श्रीगोपिका, जय जय नंद-कुमार॥७८॥

---

१ रसपूर्ण: परमानंदमय।

जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

छप्पय

ब्रजभाषा-लालित्य - मधुप,—साहित्य-गुनाकर।
कृष्ण-प्रेम-रस-लीन मीन कविवर रतनाकर॥
'समालोचनादर्श' 'हरीचंद' 'गंगावतरन'।
रचि, सतसैया-मथन कियौ रसिकनि रस-वितरन॥
ब्रज-रस-प्रवाह पूरन कियौ 'उद्धव-सतक' प्रकासिकैं।
कविदेव-सरिस रचना रची, बानी बिमल बिलासिकैं॥

—वियोगी हरि

ब्रज-साहित्य के अनन्य उपासक कविवर जगन्नाथदास 'रत्नाकर का जन्म संवत् १९२३ में, भादौं सुदी ५, ऋषि-पंचमी के दिन, काशी में हुआ था। कविता का उपनाम इनका 'रत्नाकर' था और इसी नाम से ये अधिक प्रसिद्ध भी थे। इनके पिता का नाम पुरुषोत्तमदास था। ये दिल्लीवाले अग्रवाल वैश्य थे। इनके पूर्वपुरुष सफीदों (सर्पदमन), जिला पानीपत, के रहनेवाले थे। पानीपत के दूसरे युद्ध के बाद वे मुगल बादशाह अकबर के दरबार में आये और मुगल साम्राज्य की अभिवृद्धि के दिनों में भिन्न-भिन्न उच्चपदों पर काम करते रहे। मुगलराज्य के पतन हो जाने पर रत्नाकर जी के परदादा लाला जहाँदारशाह के साथ काशी चले आये और वहीं बस गये।

रत्नाकर जी के पिता पुरुषोत्तमदासजी फारसी के ऊँचे विद्वान् थे, पर हिन्दी कविता पर भी उनकी अडिग श्रद्धा थी। उन्हीं के प्रभाव से रत्नाकरजी के हृदय में कविता-प्रेम अंकुरित हुआ। उनके मकान पर अच्छे-अच्छे कवियों का हमेशा जमघट लगा रहता था; बाहर से आये हुए कविजन सदा उन्हीं के पास ठहरते थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भी उनके मित्र और संबंधी होने के कारण

प्रायः उनके यहाँ जाया करते थे। बालक रत्नाकर इस साहित्य-गोष्ठी में प्रायः बैठते और कभी-कभी कुछ बोल भी उठते थे। इसी प्रकार एक दिन आपकी किसी उक्ति से प्रसन्न होकर भारतेन्दु जी ने कहा, "यह लड़का आगे चलकर कभी अच्छा कवि निकलेगा।" भारतेन्दु की यह भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई। रत्नाकर जी पर उक्त साहित्यिक सत्संग का इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि पहले उर्दू में और फिर हिन्दी में कविता लिखने लगे।

रत्नाकरजी बड़े अध्ययनशील थे। इनकी सारी शिक्षा काशी में ही हुई। सन् १८९१ में द्वितीय भाषा फारसी लेकर इन्होंने बी०ए० की डिग्री प्राप्त की, और एम० ए० की परीक्षा की भी फारसी लेकर तैयारी कर रहे थे, पर कुछ कारणवश परीक्षा दे नहीं सके।

सन् १९०० में रत्नाकरजी की नियुक्ति आवागढ़ स्टेट में हुई। वहाँ का जलवायु इनके स्वास्थ्य के अनुकूल न था। अतः दो वर्ष योग्यतापूर्वक काम कर नौकरी छोड़ ये काशी लौट आये। कुछ समय के अनंतर सन् १९०२ में अनन्य हिन्दी-प्रेमी अयोध्या-नरेश महामहोपाध्याय महाराजा सर प्रतापनारायण सिंह ने रत्नाकरजी को अपना प्राइवेट सेक्रेटरी बना लिया और थोड़े ही दिनों बाद इनकी कार्यकुशलता से प्रसन्न होकर इन्हें चीफ सेक्रेटरी का पद दे दिया। सन् १९०६ के अंत में अयोध्या-नरेश का स्वर्गवास हो जाने पर श्रीमती महारानी जगदंबा देवी ने रत्नाकरजी को अपना प्राइवेट सेक्रेटरी नियुक्त किया। मृत्यु-पर्यन्त वे इसी पद पर रहे।

रत्नाकरजी प्रायः प्राचीनता के उपासक थे। भारतीय संस्कृति के वे पूर्ण समर्थक थे। स्वभाव सरल और हृदय कोमल था। इतने हँसमुख और मिष्ठभाषी थे कि उनकी मंडली में बैठकर हँसी रोकना कठिन हो जाता था। स्मरणशक्ति बड़ी तीव्र थी। व्यायाम के इतने प्रेमी थे कि ६५ वर्ष की अवस्था में भी ४५ वर्ष से अधिक नहीं जँचते थे। वैद्यकशास्त्र में भी इनकी बड़ी रुचि थी।

काशी में नागरी-प्रचारिणी सभा की स्थापना में परम उत्साही रत्नाकरजी का भी हाथ था। 'सरस्वती' के 'प्रारम्भिक प्रकाशन' के अवसर

पर संपादकों में इनका भी नाम आया था। उसी समय के आसपास इन्होंने निम्नलिखित काव्य-ग्रंथ रचे थे, 'हिंडोला', 'हरिश्चन्द्र', 'समालोचनादर्श', 'साहित्य-रत्नाकर', 'घनाक्षरी-नियम-रत्नाकर', 'कलकाशी' और 'अष्टक रत्नाकर'। तदुपरान्त राज-काज के अनेक झंझटों में व्यस्त रहने के कारण रत्नाकरजी ने साहित्यिक क्षेत्र से दीर्घ काल तक अवकाश ग्रहण कर लिया। अपने जीवन के पिछले दस वर्षों में, जब से महारानी जगदंबा देवी के आग्रह से वे पुनः कविता के क्षेत्र में उतरे तब से, उनकी लेखनी नवीन स्फूर्ति के साथ बराबर चलती रही। सच तो यह है कि इन्हीं पिछले दस वर्षों में रत्नाकरजी हिन्दी-साहित्य जगत् में यथार्थ रूप से प्रकट हुए। विक्रम-संवत् १९७८ को मेष संक्रान्ति के पर्व पर महारानी के साथ रत्नाकर जी भी हरिद्वार गए थे। वहीं 'गंगा सप्तमी' की कथा पूछने पर रत्नाकर जी ने वाल्मीकि रामायण में से गंगा-अवतरण की कथा श्रीमती जी को सुनाई। वह वर्णन महारानी को बड़ा रोचक लगा और उन्होंने गंगावतरण काव्य भाषा में रचने के लिए रत्नाकरजी से आग्रह किया। कविता-अभ्यास बहुत दिनों से छूटा होने के कारण रत्नाकरजी को अपनी अभिव्यंजना शक्ति पर कुछ संदेह-सा हुआ पर महारानी की प्रेरणा और प्रोत्साहन से उन्होंने भगवती वीणापाणि का स्मरण किया। रत्नाकरजी की सोई हुई प्रतिभा विलक्षण आवेग के साथ जागृत हुई और सरस्वती ने उनकी साध हृदय से निकालकर इस भाँति पूरी की—

सुमिरत सारदा हुलसि हँसि हंस चढ़ी,
बिधि सौं कहति पुनि सोई धुनि ध्याऊँ मैं।
ताल तुक हीन अंग भंग छबि छीन भई,
कविता विचारी ताहि रुचि रस प्याऊँ मैं।।
नंददास, देव, घनआनँद, बिहारी सम,
सुकवि बनावन की तुम्हें सुधि द्याऊँ मैं।
सुनि 'रत्नाकर' की रचना रसीली नैकु
ढीली परी बीनहिं सुरीली कर ल्याऊँ मैं।।

रत्नाकरजी ने 'गंगावतरण' काव्य की रचना प्रारंभ कर दी, जो संवत् १९८१ में प्रकाशित हुआ। यह काव्य जब अधूरा ही था, तभी इसकी रचना से प्रसन्न होकर अयोध्या की महारानी ने रत्नाकरजी को एक सहस्र का पारितोषिक प्रदान किया। रत्नाकरजी, कविता कविता के लिए करते थे, राजा-रानियों को प्रसन्न करने के लिए नहीं। अतः उन्होंने कविता का पारितोषिक स्वयं लेना उचित न समझा। और महारानी की आज्ञा शिरोधार्य कर उक्त पारितोषिक के रुपये काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा को यह कहकर दे दिया कि इसके व्याज से प्रति तीसरे वर्ष ब्रजभाषा के सर्वोत्तम काव्य-ग्रंथ पर दो सौ रुपये का पारितोषिक दिया जाय। उक्त 'गंगावतरण' काव्य पर इलाहाबाद की 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी' ने भी सन् १९२९ में पाँच सौ रुपये का पुरस्कार प्रदान किया था।

रत्नाकरजी के इस नूतन साहित्य-प्रवेश से ब्रजभाषा का कुछ नया श्रृंगार सज गया। पचीसों कवि-सम्मेलनों के वे सभापति हुए। कानपुर के अखिल भारतीय हिन्दी कवि-सम्मेलन का सभापतिपद भी इन्होंने सुशोभित किया। उस अवसर पर दिया गया इनका भाषण हिन्दी साहित्य की एक सुन्दर कृति है। इनकी साहित्य-सेवा पर मुग्ध होकर हिन्दी संसार ने इन्हें संवत् १९८९ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, कलकत्ता के अधिवेशन का सभापति चुन कर इनका समुचित सम्मान किया।

'रत्नाकरजी' केवल कवि ही न थे। वे अच्छे भाष्यकार, भाषातत्त्वविद् एवं पुरातत्त्वान्वेषी भी थे। प्राकृत का अच्छा अभ्यास होने के कारण शिलालेखों को पढ़ने तथा प्राचीन शोध का कार्य करने में आपकी विशेष रुचि थी। बिहारी की सतसई पर 'बिहारी-रत्नाकर' नामक एक अत्यंत विद्वत्तापूर्ण शुद्ध टीका की। इसके अतिरिक्त चंद्रशेखर के 'हमीर हठ', कृपाराम की 'हितकारिणी' और दूलह कवि के 'कंठाभरण' का भी संपादन किया। 'साहित्य-सुधा-निधि' नामक मासिक पत्र के आप संपादक भी कई वर्षों तक रहे।

रत्नाकर जी की अंतिम रचना 'उद्धव-शतक' नामक मुक्तक काव्य

है, जो संवत् १९८६ में समाप्त हुआ। पिछले कुछ वर्षों से वे 'सूर-सागर' का संपादन-कार्य अत्यन्त शोधपूर्वक कर रहे थे और इसके लिए उन्होंने कई हजार रुपये भी खर्च किये थे। 'सूर-सागर' का लगभग तृतियांश वे समाप्त कर चुके थे, शेष भाग अन्य लब्धप्रतिष्ठि विद्वानों के द्वारा काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा पूरा करा रही है।

हृदय-व्याधि से पीड़ित होने के कारण रत्नाकरजी संवत् १९८९ में हरिद्वार चले गये थे। वहीं अयोध्या-हाउस, विष्णुघाट पर आषाढ़ सोर ७, सं० १८८९ को आपका देहावसान हो गया।

वास्तव में, रत्नाकरजी के निधन के साथ ही भारतेन्दु-काल की अंतिम आभा लुप्त हो गई। ब्रजभाषा के पुराने कवियों की भांति ही रत्नाकरजी को भी राजसी ठाट-बाट नसीब था। कविता पढ़ने का ढंग आपका बड़ा ही ओजस्वी और सुरीला था। इस नीरस युग में भी इनकी कविता घन-आनंद और पद्माकर का स्मरण दिला देती थी। ब्रजभाषा की सरसता तथा विशुद्धता पर आपने विशेष ध्यान दिया। सानुप्रास वर्णों का अधिक प्रयोग करने पर भी रत्नाकरजी की भाषा में एक प्रौढ़ता है और निखरा-पन है, जिससे विदित होता है कि वे ब्रजभाषा को विविध विषयों के अनु-कूल एक परिमार्जित काव्य-भाषा का पद देना चाहते थे। छायावाद की दुर्बोध कविताओं से रत्नाकरजी बहुत घबराते थे। ब्रजभाषा के प्राचीन कवियों में भाषा की जो किंचित् उच्छृंखलता मिलती है वह रत्नाकरजी में नहीं थी; लघु-दीर्घ वर्ण करने की स्वच्छता का उपयोग रत्नाकरजी ने बहुत कम किया है। ओज और प्रसाद गुण इनकी कविता में विशेष रूप से पाए जाते हैं। गंगावतरण काव्य में प्रकृति चिंत्रण बड़ा ही सुन्दर हुआ है। भावों की मौलिकता चाहे अधिक न मिले, पर शैली की मौलिकता रत्नाकरजी की कविता में पर्याप्त मात्रा में पाई जाती है।

'उद्धव-शतक' में रत्नाकरजी ने दिव्य वियोग, शृंगार का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है इनकी कविता में जो ओज, जो लालित्य और जो कुछ रस-प्रवाह अंतर्निहित है, उसके कुछ उदाहरण हम नीचे देते हैं—

उद्धव-शतक

आये भुज-बंध[1] दिये ऊधव-सखा कैं कंध,
डग-मग पाय मग धरत धराये हैं।
कहै 'रत्नाकर' न बूझै कछू बोलत औ,
खोलत न नैन हूँ अचैन चित छाये हैं।।
पाइ बहे कंज में सुगंध राधिका कौ मंजु,
ध्याये कदली-वन मतंग[2] लौ मताये हैं।
कान्ह गये जमुना नहान पै नये सिर सौं,
नीकैं तहाँ नेह की नदी मैं न्हाइ आये हैं ।।१।।
नंद औ जसोमति के प्रेम-पगे पालन की,
लाड़ भरे लालन की लालच लगावती।
कहै 'रत्नाकर' सुधाकर-प्रभा सौं मढ़ी,
मंजु मृगनैननि के गुन-गन गावती।।
जमुना-कछारनि[3] की रंग-रस-रागनि की,
बिपिन-बिहारनि की हौंस[4] हुमसावती[5]।
सुधि ब्रज-बासिन दिवैया सुख-रासनि की,
ऊधौ, नित हमकौं बुलावन कौं आवती ।।२।।
रूप-रस पीवत अघात ना हुते जो तब,
सोई अब आँसु ह्वै उबरि गिरिबौ करैं।
कहै 'रत्नाकर' जुड़ात हुते देखैं जिन्हैं,
याद किएं तिनकौ अँवां[6] सौ घिरिबौ करैं।।

---

१ गल बाँहीं। २ मस्त हाथी। ३ नदी के किनारों की तर और हरी-भरी भूमि। ४ अभिलाषा। ५ उत्तेजित करती हुई। ६ अँवां . . . करै—मिट्टी का बर्तन जैसे आँवे में पकाया जाता है, उसी भाँति अब असह्य दाह हो रही है।

दिननि के फेर सौं भयो है हेर-फेर ऐसौ,
जाकौं हेर-फेरि हेरिवौई हिरिवौ करै।
फिरते हुते जू जिन कुंजनि मैं आठौं जाम,
नैननि मैं अब सोई कुंज फिरिबौ करै॥३॥

मोर के पखौवनि[१] कौ मुकुट छबीलौ छोरि,
क्रीट मनि-मंडित धराइ करिहैं कहा।
कहै 'रत्नाकर' त्यौं माखन-सनेही बिन,
षट-रस व्यंजन चबाइ करिहैं कहा॥
गोपी-ग्वाल बालनि कौं झोंकि बिरहानल मैं,
हरि सुर-बृन्द की बलाइ करिहैं कहा।
प्यारौ नाम गोविंद गुपाल कौ बिहाइ हाय,
ठाकुर त्रिलोक के कहाइ करिहैं कहा॥४॥

सील-सनी सुरुचि सुबात चलैं पूरब[२] की,
औरे ओप[३] उमगी दृगनि मिदुराने[४] तैं।
कहै 'रत्नाकर' अचानक चमक उठी,
उर घनस्याम कैं अधीर अकुलाने तैं॥
आसा दंत दुरदिन दीस्यौ सुर-पुर माँहि,
ब्रज में सुदिन बारि बूंदि हरियाने तैं।
नीर कौ प्रवाह कान्ह-नैननि कैं तीर बह्यो,
धीर बह्यौ ऊधौ-उर-अचल रसाने[५] तैं॥५॥

प्रेम-नेम निफल निवारि उर-अंतर तैं,
ब्रह्म-ग्यान आनंद-निधान भरि लैहैं हम।
कहै 'रत्नाकर' सुधाकर[६]-मुखीनि-ध्यान,

---

१ पक्षी, पंख। २ पुरानी बात, जब श्रीकृष्ण नंद-यशोदा के यहाँ रहते थे। ३ चमक। ४ खुले-मूंदे नेत्र। ५ भींगे हुए। ६ सुधाकर... ध्यान—गोपियों की पवित्र स्मृति।

आँसुनि सौं धोइ जोति जोइ जरि[1] लैहैं हम॥
आवो एक बार धरि गोकुल गली की धूरि;
तब इहि नीति की प्रतीति धरि लैहैं हम।
मन, सौं करेजे सौं, स्रवन-सिर आँखिन सौं,
ऊधव, तिहारी सीख भीख करि लैहैं हम॥६॥
लैकै उपदेस, औ संदेस-पन ऊधौ चले,
सुजस-कमाइबैं उछाह-उद्गार मैं।
कहै 'रत्नाकर' निहार कान्ह कातर पै,
आतुर भये यौं रह्यौ मन न सँभार मैं॥
ग्यान-गठरी की गाँठि छरकि न जान्यौ कब,
हरैं[2] हरैं पूंजी सब सरकि कछार मैं।
डार मैं तमालनि की कछु बिरमानी,[3] अरु,
कछु अरुझानी है करीरनि के झार मैं॥७॥
भेजे मन-भावन[4] के ऊधव के आवन की,
सुधि ब्रज-गावनि मैं पावन जबै लगी।
कहै 'रत्नाकर' गुवालिन की झौरि-झौरि[5],
दौरि-दौरि नंद-पौरि आवन तबै लगीं॥
उझकि-उझकि[6] पद कंजनि के पंजनि पै,
पेखि-पेखि पाती छाती छोहनि छबै लगीं।
हमकौं लिख्यौ है कहा, हमकौं लिख्यौ है कहा;
हमकौं लिख्यौ है कहा कहन सबै लगीं॥८॥
दीन दसा देखि ब्रज-बालनि की ऊधव की,
गरिगो गुमान ग्यान गौरव गुठाने से।
कहै 'रत्नाकर' न आये मुख बैन, नैन,

---

१ जरि लैहैं—ज्योति जला लेंगे। २ धीरे-धीरे। ३ फैल गई। ४ श्रीकृष्ण। ५ झुंड-के-झुंड। ६ उचक-उचक कर।

नीर भरि ल्याये भये सकुचि सिहाने[1]-से ॥
सूखे-से स्रमे-से सकबके[2]-से सके-से थके
भूले-से भ्रमे-से भभरे-से भकुवाने[3]-से।
हौले-से हूले-से हूल-हूले-से हिये मैं हाय,
हारे-से हरे-से रहे हेरत हिराने-से॥९॥

पंच-तत्त्व मैं जो सच्चिदानन्द की सत्ता सो तौ
हम तुम उनमैं समान ही समोई है।
कहै 'रत्नाकर' विभूत पंच-भूत हू की
एक-ही-सी सकल प्रभूतनि[4] मैं पोई है॥
माया के प्रपंच ही सौं भासत प्रभेद सबै
काँच-फलकनि[5] ज्यौं अनेक एक सोई है।
देखौ भ्रम-पटल उघारि ज्ञान-आँखिन सौं
कान्ह सब ही मैं कान्हही मैं सब कोई है॥१०॥

सुनि-सुनि ऊधव की अकह[6] कहानी कान
कोऊ थहरानी, कोउ थानहिं[7] थिरानी हैं।
कहै 'रत्नाकर' रिसानी बररानी कोऊ,
कोऊ बिलखानी, बिकलानी, बिथकानी हैं॥
कोऊ सेद-सानी[8] कोऊ भरि दृग-पानी रहीं
कोऊ घूमि-घूमि परीं भूमि मुरझानी हैं।
कोऊ स्याम-स्याम कै बहकि बिललानी कोऊ
कोमल करेजौ थामि सहमि सुखानी हैं॥११॥

षटरस - व्यंजन तौ रंजन सदा ही करैं
ऊधौ नवनीत हूँ स-प्रीत कहूँ पावैं हैं।

---

१ ललचाये। २ बौरहे। ३ खिसियाये वा घबराये हुए। ४ सब प्राणियों में। ५ दर्पण। ६ अकथनीय। ७ स्थान हो पर। ८ सात्त्विक भाव उदय होने से पसीना आ गया।

कहै 'रतनाकर' बिरद तौ बखानैं सबै
साँची कहौ केते कहि लालन लड़ावैं हैं॥
रतन-सिंहासन बिराज पाकसासन[1] लौं
जग-चहुँ-पासनि तौ सासन चलावैं हैं॥
जाइ जमुना-तट पै कोउ बट-छाँहि माँहि
पाँसुरी[2] उमाँहि कबौं बाँसुरी बजावैं हैं॥१२॥

कान्ह-दूत कैधौं ब्रह्म-दूत ह्वै पधारे आप
धारे प्रन फेरन कौ मति ब्रजबारी की।
कहै 'रतनाकर' पै प्रीति-रीति जानत ना,
ठानत अनीति आनि नीति लै अनारी[3] की॥
मान्यौ हम, कान्ह ब्रह्म एक ही, कह्यौ जो तुम,
तौहूँ हमैं भावति न भावना अन्यारी[4] की॥
जैहै बनि-बिगरी न बारिधिता बारिधि की
बूँदता बिलैहै[5] बूँद बिबस बिचारी की॥१३॥

चिन्ता-मनि मंजुल पँवारि[6] धूरि-धारनि मैं,
काँच-मन-मुकुर सुधारि रखिबौ कहौ।
कहै 'रतनाकर' बियोग-आगि सारन[7] कौं,
ऊधौ, हाय हमकौं बयारि[8] भखबौ कहौ॥
रूप-रस-हीन जाहि निपट निरूपि चुके,
ताकौ रूप ध्याइबौ औ रस चखिबौ कहौ।
एते बड़े बिस्व माँहि हेरैं हूँ न पैयै जाहि,
ताहि त्रिकुटी मैं नैन मूँदि लखिबौ कहौ॥१४॥

आये हौ सिखावन कौं जोग मथुरा तैं तौपै

---

१ इन्द्र। २ पसली। ३ अनाड़ी। ४ एक की भावना अर्थात् ब्रह्म हममें ही है, हमसे पृथक् नहीं है। ५ नष्ट हो जायगी। ६ फेंककर। ७ शीतल करना। ८ प्राणायाम की साधना।

ऊधौ, ये बियोग के वचन बतरावौ ना।
कहै 'रतनाकर' दया करि दरस दीन्यौ,
दुख दरिबै कौं तोपै अधिक बढ़ावौ ना॥
टूक-टूक ह्वै हैं मन-मुकुर हमारो हाय,
चूकि हूँ कठोर बैन-पाहन चलावौ ना।
एक मनमोहन तौ बसिकै उजारयौ मोहिं
हिय मैं अनेक मनमोहन बसावौ ना॥१५॥
नेम-ब्रत-संजम के पींजरैं परैं को, जब
लाज-कुल-कानि-प्रतिबंधहिं निवारि चुकीं।
कौन गुन-गौरव कौ लंगर लगावै जब
सुधि-बुधिही कौ भार टेक करि टारि चुकीं।
जोग-रतनाकर मैं साँस घूँट[1] बूड़ै कौन,
ऊधौ, हम सूधौ यह बानक बिचारि चुकीं।
मुक्ति-मुकता कौ मोलमाल ही कहा है जब
मोहनलला पै मन-मानिक ही वारि चुकीं॥१६॥
रंग-रूप-रहित लखात सबहीं हैं हमैं
वैसो एक और ध्याइ धीर धरिहैं कहा।
कहै 'रतनाकर' जरी हैं बिरहानल मैं
और अब जोति कौं जगाइ जरिहैं कहा॥
राखौ धरि ऊधौ, उतै अलख अरूप ब्रह्म
तासौं काज कठिन हमारे सरिहैं[2] कहा।
एक ही अनंग साधि साध सब पूरी अब
और अंग-रहित[3] अराधि करिहैं कहा॥१७॥
कर-बिनु कैसैं गाय दुहिहैं हमारी वह
पद-बिनु कैसें नाचि थिरकि रिझाइहै॥

१ रोक कर। २ पूरा होगा। ३ निराकार ब्रह्म।

कहै 'रतनाकर' वदन-दिनु कैसैं चाखि
माखन, बजाइ बेनु गोधन गवाइहै ॥
देखि सुनि कैसैं दृग स्रवन बिनाहीं हाय,
भोरे ब्रजबासिन की बिपति बराइहै[1]।
रावरो अनूप कोऊ अलख अनूप ब्रह्म,
ऊधौ कहौ कौन धौं हमारे काम आइहै॥१८॥

जोग को रमावै, औ समाधि को जगावै इहाँ,
दुख-सुख-साधनि सौं निपट निबेरी[2] हैं।
कहै 'रतनाकर' न जानैं क्यों इतै धौं आइ,
साँसनि[3] की सासना की बासना बखेरी हैं॥
हम जमराज की धरावति जमा न कछू,
सुरपति-संपति की चाहति न ढेरी हैं।
चेरी हैं न ऊधौ! काहू ब्रह्म के बबा की हम,
सूधौ कहे देति एक कान्ह की कमेरी[4] हैं॥१९॥

वाही मुख मंजुल की चहतिं मरीचैं[5] सदा,
हमकौं तिहारी ब्रह्म-ज्योति करिबौ कहा।
कहै 'रतनाकर' सुधाकर - उपासनि कौं,
भानु की प्रभानि कौं जुहारि जरिबौ कहा॥
भोगि रहीं बिरचे बिरंचि के सँजोग सबै,
ताके सोग[6] सारँग कौं जोग चरिबौ कहा।
जब ब्रजचंद कौ चकोर चित चारु भयौ
बिरह - चिनगारिनि सौं फेरि डरिबौ कहा॥२०॥

नैननि के नीर औ उसीर[7] सौं पुलकावलि,
जाहि करि सीरी सीरी बातहिं बिलासैं हम।

---

१ दूर होगी। २ निवृत्त। ३ योग-संबंधी प्राणायाम। ४ दासी। ५ किरणें। ६ शोक। ७ खस।

कहै 'रतनाकर' तपाइ बिरहातप की
आवन न देति जामैं विपम उपासैं हम॥
सोई मन-मन्दिर तपावन के काज आज,
रावरे कहें तैं ब्रह्म-जोति लै प्रकासैं हम।
नंद के कुमार सुकुमार कौं बसाइ यामैं,
ऊधौ अब हाइ कै बिसास[1] उदवासैं[2] हम॥२१॥
कीजै ज्ञान-भानु कौ प्रकास गिरि-सृंगनि पै,
ब्रज में तिहारी कला नैंकु खटिहैं[3] नहीं।
कहै 'रतनाकर' न प्रेम-तरु पैहै सूखि,
याकी डार-पात तृन-तूल[4] घटिहैं नहीं।
रसना हमारी चारु चातकी बनी हैं ऊधौ,
पी-पी की बिहाइ और रट रटिहैं नहीं।
लोटि-पोटि बात कौ बवंडर बनावत क्यों,
हिय तैं हमारे घनश्याम हटिहैं नहीं॥२२॥
नेम ब्रत-संजम कैं आसन अखंड लाइ,
साँसनि कौं घूँटिहैं जहाँ लौं गिलि[5] जाइगौ।
कहै 'रतनाकर' धरैंगी मृगछाला अरु
धूरि हूँ दरैंगी जऊ अँग छिलि जाइगौ।
पाँच आँचि[6], हूँ की झार झेलिहैं निहारि जाहि,
रावरौ हू कठिन करेजौ हिलि जाइगौ।
सहिहैं तिहारे कहैं साँसति सबै पै बस,
एती कहि देहु कै कन्हैया मिलि जाइगौ॥२३॥
साधि लैहैं जोग के जटिल जे बिधान ऊधौ,

---

१ विश्वासघात। २ निर्वासित करें। ३ चलेगी। ४ तृण के समान। ५ निगलना। ६ हठयोग की पंचाग्नि, जिसे जलाकर उसके बीच बैठते हैं।

बाँधि लैहैं लंकनि[१] लपेटि मृगछाला हू।
कहै 'रतनाकर' सु मेलि लैहैं छार अंग,
झेलि लैहैं ललकि घनेरे घाम पाला[२] हू॥
तुम तौ कही औ अनकही कहि लीनों सबै,
अब जौ कहौ तौ कहैं कछु ब्रजवाला हू।
ब्रह्म मिलिबै तैं कहा मिलिहै बतावौ हमैं,
ताकौ फल जब लौं मिलै न नंदलाला हू॥२४॥
प्रथम भुराइ[३] प्रेम-पाठनि पढ़ाइ उन,
तन-मन कीन्हें बिरहागि के तपेला[४] हैं।
कहै 'रतनाकर त्यौं आप अब तापै आइ,
साँसनि की साँसति[५] के झारत झमेला हैं॥
ऐसे ऐसे सुभ उपदेस के दिवैयनि कौं,
ऊधौ, ब्रजदेस मैं अपेल[६] रेल-रेला हैं।
वे तौ भये जोगी जाय पाइ कूबरी कौ जोग
आप कहैं उनके गुरू हैं किधौं चेला हैं॥२५॥
दौनाचल[७] कौ ना यह छटक्यौ कनूका जाहि,
छाइ छिगुनी पै छेम-छत्र छिति छायौ है।
कहै 'रतनाकर' न कूबर बधू-बर कौं,
जाहि रंच राँचैं पानि परसि गँवायौ है॥
यह गरु प्रेमाचल दृग-ब्रत धारिन कौ,
जाकैं भार भाव उनहूँ कौ सकुचायौ है।
जानै कहा जानिकै अजान ह्वै सुजान कान्ह
ताहि तुम्हैं बात सौं उड़ावन पठायौ है॥२६॥
सुघर सलोने स्याम सुन्दर सुजान कान्ह,

---

१ कटि में। २ कुहरा, शीत। ३ भुलाकर। ४ पानी गरम करने का पात्र। ५ कष्ट। ६ अटल। ७ द्रोणगिरि।

करुना-निधान के बसीठ[1] बनि आये हौ।
प्रेम-प्रनधारी गिरिधारी कौ सनेसौ[2] नाहिं,
होत है अँदेसौ झूठ बोलत बनाये हौ॥
ज्ञान गुरु-गौरव-गुमान-भरे फूले फिरौ,
बंचक के काज पै न रंचक बराये हौ।
रसिक-सिरोमनि कौ नाम बदनाम करौ,
मेरी जान ऊधौ, कूर-कूबरी-पठाये हौ॥२७॥

आये हौ पठाये वा छतीसे छलिया के इतै,
बीस-बिसै[3] ऊधौ बीर बावन कलाँच[4] ह्वै।
कहै 'रतनाकर' प्रपंच ना पसारौ गाढ़े
बाढ़े पै रहौगे साढ़े बाइस ही जाँच ह्वै॥
प्रेम अरु जोग में है जोग छठैं-आठैं परचो,
एक ह्वै रहैं क्यों दोऊ हीरा अरु काँच ह्वै।
तीन गुन पाँच तत्त्व बहकि बतावत सो,
जैहै तीन-तेरह[5] तिहारी तीन-पाँच ह्वै॥२८॥

चाहत निकारन तिन्है जो उर अंतर तैं,
ताको जोग नाहिं जोग-मन्तर तिहारे मैं।
कहै 'रतनाकर' बिलग करिबै मैं होति,
नीति विपरीत[6] महा कहति पुकारे मैं।
तातैं तिन्हैं ल्याइ लाइ हिय तैं हमारे बेगि
सोचियै उपाय फेरि चित्त चेतवारे[7] मैं।
ज्यौं-ज्यौं बसे जात दूरि-दूरि प्रिय प्रान-मूरि
त्यौं त्यौं धँसे जात मन-मुकुर हमारे मैं॥२९॥

---

१ दूत। २ संदेश। ३ निश्चय ही। ४ अंशभूत। ५ तीन-तेरह ...तीन-पाँच—तुम्हारे योग, ये तीनों गुण और पाँचों तत्त्व नष्ट हो जायंगे, अर्थात् गोपियों पर इनका कोई प्रभाव न पड़ेगा। ६ उलटी बात। ७ सचेत होकर

हरि-तन-पानिप के भाजन दृगंचल तैं
उमगि तपन तैं तपाक करि धावै ना।
कहै 'रतनाकर' त्रिलोक-ओक-मण्डल[1] में
बेगि ब्रह्मद्रव[2] त्यौं उपद्रव मचावै ना॥
हर कौं समेत हर-गिरि के गुमान गरि
पल मैं पतालपुर पैठन पठावै ना।
फैले बरसाने मैं न रावरी कहानी यह,
बानी कहूँ राधे आधी कान सुनि पावै ना॥३०॥

आतुर न होहु ऊधौ, आवति दिवारी[3] अबै
वैसियै पुरंदर-कृपा जौ लहि जाइगी।
होत नर ब्रह्म, ब्रह्म-ज्ञान सौं बतावत जो
कछु इहिं नीति की प्रतीति गहि जाइगी।
गिरिवर धारि जो उबारि ब्रज लीन्यौ बलि
तो तौ भाँति काहूँ यह बात रहि जाइगी।
नातरु हमारी भारी बिरह-बलाय[4] संग
सारी ब्रह्म-ज्ञानता तिहारी बहि जाइगी॥३१॥

बिकसित बिपिन बसंतिकावली कौ रंग,
लखियत गोपिन के अंग पियराने[5] मैं।
बौरे बृन्द लसत रसाल-बर बारिनि[6] के
पिक की पुकार है चबाव उमगाने मैं॥
होत पतझार झार तरुनि समूहनि कौ
बैहरि[7] बतास लै उसास अधिकाने मैं।
काम-बिधि बाम की कला मैं मीन-मेष कहा
ऊधौ नित बसत बसन्त बरसाने मैं॥३२॥

---

१ समस्त ब्रह्मांड । २ गंगाजल । ३ दीपमालिका का उत्सव । ४ विरह-व्याधि। ५ विरह-ताप से पीलो । ६ वाटिकाएँ। ७ हवा।

हाल कहा बूझत बिहाल परी बाल सबै,
    बसि दिन द्वैक देखि दृगनि सिधाइयौ।
रोग यह कठिन न ऊधौ, कहिबे के जोग,
    सूधौ सौ सँदेस याहि तू न ठहराइयौ॥
औसर मिलै औ सरताज[1] कछु पूछहिं तौ,
    कहियौ कछू न दसा देखी सो दिखाइयौ।
आह कै कराहि नैन[2] नीर अवगाहि कछू,
    कहिबे कौं चाहि हिचकी लै रहि जाइयौ॥३३॥
नन्द-जसुदा औ गाय गोप-गोपिका की कछू,
    बात वृषभान-भौन हूँ की जनि कीजियौ।
कहै 'रतनाकर' कहति सब हाहा खाइ,
    ह्याँ के परपंचनि सौं रंच[3] न पसीजियौ[4]॥
आँसू भरि ऐहैं औ उदास मुख ह्वैहै हाय,
    ब्रज-दुख त्रास की न तातैं साँस लीजियौ।
नाम[5] कौ बताइ औ जताइ गाम ऊधौ बस,
    स्याम सौं हमारी राम-राम कहि दीजियौ॥३४॥
आये लौटि लज्जित नवाये नैन ऊधौ अब,
    सब सुख-साधन कौ सूधौ सौ जतन लै।
कहै 'रतनाकर' गँवाये गुन गौरव औ,
    गरब-गढ़ी[6] कौ परिपूरन पतन लै।
छाये नैन नीर पीर-कसक कमाये उर,
    दीनता अधीरता के भार सौं नतन लै।

---

१ मणिमंडित मुकुटधारी श्रीकृष्ण। २ नैन...अवगाहि—नेत्रों में जल भरकर। ३ लेशमात्र। ४ पिघलना। ५ नाम...दीजियौ—अमुक गाँव की अमुक गोपी ने अपनो राम-राम कही है, बस इतना ही कहना अधिक नहीं। ६ गर्वरूपी गढ़।

प्रेम-रस रुचिर बिराग-तूमड़ी मैं पूरि
ज्ञान-गूदड़ी मैं अनुराग सौं रतन लै॥३५॥

प्रेम-मद छाके पग परत कहाँ के कहाँ,
थाके अंग नैननि सिथिलता सुहाई हैं।
कहै 'रतनाकर' यौं आवत चकात[1] ऊधौ,
मानौ सुधियात[2] कोऊ भावना भुलाई है॥
धारत धरा पै ना उदार अति आदर सौं,
सारत बँहोलिनि[3] जो आँसु-अधिकाई है।
एक कर राजै नवनीत जसुदा कौ दियौ,
एक कर बंसी बर राधिका पठाई है॥३६॥

रावरे पठाये जोग देन कौं सिधारे हुते,
ज्ञान-गुन-गौरव के अति उदगार मैं।
कहै 'रतनाकर' पै चातुरी हमारी सबै,
कित धौं हिरानी दसा दारुन अपार मैं॥
उड़ि उधिरानी किधौं ऊरध उसासनि मैं,
बहि धौं बिलानी कहूँ आँसुनि की धार मैं।
चूर ह्वै गई धौं भूरि दुख के दरेरनि मैं,
छार ह्वै गई धौं बिरहानल की झार मैं॥३७॥

लैकै पन सूछम अमोल जो पठायौ आप,
ताकौ मोल तनक तुल्यौ न तहाँ साँठी तैं।
कहै 'रतनाकर' पुकारे ठौर-ठौर पर,
पौरि वृषभानु की हिरान्यौ मति नाठी तैं॥
लीजै हेरि आपुहीं न हेरि हम पायौ फेरि,
याही फेर माँहि भय माठी दधि आँठी तैं॥

---

१ चकित होते हुए। २ भूली बात को याद करते हुए। ३ कुर्ते की बाहों से।

ल्याये धूरि पूरि अंग-अंगनि तहाँ की जहाँ,
　　ज्ञान गयौ सहित गुमान गिरि गाठी तैं ॥३८॥
छावते कुटीर कहूँ रम्य जमुना कैं तीर,
　　गौन[1] रौन-रेती[2] सौं कदापि करते नहीं।
कहै 'रतनाकर' बिहाइ प्रेम-गाथा गढ़,
　　स्रौन रसना मै रस और भरते नहीं॥
गोपी ग्वाल बालनि के उमड़त आँसू देखि
　　लेखि प्रलयागम हूँ नैंकु डरते नहीं।
होतौ चित चाव जो न रावरे चितावन[3] कौ
　　तजि ब्रज-गाँव इतै पाँव धरते नहीं॥३९॥

---

१ गमन। २ जिस रेत पर श्रीकृष्ण ने गोपियों के साथ रासलीला रची थी। ३ चेतावनी, आदेश।

सत्यनारायण

छप्पय

जग-ब्यौहारनि भोरौ, कोरौ गाम - निवासी।
ब्रज-साहित्य प्रबीन काव्य-गुन-सिंधु-विलासी॥
रचना रुचिर बनाय सहज ही चित आकरषै।
कृष्णभक्त अरु देसभक्ति आनँद-रस बरषै।
पढ़ि हृदय-तरंग उमंग उर; प्रेम-रंग अनुदिन चढ़ै।
सुचि सरल सनेही सुकवि श्रीसतनारायण-जसु बढ़ै॥

—वियोगी हरि

ब्रज-कोकिल पंडित सत्यनारायण कविरत्न का जन्म संवत् १९४१ माघ शुक्ल ३ को हुआ। इनके पिता अलीगढ़ निवासी सनाढ्य ब्राह्मण थे। माता-पिता इनके बचपन में ही स्वर्गस्थ हो चुके थे। पालन-पोषण इनकी मौसी ने किया। यह देशी रियासतों में अध्यापिका का काम करती थीं। कुछ काल के अनन्तर वह भी इस संसार से चल बसीं। अब सत्यनारायण अनाथ हो गये। धाँधूपुर (तहसील आगरा) के ब्रह्मचारी बाबा रघुनाथदासजी बड़े प्रेम से इनका पालन-पोषण करने लगे। बाबाजी के पवित्र जीवन का इन पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। मिढ़ाकर (जिला आगरा) के तहसीली स्कूल से हिन्दी मिडिल पास कर इनकी रुचि अंग्रेजी पढ़ने को हुई। सन् १९१० में बी० ए० की परीक्षा दी, किन्तु फेल हो गये। इन दिनों यह 'सेण्ट जान्स कालेज' में पढ़ते थे।

कविता के प्रति इनकी पहले से ही रुचि थी। बाद को तो यह कविता-प्रेम इतना बढ़ा कि इन्होंने 'साहित्य-सेवा' को ही अपने जीवन का एक मात्र उद्देश्य निश्चित कर लिया। यह प्रत्येक सभा-समाज में कविता सुनाने

लगे। इनका कविता पढ़ने का ढंग इतना मनोहर होता था कि लोग सुनकर चित्रलिखे-से खड़े रह जाते थे।

"मेरी शारदा सदन" के अधिष्ठाता पं० मुकुन्दरामजी की बड़ी कन्या से पंडित जी का विवाह हुआ। कहाँ तो पंडितजी श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त, साहित्य-रसिक और सीधे-सादे ग्रामीण, और कहाँ श्रीमती सावित्री देवी (पंडितजी की धर्मपत्नी) आर्यसमाज की कट्टर अनुयायिनी, शुष्क विचारों वाली। पृथ्वी-आकाश का अन्तर! दोनों प्राणियों में कभी दाम्पत्य प्रेम की झलक नहीं दिखाई दी। बेचारे पंडित जी कभी तो "भयो यह अनचाहत कौ संग" कहते हुए, आह भरते, तो कभी, 'बस अब नहिं जात सही' के सुर में घण्टों रोया करते थे।

उनका असह्य अन्तर्नाद परमात्मा के कानों तक पहुँच गया। १६ अप्रैल, १९१८ को वह हिन्दी-संसार को सदा के लिए सूना कर चल बसे।

सत्यनारायण जी बड़े ही भावुक, सरल और शांत प्रकृति के थे। देहाती पहनावे में रहते थे। इंदौर के हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के अवसर पर तो कुछ स्वयंसेवकों ने उन्हें 'गँवार' समझकर पंडाल के अन्दर नहीं जाने दिया था। स्वदेश-भक्ति, आपके हृदय में कूट-कूट कर भरी हुई थी। आपकी राष्ट्रीय कविताएँ जितनी भावपूर्ण, ओजस्विनी और मधुर हैं, वैसी, हमारी तुच्छ सम्मति में, अब तक तो नहीं बनीं, आगे की राम जाने।

महात्मा गांधी के स्तवन में उन्होंने जो चिरस्मरणीय कविता रची थी उसकी कुछ पंक्तियाँ नीचे लिखी जाती हैं:—

प्रेम पुनीत मार्ग के गामी, सब जग के उजियारे।
प्रभु-पद-पद्म-पराग-राग के, अलबेले अलि, प्यारे॥
हिंदू-नयन-चकोर-चंद्र तुम, नव जीवन-विस्तारक।
सहृदय-हृदय कुमोद-खिलावन, मोद भरन, उपकारक॥
मोहन प्यारे, तुमसौं निसि-दिन, विनय विनीत हमारी।
हिंदू-हिंदी-हिंद-देश के, बनहु सत्य हितकारी॥

और भी :—

तुमसे बस तुमहीं लसत, और कहा कहि चितभरें।
सिवराज, प्रतापऽरु मेजिनी, किन-किन सों तुलना करें?

इस कविता ने लोगों पर अनिर्वचनीय प्रभाव डाला। सत्यनारायण जी की 'भ्रमरदूत' नाम की रचना अनूठी और सद्यः प्रभावोत्पादिनी है। श्रीकृष्ण-भक्ति के साथ-साथ उसमें स्वदेश-प्रेम का जो मधुर मिश्रण हुआ है, उसे साहित्य-रसिक ही अनुभव कर सकते हैं। इनके 'उत्तर रामचरित' और 'मालती-माधव' के अनुवाद भी परम सरस और उत्कृष्ट हुए हैं। आगरे की नागरी-प्रचारिणी सभा ने इनकी फुटकर कविताओं का एक बड़ा सुन्दर संग्रह 'हृदय-तरंग' के नाम से प्रकाशित किया है। संग्रह कर्त्ता हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान् पंडित बनारसीदास जी चतुर्वेदी हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि सत्यनारायणजी ब्रजभाषा के एक महाकवि थे। इनके हृदय में हिन्दी के उद्धार के लिए सतत वेदना रहती थी। कृष्ण-प्रेम में आँखें झूमती रहती थीं। कौन जानता था कि 'ब्रजमाधुरी निकुंज' का भव्य कोकिल इतने ही स्वल्प समय में कूक कर सदा के लिए अनन्त शून्य में उड़ जायगा। ब्रज-माधुरी-पूर्ण आपके कतिपय पद्य नीचे उद्धृत किये जाते हैं।

ब्रजभाषा

दोहा

सजल सरल घनस्याम अब, दीजै रस बरसाय।
जासों ब्रजभाषा-लता, हरी-भरी लहराय॥१॥

रोला

भुवन-विदित यह जदपि चारु भारत भुवि[1] पावन।
पै रसपूर्न कमंडल ब्रज-मंडल मनभावन॥

---

१ भूमि।

परम-पुन्यमय प्रकृति-छटा जहँ विधि बिथुराई[1]।
जग सुर-मुनि-नर मंजु जासु जानत सुघराई[2]।।
जिहि प्रभाव-बस नित-नूतन जलधर सोभा धरि।
सफल काम अभिराम सवन घनस्याम आपु हरि।।
श्रीपति[3]-पद-पंकज-रज परसत जो पुनीत अति।
आय जहाँ आनन्द करति अनुभव सहृदय मति।।
जुगुल चरन - अरविंद - ध्यान - मकरंद - पान - हित।
मुनि-मन मुदित मलिंद निरंतर बिरमत जहँ नित।।
तहँ सुचि सरल सुभाव रुचिर गुनगन के रासी।।
भोरे-भोरे बसत नेह - बिकसित ब्रजवासी।।२।।
जिहि आश्रय लहि कलिमल-हर[4] तुलसी-सौरभ जसु।
मंजु मधुर मृदु सरस सुगम सुचि हरिजन सरबसु।।
केसव[5] अरु मतिराम[6], बिहारी, देव अनूपम।।
हरिश्चंद्र से जासु कूल कुसुमित रसाल[7] द्रुम।।
'अष्टछाप'[8] अनुपम कदंब अघ-ओक-निकंदन।
मुकुलित प्रेमाकुलित सुखद सुरभित जग-बंदन।।
तुरत सकल भयहरनि आर्य-जागृति जय-सानी।
जन-मन निजवस-करनि लसति पिक भूषन - बानी।।
विविध रंग-रंजित मन-रंजन सुखमा आकर।
सुचि सुगंध के सदन खिले अगनित पदमाकर[9]।।

---

१ बिखेर दी है, छाप दी है। २ चतुराई। ३ श्रीकृष्ण। ४ कलियुग में किए गए पापों का नाश करनेवाला। ५ ओड़छावाले, महाकवि केशवदास। ६ महाकवि भूषण के छोटे भाई। इनके 'रसराज' और 'ललित ललाम' रीतिग्रंथों में प्रसिद्ध है। ७ आम्र, सुन्दर। ८ वल्लभकुलानुयायी आठ महाकवियों का मंडल। ९ (१) कविवर पद्माकर, जिनके 'पद्माभरण', 'गंगा लहरी' आदि ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। (२) कमलों का वन।

जिन पराग सों चौंकि भ्रमत उत्सुकता-प्रेरे।
रहसि-रहसि रसखान रसिक अलि गुंज घनेरे।।
बरन-बरन[1] में मोहन की प्रतिमूर्ति बिराजति।
अच्छर आभा[2] जासु अलौकिक अद्भुत भ्राजति।।३।।

पद

तिहारो को पावै प्रभु पार?
बिपुल सृष्टि नित नव विचित्र के चित्रकार-आधार।।
मकरी के सम जगत-जाल यहि, सृजत और बिस्तारत।
कौतुक[3] ही में हरत ताहिं पुनि, वेद पुरान उचारत[4]।।
जग में तुम, औ तुम में सब जग, वासुदेव[5], अभिराम।
सकल रंग तन बसत आपके, याही सों घनस्याम[6]।।
परम पुरुष तुम, प्रकृति-नटी संग, लीला रचत अपार।
जग[7]-व्यापन सों, 'विष्णु' कहावत, अचरज, तउ अविकार।।
जितने जात समीप, दूर अति होत जात सब ग्यान[8]।
सत्य छितिज[9] सम तरसावत नित, बिस्व-रूप भगवान।।४।।

माधव, आप सदा के कोरे।
दीन-दुखी जो तुमको जाँचत, सो दाननि के भोरे[10]।।
किंतु बात यह तुव सुभाव वे नैकहुँ जानत नाहीं।
सुनि-सुनि सुजस रावरो तुव ढिग, आवन को ललचाहीं।।
नाम धरै तुमको जग-मोहन, मोह[11] न तुमको आवै।
करुनानिधि तुव हृदय न एकहु करुना-बून्द समावै।।

---

१ अक्षर-अक्षर। २ प्रभा, छटा। निष्काम बुद्धि से लीलापूर्वक ही। ४ करते हैं। ५ (१) महाराज वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण, (२) सब में बसनेवाले। ६ मेघ के समान श्याम मूर्ति रंग-बिरंगे मेघों के समान सुन्दर। ७ जग...अधिकार—यद्यपि तुम सब जगत में रम रहे हो, फिर भी बिकारहीन बने हुए हो। ८ अविद्यात्मक मिथ्या ज्ञान। ९ क्षितिज-वह रेखा जो पृथ्वी से आकाश छूती हुई मालूम देती है। १० धोखे में आकर। ११ प्रेम, दया।

लेत एक कौ देत दूसरेहिं, दानी बनि जगमाहीं।
ऐसो हेर-फेर[1] नित नूतन, लाग्यौ रहत सदाहीं।
भाँति-भाँति के गोपिन के, जो तुम प्रभु चीर चुराये।
अति उदारता सों लै वेही, द्रौपदी कों पकराये[2]।।
रतनाकर[3] कों मथत सुधा कौ, कलस आप जो पायौ।
मंद-मंद मुसुकात मनोहर, सो देवन कों प्यायौ।
मत्त गयंद कुवलिया[4] के जो, खेल[5] प्रान हरि लीनें।
बड़ी दया दरसाइ दयानिधि! सो गजेन्द्र को दीनें।।
करिकै निधन[6] बालि रावन को, राजपाट जौ आयौ।
तहँ सुग्रीव विभीषन को करि, अति अहसान बिठायौ।।
पौंडरीक[7] कौ सर्वनास करि, माल-मता जो लीयौ।
ताको विप्र सुदामा के सिर, करि सनेह 'मढ़ि दीयौ'।।
ऐसी 'तूमा-पलटी'[8] के गुन, 'नेति नेति' स्तुति गावैं।
सेस महेस सुरेस गनेसहूँ, सहसा पार न पावैं।।
इत माया अगाध सागर, तुम डोबहु भारत-नैया।
रचि महाभारत कहूँ लरावत अपु[9] में भैया-भैया।
या कारन जग में प्रसिद्ध अति 'निबटी रकम' कहाओ!
'बड़े-बड़े तुम मठा धुँवारे, क्यों साँची खुलवाओ।।५।।
माधव, अब न अधिक तरसैए।
जैसी करत सदा सों आये, वही दया दरसैए।।

---

१ इधर-उधर कर देना। २ सौंप दिए। ३ रतनाकर...प्यायौ—जब देवताओं और राक्षसों ने समुद्र मथकर अमृत का घड़ा निकाला, तब उसके लिए आपस में झगड़ा होने लगा। विष्णु भगवान् ने तुरन्त मोहिनी रूप धारण कर राक्षसों को अपने सौंदर्य पर मोहित कर लिया और अमृत देवताओं को पिला दिया। ४ कंस का मतवाला हाथी। ५ लीला पूर्वक ही। ६ वध। ७ पुंडरीक, एक पापी राजा। ८ इसका लेकर उसको देना, हेर-फेर कर देना। ९ आपस।

मानि लेउ, हम कूर कुढंगी[1] कपटी, कुटिल गँवार।
कैसे असरन-सरन कहौ तुम, जन के तारनहार॥
तुम्हरे अछत तीन-तेरह[2] यह; देस-दसा दरसावै।
पै तुमको यहि जनम[3]-धरे की, तनकहुँ लाज न आवै।
आरत तुमहिं पुकारत हम सब, सुनत न त्रिभुवनराई।
अँगुरी डारि कान में बैठे, धरि ऐसी निठुराई॥
अजहुँ प्रार्थना यही आपसों, अपुनो विरुद सँवारौ।
'सत्य' दीन दुखियन की बिपदा, आतुर आइ निबारौ॥६॥

मोहन कबलौं मौन गहौगे?
निज आँखिन पै धरै ठीकुरी, कितने और रहौगे?
तुम देखत भारत-मानवकुल आकुल छिन-छिन छीजै।
कहा भयो पाषान हृदय तुव, जो नहिं तनिक पसीजै॥
'रसना'[4] नाम भयो अब साँचौ टेरत-टेरत हारे॥
छुट्यौ न तउ तव हृदय-कृष्ण पन[5], दृग सों चले पनारे।
बिपति-ग्राह ने ग्रस्यौ बिस्व-गज, होन चहत अनहोनी[6]।
ऐसे समय, साँवरे, सूझी तुमको आँखमिचौनी[7]॥
भुवन-विदित नित सतगुन तुमने, कहौ कहाँ बिसराये।
रह्यौ सुभाव यही जो, तौ क्यों 'करुनासिंधु' कहाये॥७॥

अब न सतावौ
करुनाधन इन नयनन सों, द्वै बुंदियां तौ टपकावौ[8]॥
सारे जग सों अधिक कियौ का, हमने[9] ऐसो पाप।
नित नव दई निर्दई बनि, जो देत हमैं संताप॥

---

१ कुकर्मी। २ तितर-बितर। ३ (भारतवर्ष में) अवतार धारण करने को। ४ (१) जीभ, (२) रसना, जिसमें रस न हो॥ ५ कालापन, कपट। ६ अनुचित। ७ आँख बन्दकर छिप जाना; ध्यान न देना। ८ बरसाओ। ९ हम भारतवासियों ने।

साँची तुमहिं सुनावत जो हम, चौंकत सकल समाज[1]।
आपनी जाँघ[2] उघारै उघरति, बस, अपनी ही लाज॥
तुम ओछे हम बुरे सही, बस, हमरो ही अपराध।
करनो हो सो अजहूं कीजै, लीजै पुन्य अगाध॥
होरी-सी जातीय प्रेम की फूंकि न धूरि उड़ावौ।
जुग कर-जोरि यही 'सत' माँगत, अलग न और लगावौ॥८॥*

बस, अब नहिं जाति सही।
विपुल वेदना विविध भाँति, जो तन-मन व्यापि रही॥
कबलौं सहैं अवधि सहिबे की, कछु तौ निश्चित कीजै।
दीनबन्धु, यह दीन-दसा लखि, क्यों नहिं हृदय पसीजै॥
बारन[3]-दुखटारन, तारन में प्रभु, तुम बार न लाये।
फिर क्यौं करुना करत स्वजन पै, करुनानिधि अलसाये॥
यदि जो कर्म-जातना[4] भोगत, तुम्हरे हूँ अनुगामी।
तौ करि कृपा बतायो चहियतु, तुम काहे के स्वामी॥
अथवा बिरद-बानि अपनी कछु, कै तुमने तजि दीनीं।
या कारन, हम सम अनाथ की, नाथ न जो सुधि लीनीं।
बेद बदत[5] गावत पुरान सब, तुम भय-ताप नसावत।
सरनागत की पीर तनकहूँ, तुम्हें तीर-सम लागत॥
हमसे सरनापन्न[6] दुखी कों, जाने क्यों बिसरायौ।
सरनागत-वत्सल[7] 'सत' योंही, कोरो[8] नाम धरायौ॥९॥

हे घन स्याम, कहाँ घनस्याम;
रज मँडराति चरन-रज कित सों सीस धरैं अठजाम॥

---

१ अपने को सभ्य माननेवाली संसार की सारी जातियाँ। २ अपनी बात अपने मुंह से कहने से। ३ गजेन्द्र। ४ सत्कर्मों के फलस्वरूप कष्ट। ५ कहते हैं। ६ शरण में आया हुआ। ७ प्यार करने वाले। ८ झूठा, व्यर्थ।

*'भारत-दुर्दशा' का इतना प्रभावकारी पद हमारे देखने में तो नहीं आया।

स्वेत पटल लै घन, कहँ त्यागी सुरभी सुखद ललाम।
मोरनि घोर सोर चहुँ सुनियत, मोरमुकुट किहिं ठाम॥
गरजउ पुनि-पुनि, कहाँ बतावौ मुरली मृदु सुर-धाम।
तड़पावत हौ तड़ितहिं छिन-छिन, पीतांबर नहिं नाम॥१०॥

भ्रमरदूत*

श्रीराधावर निजजन - बाधा - सकल - नसावन।
जाकौ ब्रज मनभावन, जो ब्रज कौ मनभावन॥
रसिक-सिरोमनि मन-हरन, निरमल नेह-निकुंज।
मोदभरन उर-सुख-करन, अविचल[1] आनंदपुञ्ज॥
रंगीलो साँवरो॥११॥

कंस-मारि भू-भार - उतारन, खल-दल - तारन।
विस्तारन विज्ञान विमल, स्रुति[2]-सेतु-सँवारन॥
जन-मन-रंजन सोहना[3], गुन - आगर चित-चोर।
भव-भय-भंजन मोहना, नागर नन्दकिसोर॥
गयौ जब द्वारिका॥१२॥

बिलखाती, सनेह पुलकाती, जसुमति माई।
स्याम-विरह-अकुलाती, पाती कबहुँ न पाई॥
जिय प्रिय हरि-दरसन बिना, छिन-छिन परम अधीर।
सोचति मोचति[4] निसिदिना, निसरतु नैनन नीर॥
विकल, कल ना हियें॥१३॥

---

१ अटूट, नित्य एकरस। २ स्तुति...सँवारन—वैदिक धर्म का उद्धार करनेवाले। ३ सुन्दर। ४ छोड़ती हैं, गिराती हैं।

*सत्यनारायणजी का यह कृष्णभक्ति और स्वदेश-प्रेम से पूर्ण 'भ्रमर-दूत' खेद है, अपूर्ण ही मिला है।

पावन सावन मास नई उनई[1] घन-पाँती।
मुनि-मन-भाई छई, रसमई मंजुल कांती[2]॥
सोहत सुन्दर चहुँ सजल, सरिता पोखर[3] ताल।
लोल-लोल तहँ अति अमल, दादुर बोल रसाल॥
छटा चुई[4] परै॥१४॥

अलबेली कहुँ बेलि, द्रुमन सों लिपटि सुहाई।
धोये-धोये पातन[5] की अनुपम कमनाई[6]॥
चातक चलि कोयल ललित, बोलत मधुरे बोल।
कूकि-कूकि केकी ललित, कुञ्जनु करत कलोल॥
निरखि घन की छटा॥१५॥

इन्द्र-धनुष अरु इन्द्रबधूटिन की सुचि सोभा।
को जग जनम्यौ मनुज, जासु मन निरखि न लोभा।
प्रिय पावन पावस-लहरि, लहलहात चहुँ ओर।
छाई छवि छिति पै छहरि[7], ताकौ ओर न छोर॥
लसै मन-मोहिनी॥१६॥

कहूँ बालिका-पुञ्ज कुञ्ज लखि परियत पावन।
सुख-बरसावन, सरल सुहावन, हिय-सरसावन[8]।
कोकिल - कंठ - लजावनी, मनभावनी अपार॥
भ्रातृ[9] - प्रेम - सरसावनी, रागति मंजु मल्हार[10]॥
हिंडोरनि झूलतीं॥१७॥

बालवृन्द हरषत, उर-दरसत चहुँ चलि आवैं॥
मधुर - मधुर मुसुकाइ रहस[11]-बतियाँ बतरावैं॥

---

१ घिर आई। २ कांति, छटा। ३ छोटी तलैया, गड्ढे। ४ निकली पड़ती हैं। ५ पत्तों को। ६ सुन्दरता। ७ बिखरकर। ८ प्रसन्न करने वाली। ९ इस पद से कवि की आंतरिक पवित्रता का पता चलता है। १० पावस में गाने का एक राग। ११ आनंद।

तरुवर डाल हलावहीं 'घौरी' 'घूमरि' टेरि।
सुन्दर राग अलापहीं भौंरा चकई[१] फेरि॥
बिधि क्रीड़ा करैं॥१८॥

लखि यह सुखमा[२]-जाल, लाल निज बिन नँदरानी।
हरि-सुधि उमड़ी, घुमड़ी तन उर अति अकुलानी॥
सुधि-बुधि तजि, माथौ पकरि, करि-करि सोच अपार।
दृगजल मिस मानहुँ निकरि, बही बिरह की धार॥
कृष्ण-रटना लगी॥१९॥

कृष्ण-विरह की बेलि नई तो उर हरियाई[३]।
सोचन-अस्त्रु-विमोचन दोउ दल[४] बल अधिकाई॥
पाइ प्रेमरस बढ़ि गई, तनतरु लिपटी धाइ।
फैल फूटि चहुँधा छई, बिथा न बरनी जाइ॥
अकथ ताकी कथा॥२०॥*

कहति विकल मन महरि[५] कहाँ हरि ढूँढ़न जाऊँ।
कब गहि लालन ललकत[६], मन गहि हृदय लगाऊँ॥
सीरी[७] कब छाती करौं, कब सुत-दरसन पाऊँ।
कबै मोद निज मन भरौं, किहिं कर धाइ पठाऊँ॥
सँदेसो स्याम पै॥२१॥

पढ़ी न अच्छर एक, ग्यान सपनें ना पायौ।
दूध-दही चाटन में, सबरो जन्म गमायौ॥
मात-पिता बैरी भये, सिच्छा दई न मोहि॥
सबरे दिन यों ही गये, कहा कहे तें होहि॥
मनहिं मन में रही॥२२॥†

---

१ खिलौने। २ प्राकृतिक सौंदर्य की राशि। ३ हरी हो गई, ताजा हो गई। ४ कोंपल। ५ यशोदाजी। ६ प्रेमोत्कंठित। ७ ठंडी।

*विरह-बेलि का क्या ही सुन्दर सांगोपांग रूपक है।

†यह संकेत वर्तमान स्त्री-शिक्षा के अभाव की ओर जान पड़ता है।

सुनी गरग[1] सों अनसूया[2] की पुन्य कहानी।
सीता सती सुनीता की सुठि कथा पुरानी॥
विसद ब्रह्म - विद्या-पगी, मैत्रेयी[3] तिय-रत्न॥
सास्त्र पारगी,[4] गारगी,[5] मदालसा,[6] सयत्न॥
पढ़ी सब-की-सबै॥२३॥

निज-निज जनम-धरम कौ, फल उनमें हीं पायौ।
अविचल अभिमत सकल भाँति सुन्दर अपनायौ॥
उदाहरनि उज्ज्वल दियौ, जग की बिधन अनूप।
पावन जस दस दिसि छयौ, उनकौ सुकृत सरूप॥
पाइ विद्या-बलै॥२४॥

नारी-सिच्छा निरादरत जे लोग अनारी।
ते स्वदेस-अवनति-प्रचंड-पातक अधिकारी॥
निरखि हाल मेरी प्रथम, लेउ समुझि सब कोइ।
विद्याबल लहि मति परम, अबला सबला होइ॥
लखौ अजमाइकैं॥२५॥

कौनै भेजौं दूत, पूत सों बिथा सुनावै।
बातन मैं बहराइ,[7] जाइ ताकों यहँ लावै॥
त्यागि मधुपुरी सों गयो, छाँड़ि सबन कौ साथ।

---

१ गर्ग ऋषि : ब्रज के गोपों के कुलगुरु। २ अत्रि ऋषि की पतिव्रता स्त्री, दत्तात्रेय, चंद्र और दुर्वासा इन्हीं के पुत्र थे। ३ महर्षि याज्ञवल्क्य की पत्नी : इन्होंने अपने पति से ब्रह्म-विद्यारूपी जायदाद मांग ली थी। ४ शास्त्रों में पूर्ण निपुण। ५ गर्ग मुनि की विदुषी पुत्री। इन्होंने जनक की सभा में महर्षि याज्ञवल्क्य से शास्त्रार्थ किया था। ६ राजा ऋतुध्वज की रानी। इन्होंने अपने सब पुत्रों को निवृत्ति-मार्ग का उपदेश देकर बालसंन्यासी बना दिया था। ७ फुसलाकर।

सात समुन्दर पै भयौ, दूरि द्वारिकानाथ॥
जाइगो को वहाँ॥२६॥

नास सोइ अक्रूर[1] क्रूर तेरो बजमारे[2]।
बातन में दै सबनि, लै गयौ प्रान हमारे॥
क्यों न दिखावत लाइ कोउ, मूरति ललित ललाम।
कहँ मूरति रमनीय दोउ, स्याम और बलराम॥
रही अकुलाइ मैं॥२७॥

अति उदास, बिन आस सबै तन-सुरति भुलानी।
पूत-प्रेम सों भरी परम, दरसन-ललचानी॥
बिलपति कलपति अति जबै, लखि जननी निज स्याम।
भगत-भगत[3] आय तबै, भाये मन अभिराम॥
भ्रमर के रूप में॥२८॥

ठिठक्यो[4], अटक्यो भ्रमर देखि जसुमति महरानी।
निज-दुख सों अति दुखी ताहि, मन में अनुमानी॥
तिहिं दिसि चितवत चकित चित, सजल जुगल परि नैन।
हरि वियोग कातर स्रमित, आरत गदगद[5] बैन॥
कहन तासौं लगी॥२९॥

तेरो तन घनस्याम, स्याम घनस्याम उतै सुनि।
तेरी गुंजन सुरलि[6] मधुप, उत मधुर मुरलि धुनि॥
पीत रेख तव कटि बसति, उत पीतांबर चारु।
बिपिनबिहारी दोउ लसत, एकरूप सिंगार॥
जुगुल रस के चखा[7]॥३०॥

---

१ श्रीकृष्ण के चाचा; यही कृष्ण बलराम को कंस के आदेशानुसार गोकुल से मधुपुरी ले गए थे। २ बज्र से मारा हुआ; दुष्ट। ३ भागते-भागते। ४ ठहर गया। ५ भरे हुए गले से निकले बचन। ६ सुरीली, मीठी। ७ चखनेवाले, रसिक।

याही कारज निज प्यारे ढिग तोहिं पठाऊँ।
कहियो वासों बिथा सबै जो अबै सुनाऊँ।
जैयो षटपद, धायकैं, कहि निज कृपा बिसेस॥
लैयो काम बनायकै, दैयौ यह संदेस॥
सिदौसी[1] लौटियौ॥३१॥

जननी[2] जन्मभूमि सुनियत स्वर्गहुँ तें प्यारी।
सो तजि सवरो मोह साँवरे, तुमनि बिसारी॥
का तुम्हरी गति-मति भई, जो ऐसो बरताव।
किधौं नीति बदली नई, ताकौ परचौ प्रभाव॥
कुटिल विष कौ भरचौ॥३२॥

माखन कर पौंछन सों चिक्कन चारु सुहावत।
निधुवन स्याम तमाल, रह्यौ जो हिय हरसावत॥
लागत ताके लखन, सों, मति चलि वाकी ओर।
बात लगावत सखन सों, आवत नन्दकिशोर॥
कितहु सों भाजिकैं॥३३॥*

वही कलिंदी-कल-कदंबन के बन छाये।
बरन-बरन के लता भवन मनहरन सुहाये॥
वुही कुन्द की कुन्ज ये, परम प्रमोद-समाज।
पै मकुन्द बिन विषमये[3], सारे सुखमा साज॥
चित्त वाँहीं[4] घरचौ॥३४॥

लगत पलास उदास, असोक सोक में भारी।
बौरे बने रसाल, माधवी लता दुखारी॥
तजि-तजि निज प्रफुलितपनौं, बिरह-बिथित अकुलात।

१ जल्दी। २ जननी...प्यारी—इस श्लोकार्द्ध की प्रतिच्छाया—'जननी जन्म-भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'। ३ विष के समान घातक। ४ वहीं पर।

*इस पद में विलक्षण माधुर्य और प्रसाद गुण है।

जड़ हूँ ह्वै चेतन मनों, दीन मलीन लखात।
एक माधौ बिना॥३५॥

नित नूतन तृन डारि सघन बंसीवट छैयाँ।
फेरि-फेरि कर-कमल चराई जो हरि गैयाँ॥
ते तित सुधि अति हीं करत, सब तन रहीं[1] झुराय।
नयन स्रवत जल, नहिं चरत, व्याकुल उदर अघाय॥
उठाये म्हौं[2] फिरैं॥३६॥

बचन-हीन ये दीन गऊ दुख सों दिन बितवति।
दरस-लालसा लगी चकित-चित इत-उत चितवति।
एक संग तिनको तजत, अलि कहियो "ऐ लाल।
क्यों न हीय निज तुम लजत[3] जग कहाय गोपाल[4]"॥
मोह[5] ऐसौ तज्यौ॥३७॥

नील कमल-दल स्याम जासु तन सुन्दर सोहै।
नीलांबर बसनाभिराम[6] विद्युत मन मोहै।
भ्रम में परि घनस्याम के, लखि घनस्याम अगार।
नाचि-नाचि ब्रजधाम के, कूकत मोर अपार॥
भरे आनन्द में॥३८॥

यहँ कौ नव नवनीत मिल्यौ मिसरी अति उत्तम॥
भला सकै मिलि कहाँ सहर में सद[7] याके सम॥
रहै यही लालो[8] अजहुँ, काढ़त यहिं जब भोर[9]।
भूखो रहत न, होइ कहूँ, मेरो माखन चोर॥
बँध्यौ निज टेव[10] कौ॥३९॥

वा बिनु गो-ग्वालनु को हित की बात सुझावै।

---

१ सूख गई है। २ मुंह। ३ शर्माते हो। गौओं के पालनेवाले। ५ ममता, प्रेम। ६ सुन्दर वस्त्र। ७ सद्यः, ताजा। ८ लालसा, चाह। ९ सबेरा। १० आदत।

अरु स्वतंत्रता, समता, सहभ्रातृता[1] सिखावै॥
जदपि सकल बिधि ये सहत, दारुन अत्याचार।
पै नहिं कछु मुख सौं कहत, कोरे[2] बने गँवार॥
कोउ अगुआ[3] नहीं॥४०॥*

भये संकुचित हृदय भीरु अब ऐसे भय में।
काऊ कौ बिस्वास न निज जातीय उदय में।
लखियत कोऊ रीति ना भली, नहिं पूरब-अनुराग।
अपनी[4]-अपनी ढापुली, अपनो-अपनो राग॥
अलापै जोर सों॥४१॥

नहिं देसीय भेष-भावनु की आसा कोऊ।
लखियत जौ ब्रजभाषा, जाति हिरानी[5] सोऊ॥
आस्तिक बुधि-बंधन नसे, बिगरी सब मरजाद।
सब काऊ के हिय बसे, न्यारे-न्यारे स्वाद॥
अनोखे ढंग के॥४२॥

बेलि नवेली[6] अलबेली[7] दोउ नम्र[8] सुहावैं।
तिनके कोमल सरल भाव कौ सब जस गावैं॥
अबकी गोपी मदभरी, अधर[9] चलै इतराय।
चार दिना की छोहरी, गई ऐसी गरवाय॥
जहाँ देखौ तहाँ॥४३॥

गोबरधन कर-कमल धारि जो इन्द्र लजायौ।
तुम बिनु सो तिहिं कौ बदलौ चहत चुकायौ॥

---

१ भाईचारा। २ बिलकुल ही निरक्षर। ३ नेता। ४ अपनी...राग—जिसे जो अच्छा लगता है, वह वही करता है; मनमुखीपन। ५ खोई जाती है। ६ नई लता। ७ स्त्री। ८ (१) झुकी हुई, (२) शीलसंकोचवाली। ९ अधर...इतराय—मस्ती से, किसी को कुछ भी न समझती हुई मार्ग-कुमार्ग पर जा रही है।

*देश-दशा का क्या ही सजीव सुचारु चित्र है!

नहिं बरसावत सुघन अब, नियमपूर्वक नीर।
जासों गोकुल[1] होत सब, दिन-दिन परम अधीर॥
नीर सपनों भयो॥४४॥

गोरी को गोरे लागत अतिहीं प्यारे।
मो[2] कारी कों कारे तुम नयननु के तारे॥
उनको[3] तो संसार सब, मो दुखिया कों कौन।
कहिए, काह बिचार है, जो तुम साधी मौन॥
बने अपस्वारथी॥४५॥

पहले को सो अब न तिहारो यह वृन्दावन।
याके चारों ओर भये बहुविधि परिवर्तन॥
बने खेत चौरस नये, कोटि घने बनपुञ्ज।
देखन कों बसि रह गये, निधुबन[4] सेवाकुञ्ज[5]।
कहाँ चरिहैं गऊ॥४६॥

पहली-सी नहिं जमुनाहू में अब गहराई।
जल कौ थल, अरु थल कौ जल अब परत लखाई॥
कालीदह कौ ठौर जहँ, चमकत, उज्ज्वल रेत।
काछी माली करत तहँ, अपने-अपने खेत।
घिरे झाऊनि सौं॥४७॥

नित नव परत अकाल, काल कौ चलत-चक्र चहुँ।
जीवन कौ आनन्द न देख्यौ जात यहाँ कहुँ॥
बढ़्यौ यथेच्छाचार[6]-कृत जहँ देखो तहँ राज॥

---

१ (१) ब्रज, (२) गोवंश। २ मो...तार मुझे काली-कलू को भैया, तुम जैसे काले रंगवाले ही अच्छे लगते हैं, पराये (विदेशी) गोरे नहीं। ३ उन गोरों को। ४ एक कुंज, जहाँ श्रीस्वामी हरिदास रहते थे। ५ एक कुंज, जहाँ श्री हितहरिवंशजी रहते थे। ६ मनमुखीप

होत जात दुर्बल विकृत[1], दिन-दिन आर्य-समाज।।
दिनन के फेर सों।।४८।।

जे तजि मातृभूमि सों ममता, होत प्रवासी[2]।
तिन्हें[3] बिदेसी तंग करत, दै बिपदा, खासी।।
नहिं आये निरद्दय दई, आये गौरव जाय।
साँप[4]-छछूंदर-गति भई, मन-हीं-मन अकुलाय।
रहे सब-के-सबै।।४९।।

टिमटिमाति जातीय जोति जो दीपसिखा-सी।
लगत बाहिरी ब्यारि[5] बुझन चाहत अबला-सी।।
सेष न रह्यो सनेह कौ, काहू हिय में लेस।
कासों कहिए गेह कौ, देसहि में परदेस।
भयौ अब जानिए।।५०।।

दोहा

वह मुरली अधरान की, वह चितवन की कोर।
सघन कुन्ज की वह छटा, अरु वह जमुन-हिलोर[6]।।५१।।
पीतपटी लपटाय कैं, लै लकुटी[7] अभिराम।
बसहु मंद मुसिक्याय उर, सगुन-रूप घनस्याम।।५२।।
आवौ, बैठौ, हँसो प्रिय, जातें बढ़ै उछाह।
हम पागल प्रेमीनु कों, और चाहिए काह।।५३।।

---

१ कुछ-का-कुछ—नष्ट-भ्रष्ट। २ अपने देश को छोड़कर परदेश में रहनेवाले। ३ तिन्हें...खासी—यह चरण 'दक्षिण' अफ्रीका के दुखी प्रवासियों पर लिखा गया जान पड़ता है। ४ दुविधा की अवस्था, किंकर्त्तव्य-विमूढ़ता; कहते हैं, जब साँप छछूंदर को पकड़ लेता है, तब उस पर बड़ी विपत्ति आ जाती है। खा ले तो मर जाता है और छोड़ दे, तो अंधा हो जाता है। 'भइ गति साँप-छछूंदर केरी'—तुलसी। ५ बाहरी, विदेशियों की। ६ तरंग। ७ लकड़ी, छड़ी।

करम-धरम नित-नेम कौ, सब बिधि देख्यौ तार[१]।
पै असार संसार में, एक प्रेम ही सार॥५४॥

चित चिंता तजि, डारिकैं, भार, जगत के नेम।
रे मन, स्याम-स्याम की, सरन गहौ करि प्रेम॥५५॥

श्रीराधापति माधव, श्रीसीतापति धीर।
मत्स्य आदि अवतार नित, नमौं, हरहु-भवपीर[२]॥५६॥

रेवति-प्रिय,[३] मूसलहली,[४] बली सिरी[५] बलराम।
बंदौं जगव्यापक सकल, कृष्णाग्रज[६] सुखधाम॥५७॥

भव-बाधा गाधा[७]-हरन, राधा राधापीय।
दुखदारिद, दरि बिस्तरहु, मंगल मेरे हीय॥५८॥

श्रीराधा वृषभानुजा, कृष्ण-प्रिया हरि-सक्ति[८]।
देहु अचल निज पदन की, परमपावनी भक्ति॥५९॥

मकराकृत कुंडल स्रवन, पीतवरन तन ईस।
सहित राधिका मो हृदय, बास करौ गोपीस॥६०॥

क्यों पीवहिं मो चरन-रस, मुनी पीयूष बिहाय।
यह जानन बालक हरी, चूसत स्वपद[९] अघाय॥६१॥*

चंद्रकमल कौ जगत में, अनुचित बैर कहात।
यासों हरि निजपद कमल, विधु-मुख हेत लखात॥६२॥

---

१ भेद। २ सांसारिक दुःख। ३ रेवती के पति। ४ मूसल और हल ही जिसके अस्त्र हैं। ५ श्री। ६ श्रीकृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता बलरामजी। ७ अथाह दुःख। ८ भगवान् की आह्लादिनी शक्ति। ९ अपने चरण को।

*प्रायः शिशु अपने पैर के अँगूठे को मुंह से चूसने लगते हैं; यहाँ बालक कृष्ण पर यह अनूठी उक्ति घटाई गई है।